यौगिक मुद्राएँ मानसिक शांति का सफल प्रयोग

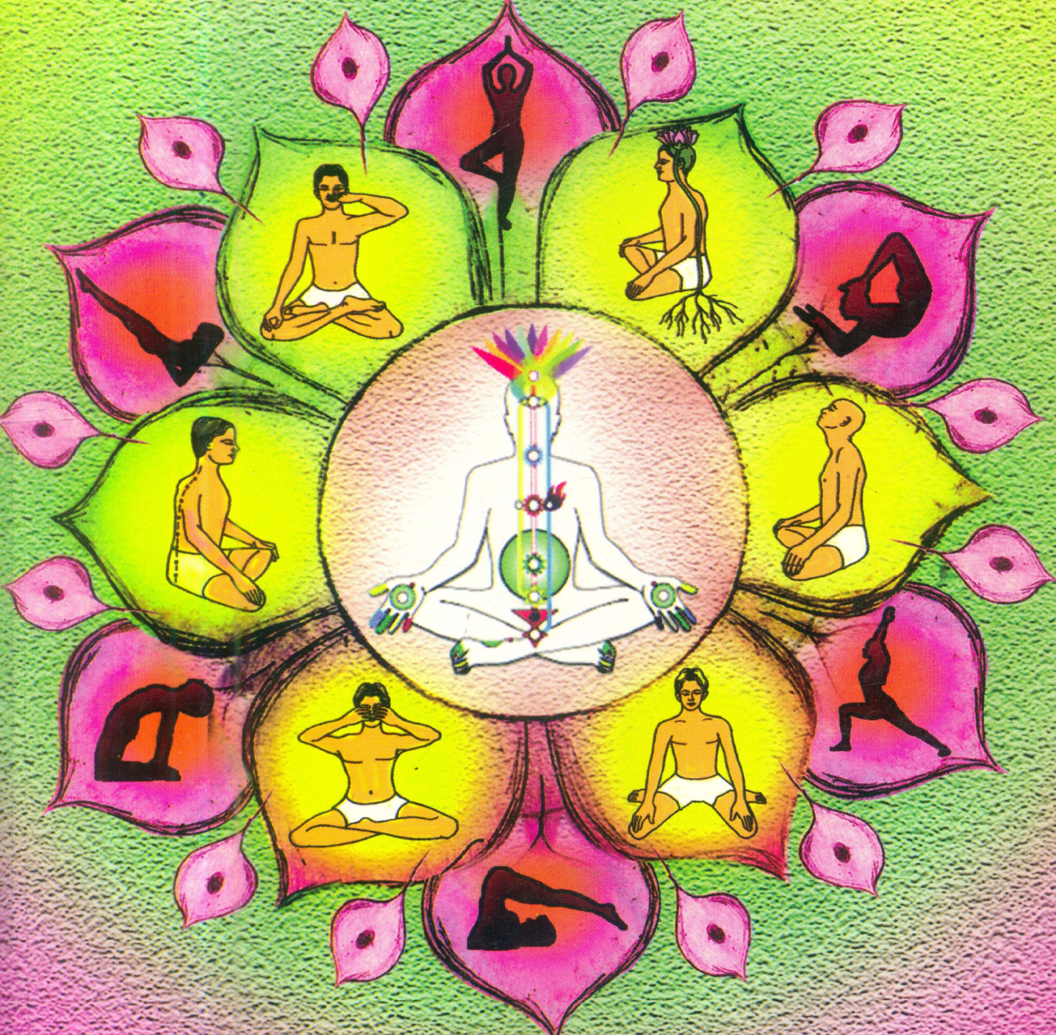

सम्बोधिका

पूज्या प्रवर्त्तिनी श्री सज्जन श्रीजी म.सा.
परम विदुषी शशिप्रभा श्रीजी म.सा.

श्री जिनदत्तसूरि अजमेर दादाबाड़ी

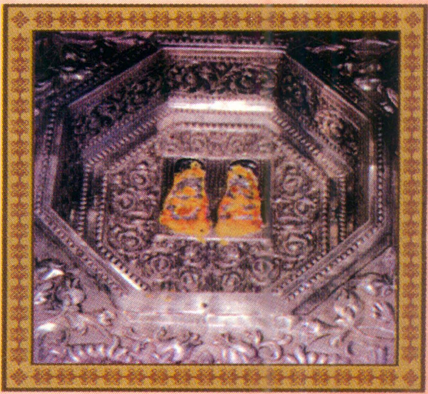

श्री मणिधारी जिनचन्द्रसूरि दादाबाड़ी (दिल्ली)

श्री जिनकुशलसूरि मालपुरा दादाबाड़ी (जयपुर)

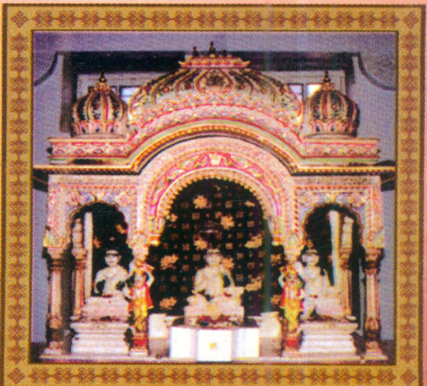

श्री जिनचन्द्रसूरि बिलाडा दादाबाड़ी (जोधपुर)

यौगिक मुद्राएँ : मानसिक शान्ति का एक सफल प्रयोग

जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन विषय पर

(डी. लिट् उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध)

खण्ड-20

2012-13

R.J. 241 / 2007

णाणस्स सारमायारो

शोधार्थी

डॉ. साध्वी सौम्यगुणा श्री

निर्देशक

डॉ. सागरमल जैन

जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय

लाडनूं-341306 (राज.)

यौगिक मुद्राएँ : मानसिक शान्ति का एक सफल प्रयोग

जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन विषय पर

(डी. लिट् उपाधि हेतु स्वीकृत शोध प्रबन्ध)

खण्ड-20

णाणस्स सारमायारो

स्वप्न शिल्पी

आगम मर्मज्ञा प्रवर्त्तिनी सज्जन श्रीजी म.सा.

संयम श्रेष्ठा पूज्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा.

मूर्त्त शिल्पी

डॉ. साध्वी सौम्यगुणा श्री

(विधि प्रभा)

शोध शिल्पी

डॉ. सागरमल जैन

यौगिक मुद्राएँ : मानसिक शान्ति का एक सफल प्रयोग

कृपा वर्धक : पूज्य आचार्य श्री मज्जिन कैलाशसागर सूरीश्वरजी म.सा.

मंगल वर्धक : पूज्य उपाध्याय श्री मणिप्रभसागरजी म.सा.

आनन्द वर्धक : आगमज्योति प्रवर्तिनी महोदया पूज्या सज्जन श्रीजी म.सा.

प्रेरणा वर्धक : पूज्य गुरुवर्य्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा.

वात्सल्य वर्धक : गुर्वाज्ञा निमग्ना पूज्य प्रियदर्शना श्रीजी म.सा.

स्नेह वर्धक : पूज्य दिव्यदर्शना श्रीजी म.सा., पूज्य तत्वदर्शना श्रीजी म.सा., पूज्य सम्यक्दर्शना श्रीजी म.सा., पूज्य शुभदर्शना श्रीजी म.सा., पूज्य मुदितप्रज्ञाश्रीजी म.सा., पूज्य शीलगुणाश्रीजी म.सा., सुयोग्या कनकप्रभाजी, सुयोग्या श्रुतदर्शनाजी सुयोग्या संयमप्रज्ञाजी आदि भगिनी मण्डल

शोधकर्त्री : साध्वी सौम्यगुणाश्री (विधिप्रभा)

ज्ञान वृष्टि : डॉ. सागरमल जैन

प्रकाशक :
- प्राच्य विद्यापीठ, दुपाडा रोड, शाजापुर-465001
  email : sagarmal.jain@gmail.com
- सज्जनमणि ग्रन्थमाला प्रकाशन
  बाबू माधवलाल धर्मशाला, तलेटी रोड, पालीताणा-364270

प्रथम संस्करण : सन् 2014

प्रतियाँ : 1000

सहयोग राशि : ₹ 50.00
(पुन: प्रकाशनार्थ)

कम्पोज : विमल चन्द्र मिश्र, वाराणसी

कॅवर सेटिंग : शम्भू भट्टाचार्य, कोलकाता

मुद्रक : Antartica Press, Kolkata

ISBN : 978-81-910801-6-2 (XX)

© All rights reserved by Sajjan Mani Granthmala.

प्राप्ति स्थान

1. श्री सज्जनमणि ग्रन्थमाला प्रकाशन
बाबू माधवलाल धर्मशाला, तलेटी रोड,
पो. पालीताणा-364270 (सौराष्ट्र)
फोन : 02848-253701

2. श्री कान्तिलालजी मुकीम
श्री जिनरंगसूरि पौशाल, आड़ी बांस
तल्ला गली, 31/A, पो. कोलकाता-7
मो. 98300-14736

3. श्री भाईसा साहित्य प्रकाशन
M.V. Building, Ist Floor
Hanuman Road, PO : VAPI
Dist. : Valsad-396191 (Gujrat)
मो. 98255-09596

4. पार्श्वनाथ विद्यापीठ
I.T.I. रोड, करौंदी वाराणसी-5 (यू.पी.)
मो. 09450546617

5. डॉ. सागरमलजी जैन
प्राच्य विद्यापीठ, दुपाडा रोड
पो. शाजापुर-465001 (म.प्र.)
मो. 94248-76545
फोन : 07364-222218

6. श्री आदिनाथ जैन श्वेताम्बर
तीर्थ, कैवल्यधाम
पो. कुम्हारी-490042
जिला– दुर्ग (छ.ग.)
मो. 98271-44296
फोन : 07821-247225

7. श्री धर्मनाथ जैन मन्दिर
84, अमन कोविल स्ट्रीट
कोण्डी थोप, पो. चेन्नई-79 (T.N.)
फोन : 25207936,
044-25207875

8. श्री जिनकुशलसूरि जैन दादावाडी,
महावीर नगर, केम्प रोड
पो. मालेगाँव
जिला- नासिक (महा.)
मो. 9422270223

9. श्री सुनीलजी बोथरा
टूल्स एण्ड हार्डवेयर,
संजय गांधी चौक, स्टेशन रोड
पो. रायपुर (छ.ग.)
फोन : 94252-06183

10. श्री पदमचन्दजी चौधरी
शिवजीराम भवन, M.S.B. का रास्ता,
जौहरी बाजार
पो. जयपुर-302003
मो. 9414075821, 9887390000

11. श्री विजयराजजी डोसी
जिनकुशल सूरि दादाबाड़ी
89/90 गोविंदप्पा रोड
बसवनगुडी, पो. बैंगलोर (कर्ना.)
मो. 093437-31869

संपर्क सूत्र

श्री चन्द्रकुमारजी मुणोत
9331032777
श्री रिखबचन्दजी झाड़चूर
9820022641
श्री नवीनजी झाड़चूर
9323105863
श्रीमती प्रीतिजी अजितजी पारख
8719950000
श्री जिनेन्द्र बैद
9835564040
श्री पन्नाचन्दजी दूगड़
9831105908

हार्दिक अनुमोदन

गढ़ सिवाना हॉल बेंगलोर निवासी

मातुश्री फूली देवी - पिता श्री मिश्रीमलजी भंसाली

की

पावन स्मृति में

सुपुत्र

श्री बाबूलालजी-खम्मा देवी

सुपौत्र

प्रवीण-मधु, प्रकाश-वर्षा, अंकेश-किंजल

सुपौत्री

रंजना, पद्मा, विनीता

प्रपौत्र

ऋषभ, प्रवण

प्रपौत्री

नीवि, दिया, मानवी

समस्त भंसाली परिवार...

श्रुत साहित्य के अनन्य प्रेमी
श्री बाबूलालजी भंसाली, बैंगलोर

जीने को तो इस दुनिया में
सभी जीव जगत के जीते हैं।
जो कुछ कर जाते हैं अपने दम पर
वो अमर पुरुष कहलाते हैं।।

रंग-रंगीले राजस्थान के रेगिस्तानी टीलों के बीच बसा हुआ एक छोटा सा गाँव है गढ़ सिवाना। तृतीय दादा गुरुदेव की जन्मभूमि के रूप में विख्यात समियाणा धर्म-कर्म की जागृत ज्योत है। यहाँ की वसुधा में ही धर्म के संस्कार रमे हुए होने के कारण उसकी सौरभ स्वतः वहाँ के वाशिन्दों में आ जाती है। उस सौंधी-सौंधी खुशबू से उनका जीवन ही नहीं अपितु संपूर्ण समाज सुरभित होता है।

इस मिट्टी से उत्पन्न एक पुष्प है वर्तमान में बैंगलोर निवासी श्री बाबूलालजी भंसाली। सिर्फ सिवाना नगर में ही नहीं अपितु संपूर्ण जैन समाज में भंसाली गोत्रजों का विशेष वर्चस्व है।

श्रेष्ठिवर्य्य श्री मिश्रीमलजी भंसाली सीवान्ची पट्टी में एक कर्मठ कार्यकर्त्ता एवं उत्कृष्ट दानवीर के रूप में विख्यात थे। आपके द्वारा स्थापित 'भंसाली ज्ञान सेवा ट्रस्ट' आज भी समुचित रूप से गतिमान है। आपकी परछाई के रूप में आपके चारों पुत्र– श्री मूलचंदजी, छगनलालजी, चम्पालालजी और बाबूलालजी भी आपके अनुसार ही शासन प्रभावना में जुड़े हुए हैं। मातु श्री फूली देवी ने अपने पुत्र-पुत्रियों को सदैव नैतिकता एवं मानवता के मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी।

अध्यात्म रुचि सम्पन्न श्री बाबूलालजी का जन्म सन् 1949 को सिवाना नगर में हुआ। आपने अपना प्रारम्भिक अध्ययन अपनी जन्म भूमि में तथा First B.Com तक का अध्ययन कर्मभूमि बैंगलोर में किया।

गारमेन्ट एसेसरिज का व्यवसाय करते हुए भी आप अपनी दैनिक धार्मिक क्रियाओं में अत्यन्त चुस्त हैं। आपके परिवार में नियमतः पूजा-पाठ, सामायिक-स्वाध्याय, रात्रिभोजन त्याग आदि श्रावक योग्य समस्त आचार धर्मों का पालन किया जाता है। मानव सेवा एवं जीव दया में आप विशेष रूप से रुचिवन्त हैं। आपके द्वारा गढ़ सिवाना में Eye Campl भी लगाया गया और इसी तरह के कई अन्य कार्य भी सम्पन्न किए गए हैं।

चंपावाड़ी सिवाना, श्री जिनकुशलसूरि दादाबाड़ी-बैंगलोर, अनुभव स्मारक-पाली आदि कई धर्म स्थानों एवं सामाजिक संगठनों में भंसाली परिवार का अनूठा वर्चस्व है।

धर्मपत्नी श्रीमती खम्मा देवी जीवन संगिनी बनकर हर क्षेत्र में आपका सहयोग करती हैं और आपको धर्म कार्यों के लिए प्रोत्साहित भी। आपके सुपुत्र प्रवीण-प्रकाश-अंकेश एवं सुपुत्री रंजना-पद्मा-विनीता भी आपके पद चिह्नों पर अग्रसर हैं।

पूज्या गुरुवर्य्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा. से आपका जुड़ाव लगभग 35 वर्ष पुराना है। आपकी दो भतीजियाँ भी पूज्या श्री के चरणों में दीक्षस्थ हैं। पूज्या श्री से आपके परिवार का अत्यन्त आत्मीय सम्बन्ध रहा है अतः विगत 8-10 वर्षों से पूज्या सज्जनमणि गुरुवर्य्या श्री की निश्रा में नव्वाणु करवाने की प्रबल भावना थी जो अब साकार रूप लेने वाली है। सन् 2013 बाबू माधवलाल धर्मशाला में हो रहे पूज्या श्री के चातुर्मास का भी पूर्ण लाभ आप ले रहे हैं।

नव्वाणु यात्रा की विनंती हेतु जब आप कोलकाता पधारे उस समय साध्वी सौम्यगुणाजी के शोध ग्रन्थ श्रृंखला प्रकाशन के बारे में आपको ज्ञात हुआ तो आपने सहर्ष रूप से एक पुस्तक प्रकाशन में सहयोगी बनने की भावना अभिव्यक्त की जो आज साकार रूप लेने जा रही है।

सज्जनमणि ग्रन्थमाला आपके सत्कार्यों एवं सदाचारी जीवन की अनेकशः अनुमोदना करते हुए यही मंगल कामना करता है कि आप इसी तरह स्व-पर सेवा में जागृत रहते हुए जिनशासन को देदीप्यमान करें।

●

सम्पादकीय

मुद्रा विज्ञान पंच महाभूतों पर आश्रित सबसे प्राचीन एवं त्रिकाल प्रासंगिक महाविज्ञान है। भारतीय ऋषि-महर्षियों की वैज्ञानिकता एवं विलक्षणता का ज्वलंत प्रमाण है। ध्यान, आसन, प्राणायाम आदि प्राकृतिक योग साधनाएँ सम्पूर्ण विश्व में भारतीय संस्कृति की ही देन है। मुद्रा भी इन्हीं योग साधनाओं का एक प्रकार है।

मुद्रा अर्थात Actin या अंग संचालन की एक विशेष क्रिया जिसके द्वारा हाव-भाव प्रदर्शित किए जाते हैं। जब से इस सृष्टि में जीव हैं तभी से मुद्रा विज्ञान का भी अस्तित्व है। वाणी से पहले भाव अभिव्यक्ति का साधन मुद्रा ही बनती है। मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि उसके अन्त:करण में जैसे भाव होते हैं वैसी ही अभिव्यक्ति उसके मन, वचन, काया से होने लगती है। उदा. जब हमें किसी पर स्नेह आ रहा हो तो सहजतया मस्तक पर हाथ चला जाता है। क्रोध आ रहा हो तो आँखे लाल हो जाती है एवं शरीर तन जाता है। अभिमान का भाव आने पर कन्धे तन जाते हैं। पूर्व काल में चित्र एवं सांकेतिक भाषा का प्रयोग एक प्रकार से मुद्रा योग का ही रूप था। उबासी आने पर चुटकी बजाने के पीछे मुद्रा प्रयोग का एक बहुत बड़ा रहस्य छुपा हुआ था। जब भी उबासी आदि लेते हुए जबड़ा फँस जाए तो अंगूठे और मध्यमा अंगुली द्वारा मुख के आगे चुटकी बजाने से जबड़ा शीघ्र ही ठीक हो जाता है।

मुद्रा मानव के शरीर रूपी यन्त्र की नियन्त्रक तालिकाएँ (Switch) हैं। इन तालिकाओं के द्वारा मनुष्य के शरीर में महत्त्वपूर्ण तात्विक, मानसिक, बौद्धिक, आध्यत्मिक एवं शारीरिक परिवर्तन बिना किसी सहायता के सरलता से लाए जा सकते हैं। मुद्रा प्रयोग की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि किसी भी वर्ग, आयु, लिंग के लोगों द्वारा सहजता पूर्वक सीखी जा सकती है। इसके लिए किसी विशिष्ट सामग्री, सुविधा या वातावरण की आवश्यकता नहीं, व्यक्ति जब चाहे इनका तत्काल प्रयोग कर सकता है। आज रोगों

की बढ़ती संख्या तथा Doctor एवं दवाइयों का खर्च आम आदमी के लिए बहुत बड़ी समस्या है। इन परिस्थितियों में मुद्रा प्रयोग एक ब्रह्मास्त्र है।

मुद्रा निर्माण में मुख्य सहयोगी अंग है हाथ। प्रकृति ने जल, अग्नि, वायु आदि पाँचों तत्त्वों को हमारे हाथ में समाहित किया है। मुद्रा प्रयोग के द्वारा इन तत्त्वों का संतुलन किया जाता है।

आध्यात्मिक जगत के उत्थान में भी मुद्रा प्रयोग एक सम्यक मार्ग है। आन्तरिक भावजगत एवं चक्र जागरण में मुद्रा प्रयोग संजीवनी औषधि के रूप में कार्य करता है।

दैविक साधना अथवा देवताओं को आमंत्रित करते हुए उन्हें प्रसन्न करने आदि में भी मुद्रा प्रयोग प्राचीनकाल से देखा जाता है। प्रायः जितने भी धर्म सम्प्रदाय हैं उनमें कुछ मुद्राओं का प्रयोग उनके उत्पत्ति काल से ही प्रचलित है। प्रार्थना आदि के लिए सभी के द्वारा कुछ विशिष्ट मुद्राएँ धारण की जाती है। इस्लाम धर्म में नमाज अदा करते हुए ईसाई लोगों के द्वारा प्रार्थना करते हुए कुछ विशिष्ट मुद्राएँ प्रयोग में ली जाती है। वैदिक परम्परा में देवोपासना से सम्बन्धित एवं बौद्ध परम्परा में भगवान बुद्ध से सम्बन्धित मुद्राएँ विश्व प्रसिद्ध है।

यदि जन साहित्य का अवलोकन करें तो आगम साहित्य में कहीं-कहीं पर कुछ विशिष्ट मुद्राओं का आलेख प्राप्त होता है जैसे प्रतिक्रमण सम्बन्धी मुद्राओं का उल्लेख आवश्यक सूत्र में तो गोदुहासन, खड्गासन आदि का वर्णन भगवान महावीर की साधना कर आचारांग सूत्र में प्राप्त होता है। मध्यकालीन साहित्य की अपेक्षा विविध प्रतिष्ठाकल्प, विधिमार्गप्रपा, आचारदिनकर आदि ग्रन्थ इस विषय में द्रष्टव्य हैं।

साध्वी सौम्यगुणाश्रीजी ने विविध-विधानों में मुद्राओं के महत्व को देखते हुए आद्योपरान्त उपलब्ध मुद्राओं का सचित्र वर्णन करते हुए उनके लाभ आदि की प्रामाणिक चर्चा की है। जैन मुद्राओं के साथ नाट्य, बौद्ध, हिन्दू, यौगिक एवं आधुनिक चिकित्सा सम्बन्धी मुद्राओं का वर्णन करके इस कृति को विश्व उपयोगी बनाया है। मुद्राओं का सचित्र वर्णन उसकी प्रयोग विधि को और सहज एवं सरल बनाएगा। सहस्राधिक मुद्राओं का विशद एवं

प्रामाणिक यह संकलन विश्व वंदनीय है। प्रथम बार इतनी मुद्राओं को एक साथ प्रस्तुत किया जा रहा हैं।

साध्वी के इस विश्वस्तरीय योगदान के लिए सदियों तक उन्हें याद किया जाएगा। यह कार्य जिन धर्म को विश्व के कोने-कोने में पहुँचाएगा। मैं सौम्यगुणाश्रीजी के इस कार्य की अंतरमन से सराहना करता हूँ। वे इसी निष्ठा एवं लगन के साथ श्रुत उपासना में संलग्न रहें एवं जिनशासन के श्रुत भण्डार का वर्धन करें यही हार्दिक अभ्यर्थना है।

डॉ. सागरमल जैन
प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर

आशीर्वचन

भारतीय वांगमय ऋषि-महर्षियों द्वारा रचित लक्षाधिक ग्रन्थों से शोभायमान है। प्रत्येक ग्रन्थ अपने आप में अनेक नवीन विषय एवं नव्य उन्मेष लिए हुए हैं। हर ग्रन्थ अनेकशः प्राकृतिक, आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक रहस्यों से परिपूर्ण है। इन शास्त्रीय विषयों में एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है विधि-विधान। हमारे आचार-पक्ष को सुदृढ़ बनाने एवं उसे एक सम्यक दिशा देने का कार्य विधि-विधान ही करते हैं। विधि-विधान सांसारिक क्रिया-अनुष्ठानों को सम्पन्न करने का मार्ग दिग्दर्शित करते हैं।

जैन धर्म यद्यपि निवृत्तिमार्गी है जबकि विधि-विधान या क्रिया-अनुष्ठान प्रवृत्ति के सूचक हैं परंतु यथार्थतः जैन धर्म में विधि-विधानों का गुंफन निवृत्ति मार्ग पर अग्रसर होने के लिए ही हुआ है। आगम युग से ही इस विषयक चर्चा अनेक ग्रन्थों में प्राप्त होती है। जिनप्रभसूरि रचित विधिमार्गप्रपा वर्तमान विधि-विधानों का पृष्ठाधार है। साध्वी सौम्यगुणाजी ने इस ग्रंथ के अनेक रहस्यों को उद्घाटित किया है।

साध्वी सौम्याजी जैन संघ का जाज्वल्यमान सितारा है। उनकी ज्ञान आभा से मात्र जिनशासन ही नहीं अपितु समस्त आर्य परम्पराएँ शोभित हो रही हैं। सम्पूर्ण विश्व उनके द्वारा प्रकट किए गए ज्ञान दीप से प्रकाशित हो रहा है। इन्हें देखकर प्रवर्त्तिनी श्री सज्जन श्रीजी म.सा. की सहज स्मृति आ जाती है। सौम्याजी उन्हीं के नक्शे कदम पर चलकर अनेक नए आयाम श्रुत संवर्धन हेतु प्रस्तुत कर रही है।

साध्वीजी ने विधि-विधानों पर बहुपक्षीय शोध करके उसके विविध आयामों को प्रस्तुत किया है। इस शोध कार्य को 23 पुस्तकों के रूप में प्रस्तुत कर उन्होंने जैन विधि-विधानों के समग्र पक्षों को जन सामान्य के लिए सहज ज्ञातव्य बनाया है।

जिज्ञासु वर्ग इसके माध्यम से मन में उद्वेलित विविध शंकाओं

का समाधान कर पाएगा।

साध्वीजी इसी प्रकार श्रुत रत्नाकर के अमूल्य मोतियों की खोज कर ज्ञान राशि को समृद्ध करती रहे एवं अपने ज्ञानालोक से सकल संघ को रोशन करें यही शुभाशंसा...

आचार्य कैलास सागर सूरि
नाकोडा तीर्थ

विदुषी साध्वी श्री सौम्यगुणाश्रीजी ने विधि विधान सम्बन्धी विषयों पर शोध-प्रबन्ध लिख कर डी.लिट् उपाधि प्राप्त करके एक कीर्तिमान स्थापित किया है।

सौम्याजी ने पूर्व में विधिमार्गप्रपा का हिन्दी अनुवाद करके एक गुरुत्तर कार्य संपादित किया था। उस क्षेत्र में हुए अपने विशिष्ट अनुभवों को आगे बढ़ाते हुए उसी विषय को अपने शोध कार्य हेतु स्वीकृत किया तथा दत्त-चित्त से पुरुषार्थ कर विधि-विषयक गहनता से परिपूर्ण ग्रन्थराज का जो आलेखन किया है, वह प्रशंसनीय है।

हर गच्छ की अपनी एक अनूठी विधि-प्रक्रिया है, जो मूलतः आगम, टीका और क्रमशः परम्परा से संचालित होती है। खरतरगच्छ के अपने विशिष्ट विधि विधान हैं... मर्यादाएँ हैं... क्रियाएँ हैं...। हर काल में जैनाचार्यों ने साध्वाचार की शुद्धता को अक्षुण्ण बनाये रखने का भगीरथ प्रयास किया है। विधिमार्गप्रपा, आचार दिनकर, समाचारी शतक, प्रश्नोत्तर चत्वारिंशत शतक, साधु विधि प्रकाश, जिनवल्लभसूरि समाचारी, जिनपतिसूरि समाचारी, षडावश्यक बालावबोध आदि अनेक ग्रन्थ उनके पुरुषार्थ को प्रकट कर रहे हैं।

साध्वी सौम्यगुणाश्रीजी ने विधि विधान संबंधी बृहद् इतिहास की दिव्य झांकी के दर्शन कराते हुए गृहस्थ-श्रावक के सोलह संस्कार, व्रतग्रहण विधि, दीक्षा विधि, मुनि की दिनचर्या, आहार संहिता, योगोद्वहन विधि, पदारोहण विधि, आगम अध्ययन विधि, तप साधना विधि, प्रायश्चित्त विधि, पूजा विधि, प्रतिक्रमण विधि, प्रतिष्ठा विधि, मुद्रायोग आदि विभिन्न विषयों पर अपना चिंतन-विश्लेषण

प्रस्तुत कर इन सभी विधि विधानों की मौलिकता और सार्थकता को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में उजागर करने का अनूठा प्रयास किया है।

विशेष रूप से मुद्रायोग की चिकित्सा के क्षेत्र में जैन, बौद्ध और हिन्दु परम्पराओं का विश्लेषण करके मुद्राओं की विशिष्टता को उजागर किया है।

निश्चित ही इनका यह अनूठा पुरुषार्थ अभिनंदनीय है। मैं कामना करता हूँ कि संशोधन-विश्लेषण के क्षेत्र में वे खूब आगे बढ़ें और अपने गच्छ एवं गुरु के नाम को रोशन करते हुए ऊँचाईयों के नये सोपानों का आरोहण करें।

उपाध्याय श्री मणिप्रभसागर

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि विदुषी साध्वी डॉ॰ सौम्यगुणा श्रीजी ने डॉ॰ श्री सागरमलजी जैन के निर्देशन में 'जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन' इस विषय पर 23 खण्डों में बृहदस्तरीय शोध कार्य (डी.लिट्) किया है। इस शोध प्रबन्ध में परंपरागत आचार आदि अनेक विषयों का प्रामाणिक परिचय देने का सुंदर प्रयास किया गया है।

जैन परम्परा में क्रिया-विधि आदि धार्मिक अनुष्ठान कर्म क्षय के हेतु से मोक्ष को लक्ष्य में रखकर किए जाते हैं।

साध्वीश्री ने योग मुद्राओं का मानसिक, शारीरिक, मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से क्या लाभ होता है? इसका उल्लेख भी बहुत अच्छी तरह से किया है।

साध्वी सौम्यगुणाजी ने निःसंदेह चिंतन की गहराई में जाकर इस शोध प्रबन्ध की रचना की है, जो अभिनंदन के योग्य है।

मुझे आशा है कि विद्वद गण इस शोध प्रबन्ध का सुंदर लाभ उठायेंगे।

मेरी साध्वीजी के प्रति शुभकामना है कि श्रुत साधना में और अभिवृद्धि प्राप्त करें।

आचार्य पद्मसागर सूरि

विनयाद्यनेक गुणगण गरीमायमाना विदुषी साध्वी श्री शशिप्रभा श्रीजी एवं सौम्यगुणा श्रीजी आदि सपरिवार सादर अनुवन्दना सुखशाता के साथ।

आप शाता में होंगे। आपकी संयम यात्रा के साथ ज्ञान यात्रा अविरत चल रही होगी।

आप जैन विधि विधानों के विषय में शोध प्रबंध लिख रहे हैं यह जानकर प्रसन्नता हुई।

ज्ञान का मार्ग अनंत है। इसमें ज्ञानियों के तात्पयर्थि के साथ प्रामाणिकता पूर्ण व्यवहार होना आवश्यक रहेगा।

आप इस कार्य में सुंदर कार्य करके ज्ञानोपासना द्वारा स्वश्रेय प्राप्त करें ऐसी शासन देव से प्रार्थना है।

आचार्य राजशेखर सूरि
भद्रावती तीर्थ

महत्तरा श्रमणीवर्या श्री शशिप्रभाश्री जी

योग अनुवंदना!

आपके द्वारा प्रेषित पत्र प्राप्त हुआ। इसी के साथ 'शोध प्रबन्ध सार' को देखकर ज्ञात हुआ कि आपकी शिष्या साध्वी सौम्यगुणा श्री द्वारा किया गया बृहदस्तरीय शोध कार्य जैन समाज एवं श्रमण-श्रमणी वर्ग हेतु उपयोगी जानकारी का कारण बनेगा।

आपका प्रयास सराहनीय है।

श्रुत भक्ति एवं ज्ञानाराधना स्वपर के आत्म कल्याण का कारण बने यही शुभाशीर्वाद।

आचार्य रत्नाकरसूरि

जो कर रहे स्व-पर उपकार
अन्तर्हृदय से उनको अमृत उद्गार

मानव जीवन का प्रासाद विविधता की बहुविध पृष्ठ भूमियों पर आधृत है। यह न तो सरल सीधा राजमार्ग (Straight like highway)

है न पर्वत का सीधा चढ़ाव (ascent) न घाटी का उतार (descent) है अपितु यह सागर की लहर (sea-wave) के समान गतिशील और उतार-चढ़ाव से युक्त है। उसके जीवन की गति सदैव एक जैसी नहीं रहती। कभी चढ़ाव (Ups) आते हैं तो कभी उतार (Downs) और कभी कोई अवरोध (Speed Breaker) आ जाता है तो कभी कोई (trun) भी आ जाता है। कुछ अवरोध और मोड़ तो इतने खतरनाक (sharp) और प्रबल होते हैं कि मानव की गति-प्रगति और सन्मति लड़खड़ा जाती है, रुक जाती है इन बदलती हुई परिस्थितियों के साथ अनुकूल समायोजन स्थापित करने के लिए जैन दर्शन के आप्त मनीषियों ने प्रमुखतः दो प्रकार के विधि-विधानों का उल्लेख किया है– 1. बाह्य विधि-विधान 2. आन्तरिक विधि-विधान।

बाह्य विधि-विधान के मुख्यतः चार भेद हैं– 1. जातीय विधि-विधान 2. सामाजिक विधि-विधान 3. वैधानिक विधि-विधान 4. धार्मिक विधि-विधान।

1. जातीय विधि-विधान– जाति की समुत्कर्षता के लिए अपनी-अपनी जाति में एक मुखिया या प्रमुख होता है जिसके आदेश को स्वीकार करना प्रत्येक सदस्य के लिए अनिवार्य है। मुखिया नैतिक जीवन के विकास हेतु उचित-अनुचित विधि-विधान निर्धारित करता है। उन विधि-विधानों का पालन करना ही नैतिक चेतना का मानदण्ड माना जाता है।

2. सामाजिक विधि-विधान– नैतिक जीवन को जीवंत बनाए रखने के लिए समाज अनेकानेक आचार-संहिता का निर्धारण करता है। समाज द्वारा निर्धारित कर्त्तव्यों की आचार-संहिता को ज्यों का त्यों चुपचाप स्वीकार कर लेना ही नैतिक प्रतिमान है। समाज में पीढ़ियों से चले आने वाले सज्जन पुरुषों का अच्छा आचरण या व्यवहार समाज का विधि-विधान कहलाता है। जो इन विधि-विधानों का आचरण करता है, वह पुरुष सत्पुरुष बनने की पात्रता का विकास करता है।

3. वैधानिक विधि-विधान– अनैतिकता-अनाचार जैसी हीन प्रवृत्तियों से मुक्त करवाने हेतु राज सत्ता के द्वारा अनेकविध विधि-विधान बनाए

जाते हैं। इन विधि-विधानों के अन्तर्गत 'यह करना उचित है' अथवा 'यह करना चाहिए' आदि तथ्यों का निरूपण रहता है। राज सत्ता द्वारा आदेशित विधि-विधान का पालन आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। इन नियमों का पालन करने से चेतना अशुभ प्रवृत्तियों से अलग रहती है।

4. **धार्मिक विधि-विधान**– इसमें आप्त पुरुषों के आदेश-निर्देश, विधि-निषेध, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य निर्धारित रहते हैं। जैन दर्शन में "आणाए धम्मो" कहकर इसे स्पष्ट किया गया है। जैनागमों में साधक के लिए जो विधि-विधान या आचार निश्चित किए गये हैं, यदि उनका पालन नहीं किया जाता है तो आप्त के अनुसार यह कर्म अनैतिकता की कोटि में आता है। धार्मिक विधि-विधान जो अर्हत् आदेशानुसार है उसका धर्माचरण करता हुआ वीर साधक अकुतोभय हो जाता है अर्थात वह किसी भी प्राणी को भय उत्पन्न हो, वैसा व्यवहार नहीं करता। यही सद्व्यवहार धर्म है तथा यही हमारे कर्मों के नैतिक मूल्यांकन की कसौटी है। तीर्थंकरोपदिष्ट विधि-निषेध मूलक विधानों को नैतिकता एवं अनैतिकता का मानदण्ड माना गया है।

लौकिक एषणाओं से विमुक्त, अरहन्त प्रवाह में विलीन, अप्रमत्त स्वाध्याय रसिका साध्वी रत्ना सौम्यगुणा श्रीजी ने जैन वाङ्मय की अनमोल कृति खरतरगच्छाचार्य श्री जिनप्रभसूरि द्वारा विरचित **विधिमार्गप्रपा** में गुम्फित जाज्वल्यमान विषयों पर अपनी तीक्ष्ण प्रज्ञा से जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन को मुख्यतः चार भाग (23 खण्डों) में वर्गीकृत करने का अतुलनीय कार्य किया है। शोध ग्रन्थ के अनुशीलन से यह स्पष्टतः हो जाता है कि साध्वी सौम्यगुणा श्रीजी ने चेतना के ऊर्ध्वीकरण हेतु प्रस्तुत शोध ग्रन्थ में जिन आज्ञा का निरूपण किसी परम्परा के दायरे से नहीं प्रज्ञा की कसौटी पर कस कर किया है। प्रस्तुत कृति की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि हर पंक्ति प्रज्ञा के आलोक से जगमगा रही है। बुद्धिवाद के इस युग में विधि-विधान को एक नव्य-भव्य स्वरूप प्रदान करने का सुन्दर, समीचीन, समुचित प्रयास किया गया है। आत्म

पिपासुओं के लिए एवं अनुसन्धित्सुओं के लिए यह श्रुत निधि आत्म सम्मानार्जन, भाव परिष्कार और आन्तरिक औज्ज्वल्य की निष्पत्ति में सहायक सिद्ध होगी।

अल्प समयावधि में साध्वी सौम्यगुणाश्रीजी ने जिस प्रमाणिकता एवं दार्शनिकता से जिन वचनों की परम्परा के आग्रह से रिक्त तथा साम्प्रदायिक मान्यताओं के दुराग्रह से मुक्त रखकर सर्वग्राही श्रुत का निष्पादन जैन वाङ्मय के क्षितिज पर नव्य नक्षत्र के रूप में किया है। आप श्रुत साभिरुचि में निरन्तर प्रवहमान बनकर अपने निर्णय, विशुद्ध विचार एवं निर्मल प्रज्ञा के द्वारा सदैव सरल, सरस और सुगम अभिनव ज्ञान रश्मियों को प्रकाशित करती रहें। यही अन्तःकरण आशीर्वाद सह अनेकशः अनुमोदना... अभिनंदन।

जिनमहोदय सागर सूरि चरणरज
मुनि पीयूष सागर

जैन विधि की अनमोल निधि

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता है कि साध्वी डॉ. सौम्यगुणा श्रीजी म.सा. द्वारा "जैन-विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन" इस विषय पर सुविस्तृत शोध प्रबन्ध सम्पादित किया गया है। वस्तुतः किसी भी कार्य या व्यवस्था के सफल निष्पादन में विधि (Procedure) का अप्रतिम महत्त्व है। प्राचीन कालीन संस्कृतियाँ चाहे वह वैदिक हो या श्रमण, इससे अछूती नहीं रही। श्रमण संस्कृति में अग्रगण्य है– जैन संस्कृति। इसमें विहित विविध विधि-विधान वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं अध्यात्मिक जीवन के विकास में अपनी महती भूमिका अदा करते हैं। इसी तथ्य को प्रतिपादित करता है प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध।

इस शोध प्रबन्ध की प्रकाशन वेला में हम साध्वीश्री के कठिन प्रयत्न की आत्मिक अनुमोदना करते हैं। निःसंदेह, जैन विधि की इस अनमोल निधि से श्रावक-श्राविका, श्रमण-श्रमणी, विद्वान-विचारक सभी लाभान्वित होंगे। यह विश्वास करते हैं कि वर्तमान युवा पीढ़ी के लिए

भी यह कृति अति प्रासंगिक होगी, क्योंकि इसके माध्यम से उन्हें आचार-पद्धति यानि विधि-विधानों का वैज्ञानिक पक्ष भी ज्ञात होगा और वह अधिक आचार निष्ठ बन सकेगी।

साध्वीश्री इसी प्रकार जिनशासन की सेवा में समर्पित रहकर स्व-पर विकास में उपयोगी बनें, यही मंगलकामना।

मुनि महेन्द्रसागर
1.2.13 भद्रावती

विदुषी आर्या रत्ना सौम्यगुणा श्रीजी ने जैन विधि विधानों पर विविध पक्षीय बृहद शोध कार्य संपन्न किया है। चार भागों में विभाजित एवं 23 खण्डों में वर्गीकृत यह विशाल कार्य निःसंदेह अनुमोदनीय, प्रशंसनीय एवं अभिनंदनीय है।

शासन देव से प्रार्थना है कि उनकी बौद्धिक क्षमता में दिन दूगुनी रात चौगुनी वृद्धि हो। ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम ज्ञान गुण की वृद्धि के साथ आत्म ज्ञान प्राप्ति में सहायक बनें।

यह शोध ग्रन्थ ज्ञान पिपासुओं की पिपासा को शान्त करे, यही मनोहर अभिलाषा।

महत्तरा मनोहर श्री चरणरज
प्रवर्त्तिनी कीर्तिप्रभा श्रीजी

दूध को दही में परिवर्तित
करना सरल है। जामन डालिए
और दही तैयार हो जाता है।
किन्तु, दही से मक्खन निकालना
कठिन है। इसके लिए दही को
मथना पड़ता है। तब कहीं
जाकर मक्खन प्राप्त होता है।
इसी प्रकार अध्ययन एक
अपेक्षा से सरल है, किन्तु

तुलनात्मक अध्ययन कठिन है।
इसके लिए कई शास्त्रों को
मथना पड़ता है।
साध्वी सौम्यगुणा श्री ने जैन
विधि-विधानों पर रचित साहित्य
का मंथन करके एक सुंदर चिंतन
प्रस्तुत करने का जो प्रयास किया है
वह अत्यंत अनुमोदनीय एवं
प्रशंसनीय है।
शुभकामना व्यक्त
करती हूँ कि यह
शास्त्रमंथन अनेक साधकों
के कर्मबंधन तोड़ने में
सहायक बने।

साध्वी संवेगनिधि

सुश्रावक श्री कान्तिलालजी मुकीम द्वारा शोध प्रबंध सार संप्राप्त हुआ। विदुषी साध्वी श्री सौम्यगुणाजी के शोधसार ग्रन्थ को देखकर ही कल्पना होने लगी कि शोध ग्रन्थ कितना विराट्काय होगा। वर्षों के अथक परिश्रम एवं सतत रुचि पूर्वक किए गए कार्य का यह सुफल है।

वैदुष्य सह विशालता इस शोध ग्रन्थ की विशेषता है।

हमारी हार्दिक शुभकामना है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनका बहुमुखी विकास हो! जिनशासन के गगन में उनकी प्रतिभा, पवित्रता एवं पुण्य का दिव्यनाद हो। किं बहुना!

साध्वी मणिप्रभा श्री
भद्रावती तीर्थ

मंगल नाद

मुद्रा नाम सुनते ही हमारे सामने प्रतिष्ठा आदि में अथवा साधना आदि में प्रयुक्त कुछ मुद्राएँ उभरने लगती है, परन्तु यह शब्द मात्र वहाँ तक सीमित नहीं है। हमारी दैनिक क्रियाओं में भी मुद्रा का प्रमुख स्थान है क्योंकि जन-जीवन की प्रत्येक अभिव्यक्ति मुद्रा के माध्यम से होती है। यदि विधि-विधान के सन्दर्भ में मुद्रा प्रयोग पर विचार करें तो अब तक प्रचलित मुद्राओं के विषय में ही जानकारी एवं पुस्तकें आदि संप्राप्त है।

साध्वी सौम्यगुणाजी ने मुद्रा विषयक कार्य अत्यन्त बृहद् स्तर पर कई नूतन रहस्यों की उद्घाटित करते हुए किया है। इन्होंने जैन परम्परा से सम्बन्धित लगभग 200 मुद्राएँ, 400 बौद्ध मुद्राएँ, हिन्दू और नाट्य परम्परा से सम्बन्धित करीब 400 ऐसे लगभग हजार मुद्राओं पर ऐतिहासिक कार्य किया है। जो विश्व स्तर पर अपना प्रथम स्थान रखता है। यह कार्य समस्त धर्मावलम्बियों के लिए उपयोगी भी बनेगा, क्योंकि इसे साम्प्रदायिक सीमाओं से परे किया गया है। यद्यपि बौद्ध एवं वैदिक परम्परा में इस विषय पर कार्य हुआ है किन्तु वह स्वरूप एवं विवरण तक ही सीमित है, उनकी उपादेयता एवं उपयोगिता आदि के सम्बन्ध में यह प्रथम कार्य है। इसी के साथ साध्वीजी ने सामाजिक, पारिवारिक, वैयक्तिक, मनोवैज्ञानिक आदि के परिप्रेक्ष्य में भी इस विषय पर गहन अध्ययन किया है।

इन मुद्राओं में से भी अभ्यास साध्य, अनभ्यास साध्य मुद्राओं का वर्णन भिन्न-भिन्न साहित्य में प्राप्त मुद्राओं के आधार पर किया गया है। इसकी वर्तमान उपयोगिता दर्शाने हेतु साध्वीजी ने एक्युप्रेशर, चक्र जागरण, तत्त्व संतुलन एवं विभिन्न रोगों पर इनका प्रभाव आदि को परिप्रेक्ष्यों में भी यह कार्य किया है। मुद्राओं का ज्ञान सुगमता से किया जा सके एतदर्थ प्रत्येक मुद्रा का रेखाचित्र दीर्घ परिश्रम एवं अत्यन्त सजगता पूर्वक बनाया गया है।

इस दुरुह कार्य को साध्वीजी ने जिस निष्ठा एवं उदार हृदयता के साथ सम्पन्न किया है। इसके लिए वे सदैव अनुशंसनीय एवं अनुमोदनीय हैं। इनकी बौद्धिक क्षमता का ही परिणाम है कि दो वर्ष जितने लम्बे कार्य को इन्होंने एक वर्ष के भीतर पूर्ण किया है। यद्यपि कई बार हम लोगों ने समय की अल्पता, करते हुए यह कार्य की विराटता एवं दुरुहता को देख जैन परम्परा तक सीमित करने का सुझाव भी दिया परंतु यदि सामग्री एवं जानकारी होते हुए कार्य को आधा अधूरा छोड़ना यह अन्वेषक का लक्षण नहीं है। इसलिए अत्यल्प समय में कठोर श्रम के साथ इस कार्य को सात खण्डों में सम्पन्न किया है। आज मैं सौम्याजी के इस कार्य से स्वयं को ही नहीं अपितु संपूर्ण जैन समाज को गौरवान्वित अनुभव कर रही हूँ।

मैं अन्तर्मन से सौम्याजी की एकाग्रता, कार्य मग्नता, आज्ञाकारिता एवं अप्रमत्तता के लिए इन्हें साधुवाद एवं भविष्य के लिए शुभाशीष प्रदान करती हूँ।

आर्य्या शशिप्रभा श्री

दीक्षा गुरु प्रवर्त्तिनी सज्जन श्रीजी म.सा. एक परिचय

रजताभ रजकणों से रंजित राजस्थान असंख्य कीर्ति गाथाओं का वह रश्मि पुंज है जिसने अपनी आभा के द्वारा संपूर्ण धरा को देदीप्यमान किया है। इतिहास के पन्नों में जिसकी पावन पाण्डुलिपियाँ अंकित है ऐसे रंगीले राजस्थान का विश्रुत नगर है जयपुर। इस जौहरियों की नगरी ने अनेक दिव्य रत्न इस वसुधा को अर्पित किए। उन्हीं में से कोहिनूर बनकर जैन संघ की आभा को दीप्त करने वाला नाम है- पूज्या प्रवर्त्तिनी सज्जन श्रीजी म.सा.।

आपश्री इस कलियुग में सतयुग का बोध कराने वाली सहज साधिका थी। चतुर्थ आरे का दिव्य अवतार थी। जयपुर की पुण्य धरा से आपका विशेष सम्बन्ध रहा है। आपके जीवन की अधिकांश महत्त्वपूर्ण घटनाएँ जैसे- जन्म, विवाह, दीक्षा, देह विलय आदि इसी वसुधा की साक्षी में घटित हुए।

आपका जीवन प्राकृतिक संयोगों का अनुपम उदाहरण था। जैन परम्परा के तेरापंथी आम्नाय में आपका जन्म, स्थानकवासी परम्परा में विवाह एवं मन्दिरमार्गी खरतर परम्परा में प्रव्रज्या सम्पन्न हुई। आपके जीवन का यही त्रिवेणी संगम रत्नत्रय की साधना के रूप में जीवन्त हुआ।

आपका जन्म वैशाखी बुद्ध पूर्णिमा के पर्व दिवस के दिन हुआ। आप उन्हीं के समान तत्त्ववेत्ता, अध्यात्म योगी, प्रज्ञाशील साधक थी। सज्जनता, मधुरता, सरलता, सहजता, संवेदनशीलता, परदु:खकातरता आदि गुण तो आप में जन्मत: परिलक्षित होते थे। इसी कारण आपका नाम सज्जन रखा गया और यही नाम दीक्षा के बाद भी प्रवर्त्तित रहा।

संयम ग्रहण हेतु दीर्घ संघर्ष करने के बावजूद भी आपने विनय, मृदुता, साहस एवं मनोबल डिगने नहीं दिया। अन्तत: 35 वर्ष की आयु में पूज्या प्रवर्त्तिनी ज्ञान श्रीजी म.सा. के चरणों में भागवती दीक्षा अंगीकार की।

दीवान परिवार के राजशाही ठाठ में रहने के बाद भी संयमी जीवन का हर छोटा-बड़ा कार्य आप अत्यंत सहजता पूर्वक करती थी। छोटे-बड़े सभी की

सेवा हेतु सदैव तत्पर रहती थी। आपका जीवन सद्गुणों से युक्त विद्वत्ता की दिव्य माला था। आप में विद्यमान गुण शास्त्र की निम्न पंक्तियों को चरितार्थ करते थे–

शीलं परहितासक्ति, रनुत्सेकः क्षमा धृतिः।
अलोभश्चेति विद्यायाः, परिपाकोज्ज्वलं फलः ।।

अर्थात शील, परोपकार, विनय, क्षमा, धैर्य, निर्लोभता आदि विद्या की पूर्णता के उज्ज्वल फल हैं।

अहिंसा, तप साधना, सत्यनिष्ठा, गम्भीरता, विनम्रता एवं विद्वानों के प्रति असीम श्रद्धा उनकी विद्वत्ता की परिधि में शामिल थे। वे केवल पुस्तकें पढ़कर नहीं अपितु उन्हें आचरण में उतार कर महान बनी थी। आपको शब्द और स्वर की साधना का गुण भी सहज उपलब्ध था।

दीक्षा अंगीकार करने के पश्चात आप 20 वर्षों तक गुरु एवं गुरु भगिनियों की सेवा में जयपुर रही। तदनन्तर कल्याणक भूमियों की स्पर्शना हेतु पूर्वी एवं उत्तरी भारत की पदयात्रा की। आपश्री ने 65 वर्ष की आयु और उसमें भी ज्येष्ठ महीने की भयंकर गर्मी में सिद्धाचल तीर्थ की नव्वाणु यात्रा कर एक नया कीर्तिमान स्थापित किया।

राजस्थान, गुजरात, उत्तर प्रदेश, बंगाल, बिहार आदि क्षेत्रों में धर्म की सरिता प्रवाहित करते हुए भी आप सदैव ज्ञानदान एवं ज्ञानपान में संलग्न रहती थी। इसी कारण लोक परिचय, लोकैषणा, लोकाशंसा आदि से अत्यंत दूर रही।

आपश्री प्रखर वक्ता, श्रेष्ठ साहित्य सर्जिका, तत्त्व चिंतिका, आशु कवयित्री एवं बहुभाषाविद थी। विद्वदवर्ग में आप सर्वोत्तम स्थान रखती थी। हिन्दी, गुजराती, मारवाड़ी, संस्कृत, प्राकृत, अंग्रेजी, उर्दू, पंजाबी आदि अनेक भाषाओं पर आपका सर्वाधिकार था। जैन दर्शन के प्रत्येक विषय का आपको मर्मस्पर्शी ज्ञान था। आप ज्योतिष, व्याकरण, अलंकार, साहित्य, इतिहास, शकुन शास्त्र, योग आदि विषयों की भी परम वेत्ता थी।

उपलब्ध सहस्र रचनाएँ तथा अनुवादित सम्पादित एवं लिखित साहित्य आपकी कवित्व शक्ति और विलक्षण प्रज्ञा को प्रकट करते हैं।

प्रभु दर्शन में तन्मयता, प्रतिपल आत्म रमणता, स्वाध्याय मग्नता, अध्यात्म लीनता, निस्पृहता, अप्रमत्तता, पूज्यों के प्रति लघुता एवं छोटों के प्रति मृदुता आदि गुण आपश्री में बेजोड़ थे। हठवाद, आग्रह, तर्क-वितर्क,

अहंकार, स्वार्थ भावना का आप में लवलेश भी नहीं था। सभी के प्रति समान स्नेह एवं मृदु व्यवहार, निरपेक्षता एवं अंतरंग विरक्तता के कारण आप सर्वजन प्रिय और आदरणीय थी।

आपकी गुण गरिमा से प्रभावित होकर गुरुजनों एवं विद्वानों द्वारा आपको आगम ज्योति, शास्त्र मर्मज्ञा, आशु कवयित्री, अध्यात्म योगिनी आदि सार्थक पदों से अलंकृत किया गया। वहीं सकल श्री संघ द्वारा आपको साध्वी समुदाय में सर्वोच्च प्रवर्त्तिनी पद से भी विभूषित किया गया।

आपश्री के उदात्त व्यक्तित्व एवं कर्मशील कर्तृत्व से प्रभावित हजारों श्रद्धालुओं की आस्था को 'श्रमणी' अभिनन्दन ग्रन्थ के रूप में लोकार्पित किया गया। खरतरगच्छ परम्परा में अब तक आप ही एक मात्र ऐसी साध्वी हैं जिन पर अभिनन्दन ग्रन्थ लिखा गया है।

आप में समस्त गुण चरम सीमा पर परिलक्षित होते थे। कोई सद्गुण ऐसा नहीं था जिसके दर्शन आप में नहीं होते हो। जिसने आपको देखा वह आपका ही होकर रह गया।

आपके निरपेक्ष, निस्पृह एवं निरासक्त जीवन की पूर्णता जैन एवं जैनेतर दोनों परम्पराओं में मान्य, शाश्वत आराधना तिथि **'मौन एकादशी'** पर्व के दिन हुई। इस पावन तिथि के दिन आपने देह का त्याग कर सदा के लिए मौन धारण कर लिया। आपके इस समाधिमरण को श्रेष्ठ मरण के रूप में सिद्ध करते हुए उपाध्याय मणिप्रभ सागरजी म.सा. ने लिखा है–

महिमा तेरी क्या गाये हम, दिन कैसा स्वीकार किया।
मौन ग्यारस माला जपते, मौन सर्वथा धार लिया
गुरुवर्य्या तुम अमर रहोगी, साधक कभी न मरते हैं।।

आज परम पूज्या संघरत्ना शशिप्रभा श्रीजी म.सा. आपके मंडल का सम्यक संचालन कर रही हैं। यद्यपि आपका विचरण क्षेत्र अल्प रहा परंतु आज आपका नाम दिग्दिगन्त व्याप्त है। आपके नाम स्मरण मात्र से ही हर प्रकार की Tension एवं विपदाएँ दूर हो जाती है।

●

शिक्षा गुरु पूज्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा. एक परिचय

'धोरों की धरती' के नाम से विख्यात राजस्थान अगणित यशोगाथाओं का उद्‌भव स्थल है। इस बहुरत्ना वसुंधरा पर अनेकशः वीर योद्धाओं, परमात्म भक्तों एवं ऋषि-महर्षियों का जन्म हुआ है। इसी रंग-रंगीले राजस्थान की परम पुण्यवंती साधना भूमि है श्री फलौदी। नयन रम्य जिनालय, दादाबाड़ियों एवं स्वाध्याय गुंज से शोभायमान उपाश्रय इसकी ऐतिहासिक धर्म समृद्धि एवं शासन समर्पण के प्रबल प्रतीक हैं। इस मातृभूमि ने अपने उर्वरा से कई अमूल्य रत्न जिनशासन की सेवा में अर्पित किए हैं। चाहे फिर वह साधु-साध्वी के रूप में हो या श्रावक-श्राविका के रूप में। वि.सं. 2001 की भाद्रकृष्णा अमावस्या को धर्मनिष्ठ दानवीर ताराचंदजी एवं सरल स्वभावी बालादेवी गोलेछा के गृहांगण में एक बालिका की किलकारियां गूंज रही थी। अमावस्या के दिन उदित हुई यह किरण भविष्य में जिनशासन की अनुपम किरण बनकर चमकेगी यह कौन जानता था? कहते हैं सज्जनों के सम्पर्क में आने से दुर्जन भी सज्जन बन जाते हैं तब सम्यकदृष्टि जीव तो निःसन्देह सज्जन का संग मिलने पर स्वयमेव ही महानता को प्राप्त कर लेते हैं।

किरण में तप त्याग और वैराग्य के भाव जन्मजात थे। इधर पारिवारिक संस्कारों ने उसे अधिक उफान दिया। पूर्वोपार्जित सत्संस्कारों का जागरण हुआ और वह भुआ महाराज उपयोग श्रीजी के पथ पर अग्रसर हुई। अपने बाल मन एवं कोमल तन को गुरु चरणों में समर्पित कर 14 वर्ष की अल्पायु में ही किरण एक तेजस्वी सूर्य रश्मि से शीतल शशि के रूप में प्रवर्त्तित हो गई। आचार्य श्री कवीन्द्र सागर सूरीश्वरजी म.सा. की निश्रा में मरूधर ज्योति मणिप्रभा श्रीजी एवं आपकी बड़ी दीक्षा एक साथ सम्पन्न हुई।

इसे पुण्य संयोग कहें या गुरु कृपा की फलश्रुति? आपने 32 वर्ष के गुरु सान्निध्य काल में मात्र एक चातुर्मास गुरुवर्य्याश्री से अलग किया और वह भी पूज्या प्रवर्त्तिनी विचक्षण श्रीजी म.सा. की आज्ञा से। 32 वर्ष की सान्निध्यता में आप कुल 32 महीने भी गुरु सेवा से वंचित नहीं रही। आपके जीवन की यह

विशेषता पूज्यवरों के प्रति सर्वात्मना समर्पण, अगाध सेवा भाव एवं गुरुकुल वास के महत्त्व को इंगित करती है।

आपश्री सरलता, सहजता, सहनशीलता, सहृदयता, विनम्रता, सहिष्णुता, दीर्घदर्शिता आदि अनेक दिव्य गुणों की पुंज हैं। संयम पालन के प्रति आपकी निष्ठा एवं मनोबल की दृढ़ता यह आपके जिन शासन समर्पण की सूचक है। आपका निश्छल, निष्कपट, निर्दम्भ व्यक्तित्व जनमानस में आपकी छवि को चिरस्थापित करता है। आपश्री का बाह्य आचार जितना अनुमोदनीय है, आंतरिक भावों की निर्मलता भी उतनी ही अनुशंसनीय है। आपकी इसी गुणवत्ता ने कई पथ भ्रष्टों को भी धर्माभिमुख किया है। आपका व्यवहार हर वर्ग के एवं हर उम्र के व्यक्तियों के साथ एक समान रहता है। इसी कारण आप आबाल वृद्ध सभी में समादृत हैं। हर कोई बिना किसी संकोच या हिचक के आपके समक्ष अपने मनोभाव अभिव्यक्त कर सकता है।

शास्त्रों में कहा गया है 'सन्त हृदय नवनीत समाना'– आपका हृदय दूसरों के लिए मक्खन के समान कोमल और सहिष्णु है। वहीं इसके विपरीत आप स्वयं के लिए वज्र से भी अधिक कठोर हैं। आपश्री अपने नियमों के प्रति अत्यन्त दृढ़ एवं अतुल मनोबली हैं। आज जीवन के लगभग सत्तर बसंत पार करने के बाद भी आप युवाओं के समान अप्रमत्त, स्फुर्तिमान एवं उत्साही रहती हैं। विहार में आपश्री की गति समस्त साध्वी मंडल से अधिक होती है।

आहार आदि शारीरिक आवश्यकताओं को आपने अल्पायु से ही सीमित एवं नियंत्रित कर रखा है। नित्य एकाशना, पुरिमड्ढ प्रत्याख्यान आदि के प्रति आप अत्यंत चुस्त हैं। जिस प्रकार सिंह अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने हेतु पूर्णत: सचेत एवं तत्पर रहता है वैसे ही आपश्री विषय-कषाय रूपी शत्रुओं का दमन करने में सतत जागरूक रहती हैं। विषय वर्धक अधिकांश विगय जैसे– मिठाई, कढ़ाई, दही आदि का आपके सर्वथा त्याग है।

आपश्री आगम, धर्म दर्शन, संस्कृत, प्राकृत, गुजराती आदि विविध विषयों की ज्ञाता एवं उनकी अधिकारिणी है। व्यावहारिक स्तर पर भी आपने एम.ए. के समकक्ष दर्शनाचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण की है। अध्ययन के संस्कार आपको गुरु परम्परा से वंशानुगत रूप में प्राप्त हुए हैं। आपकी निश्रागत गुरु भगिनियों एवं शिष्याओं के अध्ययन, संयम पालन तथा आत्मोकर्ष के प्रति आप सदैव सचेष्ट

रहती हैं। आपश्री एक सफल अनुशास्ता हैं यही वजह है कि आपकी देखरेख में सज्जन मण्डल की फुलवारी उन्नति एवं उत्कर्ष को प्राप्त कर रही हैं।

तप और जप आपके जीवन का अभिन्न अंग है। 'ॐ ह्रीं अर्हं' पद की रटना प्रतिपल आपके रोम-रोम में गुंजायमान रहती है। जीवन की कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी आप तदनुकूल मन:स्थिति बना लेती हैं। आप हमेशा कहती हैं कि

जो-जो देखा वीतराग ने, सो सो होसी वीरा रे।
अनहोनी ना होत जगत में, फिर क्यों होत अधीरा रे।।

आपकी परमात्म भक्ति एवं गुरुदेव के प्रति प्रवर्धमान श्रद्धा दर्शनीय है। आपका आगमानुरूप वर्तन आपको निसन्देह महान पुरुषों की कोटी में उपस्थित करता है। आपश्री एक जन प्रभावी वक्ता एवं सफल शासन सेविका हैं।

आपश्री की प्रेरणा से जिनशासन की शाश्वत परम्परा को अक्षुण्ण रखने में सहयोगी अनेकश: जिनमंदिरों का निर्माण एवं जीर्णोद्धार हुआ है। श्रुत साहित्य के संवर्धन में आपश्री के साथ आपकी निश्रारत साध्वी मंडल का भी विशिष्ट योगदान रहा है। अब तक 25-30 पुस्तकों का लेखन-संपादन आपकी प्रेरणा से साध्वी मंडल द्वारा हो चुका है एवं अनेक विषयों पर कार्य अभी भी गतिमान है।

भारत के विविध क्षेत्रों का पद भ्रमण करते हुए आपने अनेक क्षेत्रों में धर्म एवं ज्ञान की ज्योति जागृत की है। राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, छ.ग., यू.पी., बिहार, बंगाल, तमिलनाडु, कर्नाटक, महाराष्ट्र, झारखंड, आन्ध्रप्रदेश आदि अनेक प्रान्तों की यात्रा कर आपने उन्हें अपनी पदरज से पवित्र किया है। इन क्षेत्रों में हुए आपके ऐतिहासिक चातुर्मासों की चिरस्मृति सभी के मानस पटल पर सदैव अंकित रहेगी। अन्त में यही कहूँगी-

चिन्तन में जिसके हो क्षमता, वाणी में सहज मधुरता हो।
आचरण में संयम झलके, वह श्रद्धास्पद बन जाता है।
जो अन्तर में ही रमण करें, वह सन्त पुरुष कहलाता है।
जो भीतर में ही भ्रमण करें, वह सन्त पुरुष कहलाता है।।

ऐसी विरल साधिका आर्यारत्न पूज्याश्री के चरण सरोजों में मेरा जीवन सदा भ्रमरवत् गुंजन करता रहे, यही अन्तरकामना।

साध्वी सौम्याजी की शोध यात्रा के अविस्मरणीय पल

साध्वी प्रियदर्शनाश्री

आज सौम्यगुणाजी को सफलता के इस उत्तुंग शिखर पर देखकर ऐसा लग रहा है मानो चिर रात्रि के बाद अब यह मनभावन अरुणिम वेला उदित हुई हो। आज इस सफलता के पीछे रहा उनका अथक परिश्रम, अनेकशः बाधाएँ, विषय की दुरूहता एवं दीर्घ प्रयास के विषय में सोचकर ही मन अभिभूत हो जाता है। जिस प्रकार किसान बीज बोने से लेकर फल प्राप्ति तक अनेक प्रकार से स्वयं को तपाता एवं खपाता है और तब जाकर उसे फल की प्राप्ति होती है या फिर जब कोई माता नौ महीने तक गर्भ में बालक को धारण करती है तब उसे मातृत्व सुख की प्राप्ति होती है ठीक उसी प्रकार सौम्यगुणाजी ने भी इस कार्य की सिद्धि हेतु मात्र एक या दो वर्ष नहीं अपितु सत्रह वर्ष तक निरन्तर कठिन साधना की है। इसी साधना की आँच में तपकर आज 23 Volumes के बृहद् रूप में इनका स्वर्णिम कार्य जन ग्राह्य बन रहा है।

आज भी एक-एक घटना मेरे मानस पटल पर फिल्म के रूप में उभर रही है। ऐसा लगता है मानो अभी की ही बात हो, सौम्याजी को हमारे साथ रहते हुए 28 वर्ष होने जा रहे हैं और इन वर्षों में इन्हें एक सुन्दर सलोनी गुड़िया से एक विदुषी शासन प्रभाविका, गूढ़ान्वेषी साधिका बनते देखा है। एक पाँचवीं पढ़ी हुई लड़की आज D.LIt की पदवी से विभूषित होने वाली है। वह भी कोई सामान्य D.Lit. नहीं, 22-23 भागों में किया गया एक बृहद् कार्य और जिसका एक-एक भाग एक शोध प्रबन्ध (Thesis) के समान है। अब तक शायद ही किसी भी शोधार्थी ने डी.लिट् कार्य इतने अधिक Volumes में सम्पन्न किया होगा। लाडनूं विश्वविद्यालय की प्रथम डी.लिट्. शोधार्थी सौम्याजी के इस कार्य ने विश्वविद्यालय के ऐतिहासिक कार्यों में स्वर्णिम पृष्ठ जोड़ते हुए श्रेष्ठतम उदाहरण प्रस्तुत किया है।

सत्रह वर्ष पहले हम लोग पूज्या गुरुवर्य्याश्री के साथ पूर्वी क्षेत्र की स्पर्शना कर रहे थे। बनारस में डॉ. सागरमलजी द्वारा आगम ग्रन्थों के गूढ़ रहस्यों को जानने का यह एक स्वर्णिम अवसर था अतः सन् 1995 में गुर्वाज्ञा से मैं, सौम्याजी एवं नूतन दीक्षित साध्वीजी ने भगवान पार्श्वनाथ की जन्मभूमि वाराणसी की ओर अपने कदम बढ़ाए। शिखरजी आदि तीर्थों की यात्रा करते हुए हम लोग धर्म नगरी काशी पहुँचे।

वाराणसी स्थित पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वहाँ के मन्दिरों एवं पंडितों के मंत्रनाद से दूर नीरव वातावरण में अद्भुत शांति का अनुभव करवा रहा था। अध्ययन हेतु मनोज्ञ एवं अनुकूल स्थान था। संयोगवश मरूधर ज्योति पूज्या मणिप्रभा श्रीजी म.सा. की निश्रावर्ती, मेरी बचपन की सखी पूज्या विद्युतप्रभा श्रीजी आदि भी अध्ययनार्थ वहाँ पधारी थी।

डॉ. सागरमलजी से विचार विमर्श करने के पश्चात आचार्य जिनप्रभसूरि रचित विधिमार्गप्रपा पर शोध करने का निर्णय लिया गया। सन् 1973 में पूज्य गुरुवर्य्या श्री सज्जन श्रीजी म.सा. बंगाल की भूमि पर पधारी थी। स्वाध्याय रसिक आगमज्ञ श्री अगरचन्दजी नाहटा, श्री भँवलालजी नाहटा से पूज्याश्री की पारस्परिक स्वाध्याय चर्चा चलती रहती थी। एकदा पूज्याश्री ने कहा कि मेरी हार्दिक इच्छा है जिनप्रभसूरिकृत विधिमार्गप्रपा आदि ग्रन्थों का अनुवाद हो। पूज्याश्री योग-संयोग वश उसका अनुवाद नहीं कर पाई। विषय का चयन करते समय मुझे गुरुवर्य्या श्री की वही इच्छा याद आई या फिर यह कहूं तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि सौम्याजी की योग्यता देखते हुए शायद पूज्याश्री ने ही मुझे इसकी अन्तस् प्रेरणा दी।

यद्यपि यह ग्रंथ विधि-विधान के क्षेत्र में बहु उपयोगी था परन्तु प्राकृत एवं संस्कृत भाषा में आबद्ध होने के कारण उसका हिन्दी अनुवाद करना आवश्यक हो गया। सौम्याजी के शोध की कठिन परीक्षाएँ यहीं से प्रारम्भ हो गई। उन्होंने सर्वप्रथम प्राकृत व्याकरण का ज्ञान किया। तत्पश्चात दिन-रात एक कर पाँच महीनों में ही इस कठिन ग्रंथ का अनुवाद अपनी क्षमता अनुसार कर डाला। लेकिन यहीं पर समस्याएँ समाप्त नहीं हुई। सौम्यगुणाजी जो कि राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर से दर्शनाचार्य (एम.ए.) थीं, बनारस में पी-एच.डी. हेतु आवेदन नहीं कर सकती थी। जिस लक्ष्य को लेकर आए थे वह कार्य पूर्ण नहीं

होने से मन थोड़ा विचलित हुआ परन्तु विश्वविद्यालय के नियमों के कारण हम कुछ भी करने में असमर्थ थे अत: पूज्य गुरुवर्य्याश्री के चरणों में पहुँचने हेतु पुन: कलकत्ता की ओर प्रयाण किया। हमारा वह चातुर्मास संघ आग्रह के कारण पुन: कलकत्ता नगरी में हुआ। वहाँ से चातुर्मास पूर्णकर धर्मानुरागी जनों को शीघ्र आने का आश्वासन देते हुए पूज्याश्री के साथ जयपुर की ओर विहार किया। जयपुर में आगम ज्योति, पूज्या गुरुवर्य्या श्री सज्जन श्रीजी म.सा. की समाधि स्थली मोहनबाड़ी में मूर्ति प्रतिष्ठा का आयोजन था अत: उग्र विहार कर हम लोग जयपुर पहुँचें। बहुत ही सुन्दर और भव्य रूप में कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। जयपुर संघ के अति आग्रह से पूज्याश्री एवं सौम्यगुणाजी का चातुर्मास जयपुर ही हुआ। जयपुर का स्वाध्यायी श्रावक वर्ग सौम्याजी से काफी प्रभावित था। यद्यपि बनारस में पी-एच.डी. नहीं हो पाई थी किन्तु सौम्याजी का अध्ययन आंशिक रूप में चालू था। उसी बीच डॉ. सागरमलजी के निर्देशानुसार जयपुर संस्कृत विश्वविद्यालय के प्रो. डॉ. शीतलप्रसाद जैन के मार्गदर्शन में धर्मानुरागी श्री नवरतनमलजी श्रीमाल के डेढ़ वर्ष के अथक प्रयास से उनका रजिस्ट्रेशन हुआ। सामाजिक जिम्मेदारियों को संभालते हुए उन्होंने अपने कार्य को गति दी।

पी-एच.डी. का कार्य प्रारम्भ तो कर लिया परन्तु साधु जीवन की मर्यादा, विषय की दुरूहता एवं शोध आदि के विषय में अनुभवहीनता से कई बाधाएँ उत्पन्न होती रही। निर्देशक महोदय दिगम्बर परम्परा के होने से श्वेताम्बर विधि-विधानों के विषय में उनसे भी विशेष सहयोग मिलना मुश्किल था अत: सौम्याजी को जो करना था अपने बलबूते पर ही करना था। यह सौम्याजी ही थी जिन्होंने इतनी बाधाओं और रूकावटों को पार कर इस शोध कार्य को अंजाम दिया।

जयपुर के पश्चात कुशल गुरुदेव की प्रत्यक्ष स्थली मालपुरा में चातुर्मास हुआ। वहाँ पर लाइब्रेरी आदि की असुविधाओं के बीच भी उन्होंने अपने कार्य को पूर्ण करने का प्रयास किया। तदनन्तर जयपुर में एक महीना रहकर महोपाध्याय विनयसागरजी से इसका करेक्शन करवाया तथा कुछ सामग्री संशोधन हेतु डॉ. सागरमलजी को भेजी। यहाँ तक तो उनकी कार्य गति अच्छी रही किन्तु इसके बाद लम्बे विहार होने से उनका कार्य प्राय: अवरूद्ध हो गया। फिर अगला चातुर्मास पालीताणा हुआ। वहाँ पर आने वाले यात्रीगणों की भीड़

और तप साधना-आराधना में अध्ययन नहींवत ही हो पाया। पुनः साधु जीवन के नियमानुसार एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर कदम बढ़ाए। रायपुर (छ.ग.) जाने हेतु लम्बे विहारों के चलते वे अपने कार्य को किंचित भी संपादित नहीं कर पा रही थी। रायपुर पहुँचते-पहुँचते Registration की अवधि अन्तिम चरण तक पहुँच चुकी थी अतः चातुर्मास के पश्चात मुदितप्रज्ञा श्रीजी और इन्हें रायपुर छोड़कर शेष लोगों ने अन्य आसपास के क्षेत्रों की स्पर्शना की। रायपुर निवासी सुनीलजी बोथरा के सहयोग से दो-तीन मास में पूरे काम को शोध प्रबन्ध का रूप देकर उसे सन् 2001 में राजस्थान विश्वविद्यालय में प्रस्तुत किया गया। येन केन प्रकारेण इस शोध कार्य को इन्होंने स्वयं की हिम्मत से पूर्ण कर ही दिया।

तदनन्तर 2002 का बैंगलोर चातुर्मास सम्पन्न कर मालेगाँव पहुंचे। वहाँ पर संघ के प्रयासों से चातुर्मास के अन्तिम दिन उनका शोध वायवा संपन्न हुआ और उन्हें कुछ ही समय में पी-एच.डी. की पदवी विश्वविद्यालय द्वारा प्रदान की गई। सन् 1995 बनारस में प्रारम्भ हुआ कार्य सन् 2003 मालेगाँव में पूर्ण हुआ। इस कालावधि के दौरान समस्त संघों को उनकी पी-एच.डी. के विषय में ज्ञात हो चुका था और विषय भी रुचिकर था अतः उसे प्रकाशित करने हेतु विविध संघों से आग्रह होने लगा। इसी आग्रह ने उनके शोध को एक नया मोड़ दिया। सौम्याजी कहती 'मेरे पास बताने को बहुत कुछ है, परन्तु वह प्रकाशन योग्य नहीं है' और सही मायने में शोध प्रबन्ध सामान्य जनता के लिए उतना सुगम नहीं होता अतः गुरुवर्य्या श्री के पालीताना चातुर्मास के दौरान विधिमार्गप्रपा के अर्थ का संशोधन एवं अवान्तर विधियों पर ठोस कार्य करने हेतु वे अहमदाबाद पहुँची। इसी दौरान पूज्य उपाध्याय श्री मणिप्रभसागरजी म.सा. ने भी इस कार्य का पूर्ण सर्वेक्षण कर उसमें अपेक्षित सुधार करवाए। तदनन्तर L.D. Institute के प्रोफेसर जितेन्द्र भाई, फिर कोबा लाइब्रेरी से मनोज भाई सभी के सहयोग से विधिमार्गप्रपा के अर्थ में रही त्रुटियों को सुधारते हुए उसे नवीन रूप दिया।

इसी अध्ययन काल के दौरान जब वे कोबा में विधि ग्रन्थों का आलोडन कर रही थी तब डॉ. सागरमलजी का बायपास सर्जरी हेतु वहाँ पदार्पण हुआ। सौम्याजी को वहाँ अध्ययनरत देखकर बोले– "आप तो हमारी विद्यार्थी हो, यहाँ क्या कर रही हो? शाजापुर पधारिए मैं यथासंभव हर सहयोग देने का प्रयास करूँगा।" यद्यपि विधि विधान डॉ. सागरमलजी का विषय नहीं था परन्तु

उनकी ज्ञान प्रौढ़ता एवं अनुभव शीलता सौम्याजी को सही दिशा देने हेतु पर्याप्त थी। वहाँ से विधिमार्गप्रपा का नवीनीकरण कर वे गुरुवर्य्याश्री के साथ मुम्बई चातुर्मासार्थ गईं। महावीर स्वामी देरासर पायधुनी से विधिप्रपा का प्रकाशन बहुत ही सुन्दर रूप में हुआ।

किसी भी कार्य में बार-बार बाधाएँ आए तो उत्साह एवं प्रवाह स्वत: मन्द हो जाता है, परन्तु सौम्याजी का उत्साह विपरीत परिस्थितियों में भी वृद्धिंगत रहा। मुम्बई का चातुर्मास पूर्णकर वे शाजापुर गईं। वहाँ जाकर डॉ. साहब ने डी.लिट करने का सुझाव दिया और लाडनूं विश्वविद्यालय के अन्तर्गत उन्हीं के निर्देशन में रजिस्ट्रेशन भी हो गया। यह लाडनूं विश्व भारती का प्रथम डी.लिट. रजिस्ट्रेशन था। सौम्याजी से सब कुछ ज्ञात होने के बाद मैंने उनसे कहा– प्रत्येक विधि पर अलग-अलग कार्य हो तो अच्छा है और उन्होंने वैसा ही किया। परन्तु जब कार्य प्रारम्भ किया था तब वह इतना विराट रूप ले लेगा यह अनुमान भी नहीं था। शाजापुर में रहते हुए इन्होंने छ:सात विधियों पर अपना कार्य पूर्ण किया। फिर गुर्वाज्ञा से कार्य को बीच में छोड़ पुन: गुरुवर्य्या श्री के पास पहुँची। जयपुर एवं टाटा चातुर्मास के सम्पूर्ण सामाजिक दायित्वों को संभालते हुए पूज्याश्री के साथ रही।

शोध कार्य पूर्ण रूप से रूका हुआ था। डॉ.साहब ने सचेत किया कि समयावधि पूर्णता की ओर है अत: कार्य शीघ्र पूर्ण करें तो अच्छा रहेगा वरना रजिस्ट्रेशन रद्द भी हो सकता है। अब एक बार फिर से उन्हें अध्ययन कार्य को गति देनी थी। उन्होंने लघु भगिनी मण्डल के साथ लाइब्रेरी युक्त शान्त-नीरव स्थान हेतु वाराणसी की ओर प्रस्थान किया। इस बार लक्ष्य था कि कार्य को किसी भी प्रकार से पूर्ण करना है। उनकी योग्यता देखते हुए श्री संघ एवं गुरुवर्य्या श्री उन्हें अब समाज के कार्यों से जोड़े रखना चाहते थे परंतु कठोर परिश्रम युक्त उनके विशाल शोध कार्य को भी सम्पन्न करवाना आवश्यक था। बनारस पहुँचकर इन्होंने मुद्रा विधि को छोटा कार्य जानकर उसे पहले करने के विचार से उससे ही कार्य को प्रारम्भ किया। देखते ही देखते उस कार्य ने भी एक विराट रूप ले लिया। उनका यह मुद्रा कार्य विश्वस्तरीय कार्य था जिसमें उन्होंने जैन, हिन्दू, बौद्ध, योग एवं नाट्य परम्परा की सहस्राधिक हस्त मुद्राओं पर विशेष शोध किया। यद्यपि उन्होंने दिन-रात परिश्रम कर इस कार्य को 6-7

महीने में एक बार पूर्ण कर लिया, किन्तु उसके विभिन्न कार्य तो अन्त तक चलते रहे। तत्पश्चात उन्होंने अन्य कुछ विषयों पर और भी कार्य किया। उनकी कार्यनिष्ठा देख वहाँ के लोग हतप्रभ रह जाते थे। संघ-समाज के बीच स्वयं बड़े होने के कारण नहीं चाहते हुए भी सामाजिक दायित्व निभाने ही पड़ते थे।

सिर्फ बनारस में ही नहीं रायपुर के बाद जब भी वे अध्ययन हेतु कहीं गई तो उन्हें ही बड़े होकर जाना पड़ा। सभी गुरु बहिनों का विचरण शासन कार्यों हेतु भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में होने से इस समस्या का सामना भी उन्हें करना ही था। साधु जीवन में बड़े होकर रहना अर्थात संघ-समाज-समुदाय की समस्त गतिविधियों पर ध्यान रखना, जो कि अध्ययन करने वालों के लिए संभव नहीं होता परंतु साधु जीवन यानी विपरीत परिस्थितियों का स्वीकार और जो इन्हें पार कर आगे बढ़ जाता है वह जीवन जीने की कला का मास्टर बन जाता है। इस शोधकार्य ने सौम्याजी को विधि-विधान के साथ जीवन के क्षेत्र में भी मात्र मास्टर नहीं अपितु विशेषज्ञ बना दिया।

पूज्य बड़े म.सा. बंगाल के क्षेत्र में विचरण कर रहे थे। कोलकाता वालों की हार्दिक इच्छा सौम्याजी को बुलाने की थी। वैसे जौहरी संघ के पदाधिकारी श्री प्रेमचन्दजी मोघा एवं मंत्री मणिलालजी दुसाज शाजापुर से ही उनके चातुर्मास हेतु आग्रह कर रहे थे। अत: न चाहते हुए भी कार्य को अर्ध विराम दे उन्हें कलकत्ता आना पड़ा। शाजापुर एवं बनारस प्रवास के दौरान किए गए शोध कार्य का कम्पोज करवाना बाकी था और एक-दो विषयों पर शोध भी। परंतु ''जिसकी खाओ बाजरी उसकी बजाओ हाजरी'' अत: एक और अवरोध शोध कार्य में आ चुका था। गुरुवर्य्या श्री ने सोचा था कि चातुर्मास के प्रारम्भिक दो महीने के पश्चात इन्हें प्रवचन आदि दायित्वों से निवृत्त कर देंगे परंतु समाज में रहकर यह सब संभव नहीं होता।

चातुर्मास के बाद गुरुवर्य्या श्री तो शेष क्षेत्रों की स्पर्शना हेतु निकल पड़ी किन्तु उन्हें शेष कार्य को पूर्णकर अन्तिम स्वरूप देने हेतु कोलकाता ही रखा। कोलकाता जैसी महानगरी एवं चिर-परिचित समुदाय के बीच तीव्र गति से अध्ययन असंभव था अत: उन्होंने मौन धारण कर लिया और सप्ताह में मात्र एक घंटा लोगों से धर्म चर्चा हेतु खुला रखा। फिर भी सामाजिक दायित्वों से पूर्ण मुक्ति संभव नहीं थी। इसी बीच कोलकाता संघ के आग्रह से एवं अध्ययन

हेतु अन्य सुविधाओं को देखते हुए पूज्याश्री ने इनका चातुर्मास कलकत्ता घोषित कर दिया। पूज्याश्री से अलग हुए सौम्याजी को करीब सात महीने हो चुके थे। चातुर्मास सम्मुख था और वे अपनी जिम्मेदारी पर प्रथम बार स्वतंत्र चातुर्मास करने वाली थी।

जेठ महीने की भीषण गर्मी में उन्होंने गुरुवर्य्याश्री के दर्शनार्थ जाने का मानस बनाया और ऊपर से मानसून सिना ताने खड़ा था। अध्ययन कार्य पूर्ण करने हेतु समयावधि की तलवार तो उनके ऊपर लटक ही रही थी। इन परिस्थितियों में उन्होंने 35-40 कि.मी. प्रतिदिन की रफ्तार से दुर्गापुर की तरफ कदम बढ़ाए। कलकत्ता से दुर्गापुर और फिर पुनः कोलकाता की यात्रा में लगभग एक महीना पढ़ाई नहींवत हुई। यद्यपि गुरुवर्य्याश्री के साथ चातुर्मासिक कार्यक्रमों की जिम्मेदारियाँ इन्हीं की होती है फिर भी अध्ययन आदि के कारण इनकी मानसिकता चातुर्मास संभालने की नहीं थी और किसी दृष्टि से उचित भी था। क्योंकि सबसे बड़े होने के कारण प्रत्येक कार्यभार का वहन इन्हीं को करना था अतः दो माह तक अध्ययन की गति पर पुनः ब्रेक लग गया। पूज्या श्री हमेशा फरमाती है कि–

जो जो देखा वीतराग ने, सो-सो होसी वीरा रे।
अनहोनी ना होत जगत में, फिर क्यों होत अधीरा रे।।

सौम्याजी ने भी गुरु आज्ञा को शिरोधार्य कर संघ-समाज को समय ही नहीं अपितु भौतिकता में भटकते हुए मानव को धर्म की सही दिशा भी दिखाई। वर्तमान परिस्थितियों पर उनकी आम चर्चा से लोगों में धर्म को देखने का एक नया नजरिया विकसित हुआ। गुरुवर्य्याश्री एवं हम सभी को आन्तरिक आनंद की अनुभूति हो रही थी किन्तु सौम्याजी को वापस दुगुनी गति से अध्ययन में जुड़ना था। इधर कोलकाता संघ ने पूर्ण प्रयास किए फिर भी हिन्दी भाषा का कोई अच्छा कम्पोजर न मिलने से कम्पोजिंग कार्य बनारस में करवाया गया। दूरस्थ रहकर यह सब कार्य करवाना उनके लिए एक विषम समस्या थी। परंतु अब शायद वे इन सबके लिए सध गई थी, क्योंकि उनका यह कार्य ऐसी ही अनेक बाधाओं का सामना कर चुका था।

उधर सैंथिया चातुर्मास में पूज्याश्री का स्वास्थ्य अचानक दो-तीन बार बिगड़ गया। अतः वर्षावास पूर्णकर पूज्य गुरूवर्य्या श्री पुनः कोलकाता की ओर

पधारी। सौम्याजी प्रसन्न थी क्योंकि गुरूवर्य्या श्री स्वयं उनके पास पधार रही थी। गुरुजनों की निश्रा प्राप्त करना हर विनीत शिष्य का मनेच्छित होता है। पूज्या श्री के आगमन से वे सामाजिक दायित्वों से मुक्त हो गई थी। अध्ययन के अन्तिम पड़ाव में गुरूवर्य्या श्री का साथ उनके लिए सुवर्ण संयोग था क्योंकि प्राय: शोध कार्य के दौरान पूज्याश्री उनसे दूर रही थी।

शोध समय पूर्णाहुति पर था। परंतु इस बृहद कार्य को इतनी विषमताओं के भंवर में फँसकर पूर्णता तक पहुँचाना एक कठिन कार्य था। कार्य अपनी गति से चल रहा था और समय अपनी धुरी पर। सबमिशन डेट आने वाली थी किन्तु कम्पोजिंग एवं प्रूफ रीडिंग आदि का काफी कार्य शेष था।

पूज्याश्री के प्रति अनन्य समर्पित श्री विजयेन्द्रजी संखलेचा को जब इस स्थिति के बारे में ज्ञात हुआ तो उन्होंने युनिवर्सिटी द्वारा समयावधि बढ़ाने हेतु अर्जी पत्र देने का सुझाव दिया। उनके हार्दिक प्रयासों से 6 महीने का एक्सटेंशन प्राप्त हुआ। इधर पूज्या श्री तो शंखेश्वर दादा की प्रतिष्ठा सम्पन्न कर अन्य क्षेत्रों की ओर बढ़ने की इच्छुक थी। परंतु भविष्य के गर्भ में क्या छुपा है यह कोई नहीं जानता। कुछ विशिष्ट कारणों के चलते कोलकाता भवानीपुर स्थित शंखेश्वर मन्दिर की प्रतिष्ठा चातुर्मास के बाद होना निश्चित हुआ। अत: अब आठ-दस महीने तक बंगाल विचरण निश्चित था। सौम्याजी को अप्रतिम संयोग मिला था कार्य पूर्णता के लिए।

शासन देव उनकी कठिन से कठिन परीक्षा ले रहा था। शायद विषमताओं की अग्नि में तपकर वे सौम्याजी को खरा सोना बना रहे थे। कार्य अपनी पूर्णता की ओर पहुँचता इसी से पूर्व उनके द्वारा लिखित 23 खण्डों में से एक खण्ड की मूल कॉपी गुम हो गई। पुन: एक खण्ड का लेखन और समयावधि की अल्पता ने समस्याओं का चक्रव्यूह सा बना दिया। कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। जिनपूजा क्रिया विधानों का एक मुख्य अंग है अत: उसे गौण करना या छोड़ देना भी संभव नहीं था। चांस लेते हुए एक बार पुन: Extension हेतु निवेदन पत्र भेजा गया। मुनि जीवन की कठिनता एवं शोध कार्य की विशालता के मद्देनजर एक बार पुन: चार महीने की अवधि युनिवर्सिटी के द्वारा प्राप्त हुई।

शंखेश्वर दादा की प्रतिष्ठा निमित्त सम्पूर्ण साध्वी मंडल का चातुर्मास बकुल बगान स्थित लीलीजी मणिलालजी सुखानी के नूतन बंगले में होना

निश्चित हुआ।

पूज्याश्री ने खडगपुर, टाटानगर आदि क्षेत्रों की ओर विहार किया। पाँच-छह साध्वीजी अध्ययन हेतु पौशाल में ही रूके थे। श्री जिनरंगसूरि पौशाल कोलकाता बड़ा बाजार में स्थित है। साधु-साध्वियों के लिए यह अत्यंत शाताकारी स्थान है। सौम्याजी को बनारस से कोलकाता लाने एवं अध्ययन पूर्ण करवाने में पौशाल के ट्रस्टियों की विशेष भूमिका रही है। सौम्याजी ने अपना अधिकांश अध्ययन काल वहाँ व्यतीत किया।

ट्रस्टीगण श्री कान्तिलालजी, कमलचंदजी, विमलचंदजी, मणिलालजी आदि ने भी हर प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की। संघ-समाज के सामान्य दायित्वों से बचाए रखा। इसी अध्ययन काल में बीकानेर हाल कोलकाता निवासी श्री खेमचंदजी बांठिया ने आत्मीयता पूर्वक सेवाएँ प्रदान कर इन लोगों को निश्चिन्त रखा। इसी तरह अनन्य सेवाभावी श्री चन्द्रकुमारजी मुणोत (लालाबाबू) जो सौम्याजी को बहनवत मानते हैं उन्होंने एक भाई के समान उनकी हर आवश्यकता का ध्यान रखा। कलकत्ता संघ सौम्याजी के लिए परिवारवत ही हो गया था। सम्पूर्ण संघ की एक ही भावना थी कि उनका अध्ययन कोलकाता में ही पूर्ण हो।

पूज्याश्री टाटानगर से कोलकाता की ओर पधार रही थी। सुयोग्या साध्वी सम्यग्दर्शनाजी उग्र विहार कर गुरुवर्य्याश्री के पास पहुँची थी। सौम्याजी निश्चिंत थी कि इस बार चातुर्मासिक दायित्व सुयोग्या सम्यग दर्शनाजी महाराज संभालेंगे। वे अपना अध्ययन उचित समयावधि में पूर्ण कर लेंगे। परंतु परिस्थिति विशेष से सम्यगजी महाराज का चातुर्मास खडगपुर ही हो गया।

सौम्याजी की शोधयात्रा में संघर्षों की समाप्ति ही नहीं हो रही थी। पुस्तक लेखन, चातुर्मासिक जिम्मेदारियाँ और प्रतिष्ठा की तैयारियाँ कोई समाधान दूर-दूर तक नजर नहीं आ रहा था। अध्ययन की महत्ता को समझते हुए पूज्याश्री एवं अमिताजी सुखानी ने उन्हें चातुर्मासिक दायित्वों से निवृत्त रहने का अनुनय किया किन्तु गुरु की शासन सेवा में सहयोगी बनने के लिए इन्होंने दो महीने गुरुवर्य्या श्री के साथ चातुर्मासिक दायित्वों का निर्वाह किया। फिर वह अपने अध्ययन में जुट गई।

कई बार मन में प्रश्न उठता कि हमारी प्यारी सौम्या इतना साहस कहाँ से

लाती है। किसी कवि की पंक्तियाँ याद आ रही है–

सूरज से कह दो बेशक वह, अपने घर आराम करें ।
चाँद सितारे जी भर सोएं, नहीं किसी का काम करें ।
अगर अमावस से लड़ने की जिद कोई कर लेता है ।
तो सौम्य गुणा सा जुगनु सारा, अंधकार हर लेता है ।।

जिन पूजा एक विस्तृत विषय है। इसका पुनर्लेखन तो नियत अवधि में हो गया परंतु कम्पोजिंग आदि नहीं होने से शोध प्रबंध के तीसरे एवं चौथे भाग को तैयार करने के लिए समय की आवश्यकता थी। अब तीसरी बार लाडनूं विश्वविद्यालय से Extension मिलना असंभव प्रतीत हो रहा था।

श्री विजयेन्द्रजी संखलेचा समस्त परिस्थितियों से अवगत थे। उन्होंने पूज्य गुरूवर्य्या श्री से निवेदन किया कि सौम्याजी को पूर्णत: निवृत्ति देकर कार्य शीघ्रातिशीघ्र करवाया जाए। विश्वविद्यालय के तत्सम्बन्धी नियमों के बारे में पता करके डेढ़ महीने की अन्तिम एवं विशिष्ट मौहलत दिलवाई। अब देरी होने का मतलब था Rejection of Work by University अत: त्वरा गति से कार्य चला।

सौम्याजी पर गुरुजनों की कृपा अनवरत रही है। पूज्य गुरूवर्य्या सज्जन श्रीजी म.सा. के प्रति वह विशेष श्रद्धा प्रणत हैं। अपने हर शुभ कर्म का निमित्त एवं उपादान उन्हें ही मानती हैं। इसे साक्षात गुरु कृपा की अनुश्रुति ही कहना होगा कि उनके समस्त कार्य स्वत: ग्यारस के दिन सम्पन्न होते गए। सौम्याजी की आन्तरिक इच्छा थी कि पूज्याश्री को समर्पित उनकी कृति पूज्याश्री की पुण्यतिथि के दिन विश्वविद्यालय में Submit की जाए और निमित्त भी ऐसे ही बने कि Extension लेते-लेते संयोगवशात पुन: वही तिथि और महीना आ गया।

23 दिसम्बर 2012 मौन ग्यारस के दिन लाडनूं विश्वविद्यालय में 4 भागों में वर्गीकृत 23 खण्डीय Thesis जमा की गई। इतने विराट शोध कार्य को देखकर सभी हतप्रभ थे। 5556 पृष्ठों में गुम्फित यह शोध कार्य यदि शोध नियम के अनुसार तैयार किया होता तो 11000 पृष्ठों से अधिक हो जाते। यह सब गुरूवर्य्या श्री की ही असीम कृपा थी।

पूज्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा. की हार्दिक इच्छा थी कि सौम्याजी के इस ज्ञानयज्ञ का सम्मान किया जाए जिससे जिन शासन की प्रभावना हो और जैन संघ गौरवान्वित बने।

भवानीपुर-शंखेश्वर दादा की प्रतिष्ठा का पावन सुयोग था। श्रुतज्ञान के बहुमान रूप 23 ग्रन्थों का भी जुलूस निकाला गया। सम्पूर्ण कोलकाता संघ द्वारा उनकी वधामणी की गई। यह एक अनुमोदनीय एवं अविस्मरणीय प्रसंग था।

बस मन में एक ही कसक रह गई कि मैं इस पूर्णाहुति का हिस्सा नहीं बन पाई।

आज सौम्याजी की दीर्घ शोध यात्रा को पूर्णता के शिखर पर देखकर नि:सन्देह कहा जा सकता है कि पूज्या प्रवर्त्तिनी म.सा. जहाँ भी आत्म साधना में लीन है वहाँ से उनकी अनवरत कृपा दृष्टि बरस रही है। शोध कार्य पूर्ण होने के बाद भी सौम्याजी को विराम कहाँ था? उनके शोध विषय की त्रैकालिक प्रासंगिकता को ध्यान में रखते हुए उन्हें पुस्तक रूप में प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया। पुस्तक प्रकाशन सम्बन्धी सभी कार्य शेष थे तथा पुस्तकों का प्रकाशन कोलकाता से ही हो रहा था। अत: कलकत्ता संघ के प्रमुख श्री कान्तिलालजी मुकीम, विमलचंदजी महमवाल, श्राविका श्रेष्ठा प्रमिलाजी महमवाल, विजयेन्द्रजी संखलेचा आदि ने पूज्याश्री के सम्मुख सौम्याजी को रोकने का निवेदन किया। श्री चन्द्रकुमारजी मुणोत, श्री मणिलालजी दूसाज आदि भी निवेदन कर चुके थे। यद्यपि अजीमगंज दादाबाड़ी प्रतिष्ठा के कारण रोकना असंभव था परंतु मुकिमजी के अत्याग्रह के कारण पूज्याश्री ने उन्हें कुछ समय के लिए वहाँ रहने की आज्ञा प्रदान की।

गुरूवर्य्या श्री के साथ विहार करते हुए सौम्यागुणाजी को तीन Stop जाने के बाद वापस आना पड़ा। दादाबाड़ी के समीपस्थ शीतलनाथ भवन में रहकर उन्होंने अपना कार्य पूर्ण किया। इस तरह इनकी सम्पूर्ण शोध यात्रा में कलकत्ता एक अविस्मरणीय स्थान बनकर रहा।

क्षणै: क्षणै: बढ़ रहे उनके कदम अब मंजिल पर पहुँच चुके हैं। आज जो सफलता की बहुमंजिला इमारत इस पुस्तक श्रृंखला के रूप में देख रहे हैं वह मजबूत नींव इन्होंने अपने उत्साह, मेहनत और लगन के आधार पर रखी है। सौम्यगुणाजी का यह विशद् कार्य युग-युगों तक एक कीर्तिस्तम्भ के रूप में

स्मरणीय रहेगा। श्रुत की अमूल्य निधि में विधि-विधान के रहस्यों को उजागर करते हुए उन्होंने जो कार्य किया है वह आने वाली भावी पीढ़ी के लिए आदर्श रूप रहेगा। लोक परिचय एवं लोकप्रसिद्धि से दूर रहने के कारण ही आज वे इस बृहद् कार्य को सम्पन्न कर पाई हैं। मैं परमात्मा से यही प्रार्थना करती हूँ कि वे सदा इसी तरह श्रुत संवर्धन के कल्याण पथ पर गतिशील रहे। अंततः उनके अडिग मनोबल की अनुमोदना करते हुए यही कहूँगी–

प्रगति शिला पर चढ़ने वाले बहुत मिलेंगे,
कीर्तिमान करने वाला तो विरला होता है।
आंदोलन करने वाले तो बहुत मिलेंगे,
दिशा बदलने वाला कोई निराला होता है।
तारों की तरह टिम-टिमाने वाले अनेक होते हैं,
पर सूरज बन रोशन करने वाला कोई एक ही होता है।
समय गंवाने वालों से यह दुनिया भरी है,
पर इतिहास बनाने वाला कोई सौम्य सा ही होता है।
प्रशंसा पाने वाले जग में अनेक मिलेंगे,
प्रिय बने सभी का ऐसा कोई सज्जन ही होता है ।।

●

हार्दिक प्रसन्नता

किसी कवि ने बहुत ही सुन्दर कहा है–

धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सो घड़ा, ऋतु आवत फल होय।।

हर कार्य में सफलता समय आने पर ही प्राप्त होती है। एक किसान बीज बोकर साल भर तक मेहनत करता है तब जाकर उसे फसल प्राप्त होती है। चार साल तक College में मेहनत करने के बाद विद्यार्थी Doctor, Engineer या MBA होता है।

साध्वी सौम्यगुणाजी आज सफलता के जिस शिखर पर पहुँची है उसके पीछे उनकी वर्षों की मेहनत एवं धैर्य नींव रूप में रहे हुए हैं। लगभग 30 वर्ष पूर्व सौम्याजी का आगमन हमारे मण्डल में एक छोटी सी गुड़िया के रूप में हुआ था। व्यवहार में लघुता, विचारों में सरलता एवं बुद्धि की श्रेष्ठता उनके प्रत्येक कार्य में तभी से परिलक्षित होती थी। ग्यारह वर्ष की निशा जब पहली बार पूज्याश्री के पास वैराग्यवासित अवस्था में आई तब मात्र चार माह की अवधि में प्रतिक्रमण, प्रकरण, भाष्य,कर्मग्रन्थ, प्रात:कालीन पाठ आदि कंठस्थ कर लिए थे। उनकी तीव्र बुद्धि एवं स्मरण शक्ति की प्रखरता के कारण पूज्य छोटे म.सा. (पूज्य शशिप्रभा श्रीजी म.सा.) उन्हें अधिक से अधिक चीजें सिखाने की इच्छा रखते थे।

निशा का बाल मन जब अध्ययन से उक्ता जाता और बाल सुलभ चेष्टाओं के लिए मन उत्कंठित होने लगता, तो कई बार वह घंटों उपाश्रय की छत पर तो कभी सीढ़ियों में जाकर छुप जाती ताकि उसे अध्ययन न करना पड़े। परंतु यह उसकी बाल क्रीड़ाएँ थी। 15-20 गाथाएँ याद करना उसके लिए एक सहज बात थी। उनके अध्ययन की लगन एवं सीखने की कला आदि के अनुकरण की प्रेरणा आज भी छोटे म.सा. आने वाली नई मंडली को देते हैं। सूत्रागम अध्ययन, ज्ञानार्जन, लेखन, शोध आदि के कार्य में उन्होंने जो श्रृंखला प्रारम्भ की है आज सज्जनमंडल में उसमें कई कड़ियाँ जुड़ गई हैं परन्तु मुख्य कड़ी तो

मुख्य ही होती है। ये सभी के लिए प्रेरणा बन रही हैं किन्तु इनके भीतर जो प्रेरणा आई वह कहीं न कहीं पूज्य गुरुवर्य्या श्री की असीम कृपा है।

उच्च उड़ान नहीं भर सकते
तुच्छ बाहरी चमकीले पर
महत कर्म के लिए चाहिए
महत प्रेरणा बल भी भीतर

यह महत प्रेरणा गुरु कृपा से ही प्राप्त हो सकती है। विनय, सरलता, शालीनता, ऋजुता आदि गुण गुरुकृपा की प्राप्ति के लिए आवश्यक है।

सौम्याजी का मन शुरू से सीधा एवं सरल रहा है। सांसारिक कपट-माया या व्यवहारिक औपचारिकता निभाना इनके स्वभाव में नहीं है। पूज्य प्रवर्तिनीजी म.सा. को कई बार ये सहज में कहती **'महाराज श्री!' मैं तो आपकी कोई सेवा नहीं करती, न ही मुझमें विनय है, फिर मेरा उद्धार कैसे होगा, मुझे गुरु कृपा कैसे प्राप्त होगी?' तब पूज्याश्री फरमाती— 'सौम्या! तेरे ऊपर तो मेरी अनायास कृपा है, तूं चिंता क्यों करती है? तूं तो महान साध्वी बनेगी।'** आज पूज्याश्री की ही अन्तस शक्ति एवं आशीर्वाद का प्रस्फोटन है कि लोकैषणा, लोक प्रशंसा एवं लोक प्रसिद्धि के मोह से दूर वे श्रुत सेवा में सर्वात्मना समर्पित हैं। जितनी समर्पित वे पूज्या श्री के प्रति थी उतनी ही विनम्र अन्य गुरुजनों के प्रति भी। गुरु भगिनी मंडल के कार्यों के लिए भी वे सदा तत्पर रहती हैं। चाहे बड़ों का कार्य हो, चाहे छोटों का उन्होंने कभी किसी को टालने की कोशिश नहीं की। चाहे प्रियदर्शना श्रीजी हो, चाहे दिव्यदर्शना श्रीजी, चाहे शुभदर्शनाश्रीजी हो, चाहे शीलगुणा जी आज तक सभी के साथ इन्होंने लघु बनकर ही व्यवहार किया है। कनकप्रभाजी, संयमप्रज्ञाजी आदि लघु भगिनी मंडल के साथ भी इनका व्यवहार सदैव सम्मान, माधुर्य एवं अपनेपन से युक्त रहा है। ये जिनके भी साथ चातुर्मास करने गई हैं उन्हें गुरुवत सम्मान दिया तथा उनकी विशिष्ट आन्तरिक मंगल कामनाओं को प्राप्त किया है। पूज्या विनीता श्रीजी म.सा., पूज्या मणिप्रभाश्रीजी म.सा., पूज्या हेमप्रभा श्रीजी म.सा., पूज्या सुलोचना श्रीजी म.सा., पूज्या विद्युतप्रभाश्रीजी म.सा. आदि की इन पर विशेष कृपा रही है। पूज्य उपाध्याय श्री मणिप्रभसागरजी म.सा., आचार्य श्री पद्मसागरसूरिजी म.सा., आचार्य श्री कीर्तियशसूरिजी आदि ने इन्हें अपना

स्नेहाशीष एवं मार्गदर्शन दिया है। आचार्य श्री राजयशसूरिजी म.सा., पूज्य भ्राता श्री विमलसागरजी म.सा. एवं पूज्य वाचंयमा श्रीजी (बहन) म.सा. इनका Ph.D. एवं D.Litt. का विषय विधि-विधानों से सम्बन्धित होने के कारण इन्हें 'विधिप्रभा' नाम से ही बुलाते हैं।

पूज्या शशिप्रभाजी म.सा. ने अध्ययन काल के अतिरिक्त इन्हें कभी भी अपने से अलग नहीं किया और आज भी हम सभी गुरु बहनों की अपेक्षा गुरु निश्रा प्राप्ति का लाभ इन्हें ही सर्वाधिक मिलता है। पूज्याश्री के चातुर्मास में अपने विविध प्रयासों के द्वारा चार चाँद लगाकर ये उन्हें और भी अधिक जानदार बना देती हैं।

तप-त्याग के क्षेत्र में तो बचपन से ही इनकी विशेष रुचि थी। नवपद की ओली का प्रारम्भ इन्होंने गृहस्थ अवस्था में ही कर दिया था। इनकी छोटी उम्र को देखकर छोटे म.सा. ने कहा– देखो! तुम्हें तपस्या के साथ उतनी ही पढ़ाई करनी होगी तब तो ओलीजी करना अन्यथा नहीं। ये बोली– मैं रोज पन्द्रह नहीं बीस गाथा करूंगी आप मुझे ओलीजी करने दीजिए और उस समय ओलीजी करके सम्पूर्ण प्रात:कालीन पाठ कंठाग्र किये। बीसस्थानक, वर्धमान, नवपद, मासक्षमण, श्रेणी तप, चत्तारि अट्ठ दस दोय, पैंतालीस आगम, ग्यारह गणधर, चौदह पूर्व, अट्ठाईस लब्धि, धर्मचक्र, पखवासा आदि कई छोटे-बड़े तप करते हुए इन्होंने अध्ययन एवं तपस्या दोनों में ही अपने आपको सदा अग्रसर रखा।

आज उनके वर्षों की मेहनत की फलश्रुति हुई है। जिस शोध कार्य के लिए वे गत 18 वर्षों से जुटी हुई थी उस संकल्पना को आज एक मूर्त्त स्वरूप प्राप्त हुआ है। अब तक सौम्याजी ने जिस धैर्य, लगन, एकाग्रता, श्रुत समर्पण एवं दृढ़निष्ठा के साथ कार्य किया है वे उनमें सदा वृद्धिंगत रहे। पूज्य गुरुवर्य्या श्री के नक्शे कदम पर आगे बढ़ते हुए वे उनके कार्यों को और नया आयाम दें तथा श्रुत के क्षेत्र में एक नया अवदान प्रस्तुत करें। इन्हीं शुभ भावों के साथ–

गुरु भगिनी मण्डल

प्राक्कथन

मुद्रा योग विज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण अंग है, अध्यात्म साधना का आवश्यक चरण है तथा शास्त्रीय विद्याओं में विशिष्टतम विद्या है। मानव मात्र के समग्र विकास के लिए मुद्रा योग अत्यन्त ही उपयोगी है। भारतीय ऋषि-महर्षियों ने मन, बुद्धि एवं शरीर को शान्त रखने के लिए विभिन्न मुद्राओं का प्रयोग किया था। इस विज्ञान के द्वारा हम आज भी आध्यात्मिक, शारीरिक एवं मानसिक शक्ति प्राप्त करके भव-भवान्तर को सफल बना सकते हैं।

मानव मात्र की अन्त: शक्तियाँ असीम हैं किन्तु वे हमारी असीमित कल्पना के विस्तृत क्षेत्र से भी परे हैं। भौतिक स्तर पर जीवन यात्रा का निर्वहन करने वाला व्यक्ति उन अन्त: शक्तियों को न पहचान सकता है और न ही उनका सार्थक उपयोग कर पाता है। वह सामान्यत: अज्ञानजनित बुद्धि एवं मोहादि के वशीभूत हुआ बाह्य उपलब्धियों को ही वास्तविक मानता है। मुद्रा एक ऐसी पद्धति है जिसके माध्यम से हम जड़-चेतन का भेद ज्ञान करते हुए यथार्थता के निकट पहुँच सकते हैं, पौद्गलिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों का मूल्यांकन कर सकते हैं और अन्तरंग शक्तियों को जागृत करने हेतु प्रयत्नशील हो सकते हैं। प्रत्येक मानव का अन्तिम लक्ष्य यही होना चाहिए कि उसे अपनी निजी शक्तियों का बोध हो और अपने स्वरूप की पहचान हो। एक बार चेतना के उच्च स्तरों की झलक दिख जाये तो मायाजाल के सभी झूठे प्रपंच एवं समस्याएँ समाप्त हो सकती है।

इस उच्च भूमिका पर आरोहण करने के लिए चित्त का एकाग्र होना आवश्यक है। अधिकांश पद्धतियों में एकाग्रता के महत्त्व पर जोर दिया गया है। एकाग्रता द्वारा हम बहिरंग जीवन की ओर प्रवाहित होती हुई चेतना को अन्तरंग क्षेत्रों की ओर मोड़ सकते हैं। यदि प्रश्न उठता है कि एकाग्रता क्या है? साधारणत: एकाग्रता का मतलब है अपनी चेतन-धारा को सभी बाह्य विषयों एवं विचारों से हटाकर किसी विशेष विचार-बिन्दु पर केन्द्रित करना। यह कार्य सरल नहीं है। हमारी चेतना को विविधता प्रिय है। एक से दूसरे और दूसरे से तीसरे विषय पर मंडराने की आदत बहुत पुरानी है इसे एक विषय पर केन्द्रित करना संकल्प साध्य है।

मुद्राएँ शरीर एवं चित्त स्थिरीकरण के लिए ब्रह्मास्त्र का कार्य करती हैं। जैसे ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कभी निष्फल नहीं जाता वैसे ही सुविधि युक्त किया गया मुद्राभ्यास स्थिरता गुण को विकसित करता है। घेरण्ड संहिता में सुस्पष्ट कहा गया है कि स्थिरता के लिए मुद्रायोग को साधना चाहिए।

स्थैर्य गुण बहिरंग व अन्तरंग समग्र पक्षों से अत्यन्त लाभदायी है। हम अनुभव करें तो नि:सन्देह महसूस हो सकेगा कि स्थिरता के पलों में व्यक्ति की चेतना अबाध रूप से प्रवाहित होने लगती है। इस अवस्था में अवचेतन मन में छिपे मनोवैज्ञानिक प्रतिरूप चेतन मन के स्तर तक ऊपर उठ आते हैं तथा अनावृत्त होने लगते हैं।

सामान्य तौर पर मानसिक विक्षेपों के कारण हम अपनी आंतरिक शक्तियों से संबंध स्थापित नहीं कर पाते अथवा उन्हें अभिव्यक्त नहीं कर पाते। जबकि एकाग्रता के क्षणों में ही हम अपने व्यक्तित्व के आंतरिक पक्षों को समझना प्रारंभ करते हैं। इस प्रकार एकाग्र चित्त के परिणाम बहुत महत्त्वपूर्ण है। मुद्रा विज्ञान से इन परिणामों को अवश्यंभावी प्राप्त किया जाता है।

मुद्राएँ शारीरिक एवं मानसिक सन्तुलन बनाए रखती है। हठयोग संबंधी मुद्राभ्यास में बन्ध का प्रयोग भी किया जाता है स्वभावत: मुद्रा और बन्ध हमारे शरीर के स्नायु जालकों तथा अन्त:स्रावी ग्रन्थियों को उत्तेजित करते हैं और शरीर की जैव-ऊर्जाओं को सक्रिय करते हैं। कभी-कभी मुद्राएँ आंतरिक, मानसिक या अतीन्द्रिय भावनाओं की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति के रूप में भी कार्य करती हैं। यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है।

हमारे शरीर में अतीन्द्रिय शक्तियों से युक्त एक यौगिक पथ है जिसे मेरूदण्ड कहते हैं। इस मार्ग पर तथा इसके ऊपरी और निचले हिस्से में अनेक शक्तियाँ मौजूद हैं। साथ ही इस मार्गस्थित शक्तियों के इर्द-गिर्द विभिन्न स्नायु जाल बिछे हुए हैं। ये जाल मस्तिष्क केन्द्रों और अंत:स्रावी ग्रंथियों से सीधे जुड़े होते हैं। यौगिक मुद्राओं से स्नायु मंडल जागृत होकर शरीर में अनेक मनोवैज्ञानिक और जीव-रासायनिक परिवर्तन करते हैं। इन स्थितियों में अदृश्य शक्ति सम्पन्न षट्चक्रों का भेदन होता है और चेतन धारा ऊर्ध्वगामी बनती है।

मुद्रा तत्त्व परिवर्तन की अपूर्व क्रिया है। हमारा शरीर पंच तत्त्वों से निर्मित माना जाता है। इन तत्त्वों की विकृति के कारण ही प्रकृति में असंतुलन

और शरीर में रोग पैदा होते हैं। हस्त मुद्राएँ पंच तत्त्वों को संतुलित करने का सशक्त माध्यम है क्योंकि शरीर की पाँचों अंगुलियाँ पंच तत्त्व की प्रतिनिधि है, जिन्हें इन अंगुलियों की मदद से घटा-बढ़ाकर संतुलित किया जा सकता है। शरीर विज्ञान के अनुसार अंगूठे के अग्रभाग को किसी भी अंगुली के अग्रभाग से जोड़ा जाए तो उससे सम्बन्धित तत्त्व स्थिर हो जाता है, जैसे अंगूठा अग्नि तत्त्व का स्थान है, तर्जनी वायु तत्त्व का, मध्यमा आकाश तत्त्व का, अनामिका पृथ्वी तत्त्व का और कनिष्ठिका जल तत्त्व का प्रतीक है। इस प्रकार अंगूठे के स्पर्श से संबंधित अंगुलियों के तत्त्व जो शरीर में व्याप्त हैं, प्रभावित होते हैं।

अंगूठे के अग्रभाग को किसी भी अंगुली के निचले हिस्से अर्थात् मूल पर्व पर लगाने से उस अंगुली से सम्बन्धित तत्त्व की शरीर में वृद्धि होती है। यदि अंगुली को मोड़कर अंगूठे की जड़ में अर्थात उसके आधार पर रखने से उस अंगुली से सम्बन्धित तत्त्व का शरीर में ह्रास होता है। इस प्रकार विभिन्न मुद्राओं के माध्यम से पंच तत्त्वों को घटा-बढ़ाकर सन्तुलित किया जा सकता है। इससे शरीर को स्वास्थ्य-लाभ मिलता है।

यहाँ एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि अधिकांश मुद्राएँ हाथों से ही क्यों की जाती है? यदि गहराई से अवलोकन करें तो परिज्ञात होता है कि शरीर के सक्रिय अंगों में हाथ प्रमुख है। हथेली में एक विशेष प्रकार की प्राण ऊर्जा अथवा शक्ति का प्रवाह निरन्तर होता रहता है। इसी कारण शरीर के किसी भी भाग में दु:ख, दर्द, पीड़ा होने पर सहज की हाथ वहाँ चला जाता हैं। अंगुलियों में अपेक्षाकृत संवेदनशीलता अधिक होती है इसी कारण अंगुलियों से ही नाड़ी को देखा जाता है। जिससे मस्तिष्क में नब्ज की कार्यविधि का संदेश शीघ्र पहुंच जाता है। रेकी चिकित्सा में हथेली का ही उपयोग होता है। रत्न चिकित्सा में विभिन्न प्रकार के नगीने अंगूठी के माध्यम से हाथ की अंगुलियों में ही पहने जाते हैं जिनकी तरंगों के प्रभाव से शरीर को स्वस्थ रखा जा सकता है।

एक्यूप्रेशर चिकित्सा में हथेली में सारे शरीर के संवदेन बिन्दु होते हैं। सुजोक बायल मेरेडियन के सिद्धान्तानुसार अंगुलियों से ही शरीर के विभिन्न अंगों में प्राण ऊर्जा के प्रवाह को नियन्त्रित और संतुलित किया जा सकता है। हस्त रेखा विशेषज्ञ हथेली देखकर व्यक्ति के वर्तमान, भूत

और भविष्य की महत्त्वपूर्ण घटनाओं को बतला सकते हैं। कहने का आशय यही है कि हाथ, हथेली और अंगुलियों का मनुष्य की जीवन शैली से सीधा सम्बन्ध होता है। ये मुद्राएँ शरीरस्थ चेतना के शक्ति केन्द्रों में रिमोट कन्ट्रोल के समान कार्य करती हैं फलत: स्वास्थ्य रक्षा और रोग निवारण होता है।

मुद्रा यह किसी एक धर्म या सम्प्रदाय से अथवा हिन्दु या बौद्ध धर्म से ही सम्बन्धित नहीं है। ईसाई धर्म में भी हस्त मुद्राएँ देवता एवं संतों के अभिप्राय तथा अभिव्यक्ति के माध्यम रहे हैं। ईसा मसीह द्वारा ऊपर किए गए दाएँ हाथ की मध्यमा एवं तर्जनी ऊर्ध्व की ओर, अनामिका एवं कनिष्ठका हथेली में मुड़ी हुई तथा अंगूठा उन दोनों को आवेष्टित करते हुए ऐसी जो मुद्रा दर्शायी जाती है वह कृपा, क्षमा एवं देवी आशीष की सूचक है। इसी प्रकार मरियम की मूर्ति में जो मुद्रा दिखाई देती है वह मातृत्व एवं ममत्त्व भाव की सूचक है। यह भगवान के इच्छाओं के स्वीकार की भी द्योतक है।

हिन्दु और बौद्ध धर्म में प्रयुक्त कई मुद्राएँ विशिष्ट देवी-देवताओं आदि की सूचक है। मुख्यतया तांत्रिक मुद्राएँ विशेष प्रसंगों में पादरी तथा लामाओं द्वारा धारण की जाती है। इस प्रकार मुद्रा विज्ञान समस्त धर्मपरम्परा सम्मत है।

मुद्रा योग से संबन्धित यह शोध कार्य सात खण्डों में किया गया है।

प्रथम खण्ड में मुद्रा का स्वरूप विश्लेषण करते हुए तत्संबंधी कई मूल्यवान् तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है। इसमें मुद्रा योग का ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक पक्ष भी प्रस्तुत किया है जिससे शोधार्थी एवं आत्मार्थी आवश्यक जानकारी एक साथ प्राप्त कर सकते हैं। इस खण्ड का अध्ययन करने पर परवर्ती खण्डों की विषय वस्तु भी स्पष्ट हो जाती है इस प्रकार यह मुख्य आधारभूत होने से इस खण्ड को प्रथम क्रम पर रखा गया है।

तदनन्तर सर्व प्रकार की मुद्राओं का उद्भव नृत्य व नाट्य कला से माना जाता है। विश्व की भौगोलिक गतिविधियों के अनुसार आज से लगभग **बयालीस हजार तीन वर्ष साढ़े आठ मास न्यून एक कोटाकोटि सागरोपम पूर्व** भगवान ऋषभदेव हुए, जिन्हें वैदिक परम्परा में भी युग के आदि कर्त्ता माना गया है। जैन आगमकार कहते हैं कि उस समय मनुष्यों का जीवन निर्वाह कल्पवृक्ष से होता था। धीर-धीरे काल का सुप्रभाव निस्तेज होने लगा,

उससे भोजन आदि की कई समस्याएं उपस्थित हुई। तब ऋषभदेव ने पिता प्रदत्त राज्य पद का संचालन करते हुए लोगों को भोजन पकाने, अन्न उत्पादन करने, वस्त्र बुनने आदि का ज्ञान दिया। वे पारिवारिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन आमोद-प्रमोद तथा नीति नियम पूर्वक जी सकें, एतदर्थ पुरुषों को 72 एवं स्त्रियों को 64 प्रकार की विशिष्ट कलाएँ सिखाई। उनमें नृत्य-नाट्य और मुद्रा कला का भी प्रशिक्षण दिया। इससे सिद्ध होता है कि मुद्रा विज्ञान की परम्परा आदिकालीन एवं प्राचीनतम है। इसलिए नाट्य मुद्राओं को द्वितीय खण्ड में स्थान दिया गया है।

प्रश्न हो सकता है कि नाट्य मुद्राओं पर किया गया यह कार्य कितना उपयोगी एवं प्रासंगिक है? इस सम्बन्ध में इतना स्पष्ट है कि जीवन में स्वाभाविक मुद्रा का अद्भुत प्रभाव पड़ता है। 1. नृत्य में प्रायः सभी मुद्राएँ सहज होती है।

2. जो लोग नृत्य-नाट्यादि में रूचि रखते हैं वे इस कला के मर्म को समझ सकेंगे तथा उसकी उपयोगिता के बारे में अन्यों को ज्ञापित कर इस कला का गौरव बढ़ा सकते हैं।

3. जो नृत्यादि कला सीखने में उत्साही एवं उद्यमशील हैं वे मुद्राओं से होते फायदों के बारे में यदि जाने तो इस कला के प्रति सर्वात्मना समर्पित हो एक स्वस्थ जीवन की उपलब्धि करते हुए दर्शकों के चित्त को पूरी तरह आनन्दित कर सकते हैं। साथ ही दर्शकों का शरीर व मन प्रभावित होने से वे भी निरोग तथा चिन्तामुक्त जीवन से परिवार एवं समाज विकास में ठोस कार्य कर सकते हैं।

4. नृत्य कला में प्रयुक्त मुद्राओं से होने वाले सुप्रभावों की प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध हो तो इसके प्रति उपेक्षित जनता भी अनायास जुड़ सकती है और हाथ-पैरों के सहज संचालन से कई अनूठी उपलब्धियाँ प्राप्त कर सकती हैं।

5. यदि नाट्याभिनय में दक्षता हासिल हो जाये तो प्रतिष्ठा-दीक्षादि महोत्सव, गुरू भगवन्तों के नगर प्रवेश, प्रभु भक्ति आदि प्रसंगों में उपस्थित जन समूह को भक्ति मग्न कर सकते हैं। साथ ही शुभ परिणामों की भावधारा का वेग बढ़ जाने से पूर्वबद्ध अशुभ कर्मों को क्षीणकर परम पद को प्राप्त किया जा सकता है।

6. कुछ लोगों में नृत्य कला का अभाव होता है ऐसे व्यक्तियों को

इसका मूल्य समझ में आ जाये तो वे भक्ति माहौल में स्वयं को एकाकार कर सकते हैं। उस समय हाथ आदि अंगों का स्वाभाविक संचालन होने से षट्चक्र आदि कई शक्ति केन्द्र प्रभावित होते हैं और उससे एक आरोग्य वर्धक जीवन प्राप्त होता है तथा अंतरंग की दूषित वृत्तियाँ विलीन हो जाती हैं।

7. हमारे दैनिक जीवन व्यवहार में हर्ष-शोक, राग-द्वेष, आनन्द-विषाद आदि परिस्थितियों के आधार पर जो शारीरिक आकृतियाँ बनती है इन समस्त भावों को नाट्य में भी दर्शाया जाता है इस प्रकार नाट्य मुद्राएँ समस्त देहधारियों (मानवों) की जीवनचर्या का अभिन्न अंग है।

नाट्य मुद्राओं पर शोध करने का एक ध्येय यह भी है कि किसी संत पुरुष या अलौकिक पुरुष द्वारा सिखाया गया ज्ञान कभी निरर्थक नहीं हो सकता। इस प्रकार नाट्य मुद्राएँ अनेक दृष्टियों से मूल्यवान् हैं।

तदनन्तर जैन शास्त्रों में वर्णित मुद्राओं को महत्त्व देते हुए उन्हें तीसरे खण्ड में गुम्फित किया गया है। क्योंकि जैन धर्म अनादिनिधन होने के साथ-साथ इस मुद्रा विज्ञान के आरम्भ कर्ता एवं युग के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव भगवान है। इन्हें जैन धर्म के आद्य संस्थापक भी माना जाता है।

मुद्रा सम्बन्धी चौथे खण्ड में हिन्दू परम्परा की मुद्राओं का आधुनिक परिशीलन किया गया है। हिन्दू धर्म में प्रचलित कई मुद्राओं का प्रभाव जैन आचार्यों पर पड़ा तथा देवपूजन आदि से संबंधित कतिपय मुद्राएँ यथावत् स्वीकार भी कर ली गई ऐसा माना जाता है। वर्तमान में विवाह आदि कई संस्कार प्रायः हिन्दू पण्डितों के द्वारा ही करवाये जा रहे हैं इसलिए इसे चौथे क्रम पर रखा गया है। दूसरे, हिन्दू धर्म में सर्वाधिक क्रियाकाण्ड होता है और उनमें मुद्रा प्रयोग होता ही है।

मुद्रा सम्बन्धी पाँचवें खण्ड में बौद्ध परम्परावर्ती मुद्राओं को सम्बद्ध किया गया है। यद्यपि भगवान महावीर और भगवान बुद्ध समकालीन थे फिर भी हिन्दू धर्म जैनों के निकट माना जाता है। यही कारण है कि अनेक कर्मकाण्डों का प्रभाव जैन अनुयायियों पर पड़ा। आज भी जैन परम्परा के लोग हिन्दू मन्दिरों में बिना किसी भेद-भाव के चले जाते हैं जबकि बौद्ध धर्म के प्रति ऐसा झुकाव नहीं देखा जाता।

हिन्दू धर्म भारत के प्रायः सभी प्रान्तों में फैला हुआ है जबकि बौद्ध धर्म श्रमण परम्परा का संवाहक होने पर भी कुछ प्रान्तों में ही सिमट गया

है। इन्हीं पहलूओं को ध्यान में रखते हुए बौद्ध मुद्राओं को पांचवाँ स्थान दिया गया है।

प्रस्तुत शोध के छठवें खण्ड में यौगिक मुद्राओं एवं सातवें खण्ड में आधुनिक चिकित्सा पद्धति में प्रचलित मुद्राओं का विवेचन किया गया है। वर्तमान में बढ़ रही समस्याओं एवं अनावश्यक तनावों से छुटकारा पाने के लिए योगाभ्यास परमावश्यक है। इसलिए यौगिक एवं प्रचलित मुद्राओं को पृथक् स्थान देते हुए जन साधारण के लिए उपयोगी बनाया है। साथ ही ये मुद्राएँ किसी परम्परा विशेष से भी सम्बन्धित नहीं है।

इस तरह उपरोक्त सातों खण्ड में मुद्राओं का जो क्रम रखा गया है वह पाठकों के सुगम बोध के लिए है। इससे मुद्राओं की श्रेष्ठता या लघुता का निर्णय नहीं करना चाहिए, क्योंकि स्वरूपत: प्रत्येक मुद्रा अपने आप में सर्वोत्तम है। किन्तु प्रयोक्ता के अनुसार जो जिसके लिए विशेष फायदा करती है वह श्रेष्ठ हो जाती है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि यह शोध कार्य केवल विधि स्वरूप तक ही सीमित नहीं है इसमें प्रत्येक मुद्रा का शब्दार्थ, उद्देश्य, उनके सुप्रभाव, प्रतीकात्मक अर्थ, कौन सी मुद्रा किस प्रसंग में की जाये आदि महत्त्वपूर्ण तथ्यों को भी उजागर किया गया है जिससे यह शोध समग्र पाठकों के लिए हमेशा उपादेय सिद्ध हो सकेगा।

प्रसंगानुसार मुद्रा चित्रों के सम्बन्ध में यह कहना चाहूंगी कि यद्यपि चित्रों को बनाने में पूर्ण सावधानी रखी गयी है फिर भी उसमें गलतियाँ रहना संभव है। क्योंकि हाथ से मुद्रा बनाकर दिखाने एवं उसके चित्र को बनाने वाले की दृष्टि और समझ में अन्तर हो सकता है।

चित्र के माध्यम से प्रत्येक पहलु को स्पष्टत: दर्शाना संभव नहीं होता, क्योंकि परिभाषानुसार हाथ का झुकाव, मोड़ना आदि अभ्यास पूर्वक ही आ सकता है।

प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त मुद्राओं के वर्णन को समझने में और ग्रन्थ कर्त्ता के अभिप्राय में अन्तर होने से कोई मुद्रा गलत बन गई हो तो क्षमाप्रार्थी हूँ।

यहाँ निम्न बिन्दुओं पर भी ध्यान दें–

1. हमारे द्वारा दर्शाए गए मुद्रा चित्रों के अंतर्गत कुछ मुद्राओं में दायाँ हाथ दर्शक के देखने के हिसाब से माना गया है तथा कुछ मुद्राओं में दायाँ हाथ प्रयोक्ता के अनुसार दर्शाया गया है।

2. कुछ मुद्राएँ बाहर की तरफ दिखाने की है उनमें चित्रकार ने मुद्रा बनाते समय वह Pose अपने मुख की तरफ दिखा दिया है।
3. कुछ मुद्राओं में एक हाथ को पार्श्व में दिखाना है उस हाथ को स्पष्ट दर्शाने के लिए उसे पार्श्व में न दिखाकर थोड़ा सामने की तरफ दिखाया है।
4. कुछ मुद्राएँ स्वरूप के अनुसार दिखाई नहीं जा सकती है अतः उनकी यथावत् आकृति नहीं बन पाई हैं।
5. कुछ मुद्राएँ स्वरूप के अनुसार बनने के बावजूद भी चित्र में स्पष्टता नहीं उभर पाई हैं।
6. कुछ मुद्राओं के चित्र अत्यन्त कठिन होने से नहीं बन पाए हैं।

● मुद्रा विधि के **छठवें खण्ड** में योग साधना प्रधान मुद्राओं की विवेचना की गई है। यह शोध खण्ड पाँच अध्यायों में गुम्फित है।

प्रथम अध्याय में चक्र एवं केन्द्रादि के संतुलित-असंतुलित रहने पर उनसे होने वाले परिणामों की चर्चा की गई है।

द्वितीय अध्याय में सामान्य अभ्यास द्वारा जिन मुद्राओं को सिद्ध किया जा सकता है उनका सोद्देश्य वर्णन किया गया है।

तृतीय अध्याय में विशिष्ट प्रकारके अभ्यास द्वारा जिन मुद्राओं पर अधिकार पाया जा सकता है, ऐसी हठयोग सम्बन्धी मुद्राओं का विवेचन किया गया है।

यद्यपि जैन या अन्य परम्पराओं में भी यौगिक मुद्राएँ हैं परन्तु वहाँ उनका अस्तित्व स्वतंत्र नहीं है। वे अन्य प्रासंगिक मुद्राओं के साथ सम्मिलित है। इस खण्ड में जिन यौगिक मुद्राओं का उल्लेख है वे मुख्यतया हठयोग सम्बन्धी और दुःसाध्य है।

चौथे अध्याय में चिकित्सा उपयोगी यौगिक मुद्राओं का चार्ट दिया गया है, जो शारीरिक एवं आध्यात्मिक दोनों दृष्टियों से अनुसरणीय है।

पाँचवाँ अध्याय परिशिष्ट के रूप में है जिसमें सर्वप्रथम सहायक ग्रन्थसूची दी गई है। उसके पश्चात् मुद्रा प्रभावित चक्रादि के यन्त्र व चित्र दिये गये हैं और विशिष्ट शब्दों का अर्थ विन्यास किया गया है।

●

कृतज्ञता ज्ञापन

जगनाथ जगदानंद जगगुरू, अरिहंत प्रभु जग हितकरं
दिया दिव्य अनुभव ज्ञान सुखकर, मारग अहिंसा श्रेष्ठतम्
तुम नाम सुमिरण शान्तिदायक, विघ्न सर्व विनाशकम्
हो वंदना नित वन्दना, कृपा सिन्धु कार्य सिद्धिकरम्।।1।।

संताप हर्ता शान्ति कर्ता, सिद्धचक्र वन्दन सुखकरं
लब्धिवंत गौतम ध्यान से, विनय हो वृद्धिकरं
दत्त-कुशल मणि-चन्द्र गुरुवर, सर्व वांछित पूरकम्
हो वंदना नित वन्दना, कृपा सिन्धु कार्य सिद्धिकरम्।।2।।

जन जागृति दिव्य दूत है, सूरिपद वलि शोभितम्
सद्ज्ञान मार्ग प्रशस्त कर, दिया शास्त्र चिन्तन हितकरं
कैलाश सूरिवर गच्छनायक, सद्बोधबुद्धि दायकम्
हो वंदना नित वंदना, कृपा सिन्धु कार्य सिद्धिकरम्।।3।।

श्रुत साधना की सफलता में, जो कुछ किया निस्वार्थतम्
आशीष वृष्टि स्नेह दृष्टि, दी प्रेरणा नित भव्यतम्
सूरि 'पद्म' 'कीर्ति' 'राजयश' का, उपकार मुझ पर अगणितम्।
हो वंदना नित वंदना, कृपा सिन्धु कार्य सिद्धिकरम्।।4।।

ज्योतिष विशारद युग प्रभाकर, उपाध्याय मणिप्रभ गुरुवरं
समाधान दे संशय हरे, मुझ शोध मार्ग दिवाकरम्
सद्भाव जल से मुनि पीयूष ने, किया उत्साह वर्धनम्
हो वंदना नित वंदना, कृपा सिन्धु कार्य सिद्धिकरम्।।5।।

उल्लास ऊर्जा नित बढ़ाते, आत्मीय 'प्रशांत' गणिवरं
दे प्रबोध मुझको दूर से, भ्राता 'विमल' मंगलकरं
विधि ग्रन्थों से अवगत किया, यशधारी 'रत्न' मुनिवरं
हो वंदना नित वंदना, कृपा सिन्धु कार्य सिद्धिकरम्।।6।।

हाथ जिनका थामकर, किया संयम मार्ग आरोहणम्
अनुसरण कर पाऊं उनका, है यही मन वांछितम्
सज्जन कृपा से होत है, दुःसाध्य कार्य शीघ्रतम्
हो वंदना नित वंदना, कृपा सिन्धु कार्य सिद्धिकरम्।।7।।

कल्पतरू सा सुख मिले, शरणागति सौख्यकरम्
तप-ज्ञान रूचि के जागरण में, आधार हैं जिनका परम्
मुझ जीवन शिल्पी-दृढ़ संकल्पी, गुरू 'शशि' शीतल गुणकरम्
हो वंदना नित वंदना, कृपा सिन्धु कार्य सिद्धिकरम्।।8।।

'प्रियदर्शना' सत्प्रेरणा से, किया शोध कार्य शतगुणम्
गुरु भगिनी मंडल सहाय से, कार्य सिद्धि शीघ्रतम्
उपकार सुमिरण उन सभी का, धरी भावना वृद्धिकरं
हो वंदना नित वंदना, कृपा सिन्धु कार्य सिद्धिकरम्।।9।।

जिन स्थानों से प्रणयन किया, यह शोध कार्य मुख्यतम्
पार्श्वनाथ विद्यापीठ (शाजापुर, बनारस) की, मिली छत्रछाया सुखकरम्
जिनरंगसूरि पौशाल (कोलकाता) है, पूर्णाहुति साक्ष्य जयकरं
हो वन्दना नित वन्दना, है नगर कार्य सिद्धिकरम् ।।10।।

साधु नहीं पर साधकों के, आदर्श मूर्ति उच्चतम्
श्रुत ज्ञानसागर संशय निवारक, आचरण सम्प्रेरकम्
इस कृति के उद्धार में, निर्देश जिनका मुख्यतम्
शासन प्रभावक सागरमलजी, किं करुं गुण गौरवम्।।11।।

अबोध हूँ, अल्पज्ञ हूँ, छद्मस्थ हूँ कर्म आवृतम्
अनुमोदना करुं उन सभी की, त्रिविध योगे अर्पितम्
जिन वाणी विपरीत हो लिखा, तो क्षमा हो मुझ दुष्कृतम्
श्रुत सिन्धु में अर्पित करुं, शोध मन्थन नवनीतम्।।12।।

●

मिच्छामि दुक्कडं

आगम मर्मज्ञा, आशु कवयित्री, जैन जगत की अनुपम साधिका, प्रवर्त्तिनी पद सुशोभिता, खरतरगच्छ दीपिका पू. गुरूवर्य्या श्री सज्जन श्रीजी म.सा. की अन्तरंग कृपा से आज छोटे से लक्ष्य को पूर्ण कर पाई हूँ।

यहाँ शोध कार्य के प्रणयन के दौरान उपस्थित हुए कुछ संशय युक्त तथ्यों का समाधान करना चाहूँगी-

सर्वप्रथम तो मुनि जीवन की औत्सर्गिक मर्यादाओं के कारण जानते-अजानते कई विषय अनछुए रह गए हैं। उपलब्ध सामग्री के अनुसार ही विषय का स्पष्टीकरण हो पाया है अतः कहीं-कहीं सन्दर्भित विषय में अपूर्णता भी प्रतीत हो सकती है।

दूसरा जैन संप्रदाय में साध्वी वर्ग के लिए कुछ नियत मर्यादाएँ हैं जैसे प्रतिष्ठा, अंजनशलाका, उपस्थापना, पदस्थापना आदि करवाने एवं आगम शास्त्रों को पढ़ाने का अधिकार साध्वी समुदाय को नहीं है। योगोद्वहन, उपधान आदि क्रियाओं का अधिकार मात्र पदस्थापना योग्य मुनि भगवंतों को ही है। इन परिस्थितियों में प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि क्या एक साध्वी अनधिकृत एवं अननुभूत विषयों पर अपना चिन्तन प्रस्तुत कर सकती है?

इसके जवाब में यही कहा जा सकता है कि 'जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन' यह शोध का विषय होने से यत्किंचित लिखना आवश्यक था अतः गुरु आज्ञा पूर्वक विद्वद्वर आचार्य भगवंतों से दिशा निर्देश एवं सम्यक जानकारी प्राप्तकर प्रामाणिक उल्लेख करने का प्रयास किया है।

तीसरा प्रायश्चित्त देने का अधिकार यद्यपि गीतार्थ मुनि भगवंतों को है किन्तु प्रायश्चित्त विधि अधिकार में जीत (प्रचलित) व्यवहार के अनुसार प्रायश्चित्त योग्य तप का वर्णन किया है। इसका उद्देश्य मात्र यही है कि भव्य जीव पाप भीरू बनें एवं दोषकारी क्रियाओं से परिचित होवें। कोई भी आत्मार्थी इसे देखकर स्वयं प्रायश्चित्त ग्रहण न करें।

इस शोध के अन्तर्गत कई विषय ऐसे हैं जिनके लिए क्षेत्र की दूरी के कारण यथोचित जानकारी एवं समाधान प्राप्त नहीं हो पाए, अतः तद्विषयक पूर्ण स्पष्टीकरण नहीं कर पाई हूँ।

कुछ लोगों के मन में यह शंका भी उत्पन्न हो सकती है कि मुद्रा विधि के अधिकार में हिन्दू, बौद्ध, नाट्य आदि मुद्राओं पर इतना गूढ़ अध्ययन क्यों?

मुद्रा एक यौगिक प्रयोग है। इसका सामान्य हेतु जो भी हो परंतु इसकी अनुश्रुति आध्यात्मिक एवं शारीरिक स्वस्थता के रूप में ही होती है।

प्रायः मुद्राएँ मानव के दैनिक चर्या से सम्बन्धित है। इतर परम्पराओं का जैन परम्परा के साथ पारस्परिक साम्य-वैषम्य भी रहा है अतः इनके सद्पक्षों को उजागर करने हेतु अन्य मुद्राओं पर भी गूढ़ अन्वेषण किया है।

यहाँ यह भी कहना चाहूँगी कि शोध विषय की विराटता, समय की प्रतिबद्धता, समुचित साधनों की अल्पता, साधु जीवन की मर्यादा, अनुभव की न्यूनता, व्यावहारिक एवं सामान्य ज्ञान की कमी के कारण सभी विषयों का यथायोग्य विश्लेषण नहीं भी हो पाया है। हाँ, विधि-विधानों के अब तक अस्पृष्ट पन्नों को खोलने का प्रयत्न अवश्य किया है। प्रज्ञा सम्पन्न मुनि वर्ग इसके अनेक रहस्य पटलों को उद्घाटित कर सकेंगे। यह एक प्रारंभ मात्र है।

अन्ततः जिनवाणी का विस्तार करते हुए एवं शोध विषय का अन्वेषण करते हुए अल्पमति के कारण शास्त्र विरुद्ध प्ररूपणा की हो, आचार्यों के गूढ़ार्थ को यथारूप न समझा हो, अपने मत को रखते हुए जाने-अनजाने अर्हतवाणी का कटाक्ष किया हो, जिनवाणी का अपलाप किया हो, भाषा रूप में उसे सम्यक अभिव्यक्ति न दी हो, अन्य किसी के मत को लिखते हुए उसका संदर्भ न दिया हो अथवा अन्य कुछ भी जिनाज्ञा विरुद्ध किया हो या लिखा हो तो उसके लिए त्रिकरण-त्रियोगपूर्वक श्रुत रूप जिन धर्म से मिच्छामि दुक्कड़म् करती हूँ।

●

अनुक्रमणिका

अध्याय-1 : मुद्राओं से प्रभावित सप्त चक्र आदि के विशिष्ट प्रभाव 1-29

1. सप्त चक्रों पर मुद्रा के प्रभाव 2. ग्रन्थि तन्त्रों पर मुद्रा के प्रभाव 3. चैतन्य केन्द्रों पर मुद्रा के प्रभाव 4. पाँच तत्त्वों पर मुद्रा के प्रभाव।

अध्याय-2 : सामान्य अभ्यास साध्य यौगिक मुद्राओं का स्वरूप एवं उनके सुप्रभाव 30-57

1. चिन् मुद्रा 2. चिन्मय मुद्रा 3. उन्मनी मुद्रा 4. भूचरी मुद्रा 5. नासाग्र-नासिकाग्र मुद्रा 6. भैरव मुद्रा 7. नौमुखी मुद्रा 8. अगोचरी मुद्रा 9. योग मुद्रा 10. ब्रह्म मुद्रा 11. आकाशी मुद्रा।

अध्याय-3 : विशिष्ट अभ्यास साध्य यौगिक मुद्राओं की रहस्यपूर्ण विधियाँ 58-134

1. महा मुद्रा 2. नभो मुद्रा 3. उड्डीयान बन्ध मुद्रा 4. जालन्धर बन्ध मुद्रा 5. मूलबन्ध मुद्रा 6. महाबन्ध मुद्रा 7. महावेध मुद्रा 8. खेचरी मुद्रा 9. विपरीतकरणी मुद्रा 10. योनि मुद्रा 11. वज्रोली मुद्रा 12. शक्तिचालिनी मुद्रा 13. ताडागी मुद्रा 14. मांडुकी मुद्रा 15. शाम्भवी मुद्रा-1-2 16. पंच धारणा मुद्रा 17. अश्विनी मुद्रा 18. पाशिनी मुद्रा 19. काकी मुद्रा 20. मातंगिनी मुद्रा 21. भुजंगिनी मुद्रा।

अध्याय-4 : चिकित्सा उपयोगी मुद्राओं का चार्ट 135-143

1. शारीरिक रोग निदान की मुद्राएँ 2. मानसिक रोग निदान की मुद्राएँ 3. आध्यात्मिक रोग निदान की मुद्राएँ।

सहायक ग्रन्थ सूची 144-145

परिशिष्ट-1 : विशिष्ट शब्दों का अर्थ विन्यास 146-160

परिशिष्ट-2 : मुद्रा प्रभावित चक्र आदि के यन्त्र एवं चित्र 161-169

●

अध्याय-1

मुद्राओं से प्रभावित सप्त चक्रादि के विशिष्ट प्रभाव

मुद्रा एक ऐसी योग पद्धति है जिसके माध्यम से प्राचीन साधकों एवं दार्शनिकों के अनुभव, ज्ञान एवं साधना पद्धति को आधुनिक वैज्ञानिक संदर्भों में प्रतिपादित किया जा सकता है। यह प्राच्य विद्या वर्तमान युग को एक नई दिशा देने में सक्षम है। इसके द्वारा आज व्यक्तिगत स्तर पर उभर रही समस्याओं का ही नहीं अपितु सामाजिक, धार्मिक, राष्ट्रीय, अन्तरराष्ट्रीय आदि अनेक समस्याओं का निवारण किया जा सकता है। मुद्रा दैनिक क्रियाओं में उपयोगी एक महत्त्वपूर्ण विधि है और इसका विधिवत नियमित प्रयोग विभिन्न क्षेत्रों में निर्णायक भूमिका अदा कर सकता है।

हमारी शारीरिक संरचना एक जटिल मशीन के समान है। इसके विभिन्न पुर्जे (Parts) विविध कार्य करते हैं। मुद्रा प्रयोग के द्वारा उन सभी को एक साथ प्रभावित किया जा सकता है। इस योग के द्वारा शरीरस्थ मूलाधार आदि सप्त चक्रों को जागृत कर मानसिक, शारीरिक एवं भावनात्मक विकृतियों पर नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है। इसी के साथ मुद्रा योग अन्त:स्रावी ग्रंथियाँ, चैतन्य केन्द्र एवं पंच तत्त्व आदि को संतुलित एवं नियंत्रित रखते हुए स्वस्थ, सुसंस्कृत एवं सुदृढ़ समाज के निर्माण में सहयोगी बनता है।

सप्त चक्रों पर मुद्रा के प्रभाव

किसी भी मुद्रा का प्रयोग एवं उसकी साधना जागरण का अभूतपूर्व माध्यम होता है। ये सात चक्र आध्यात्मिक जगत एवं भौतिक जगत को अनेक प्रकार से प्रभावित करते हैं। सात चक्रों के नाम इस प्रकार हैं–

1. मूलाधार चक्र 2. स्वाधिष्ठान चक्र 3. मणिपुर चक्र 4. अनाहत चक्र 5. विशुद्धि चक्र 6. आज्ञा चक्र और 7. सहस्रार चक्र।

2... यौगिक मुद्राएँ : मानसिक शान्ति का एक सफल प्रयोग

1. मूलाधार चक्र

प्रथम मूलाधार चक्र गुप्तांग एवं गुदा के बीच पेरिनियम में स्थित है। इसे मूलाधार, मूल आधार अथवा प्रथम चक्र के रूप में जाना जाता है। मूलाधार चक्र प्रभावित होने से साधक पर निम्न प्रभाव देखे जा सकते हैं–

इस चक्र का मूल कार्य ऊर्जा का उत्पादन है। यही बलशाली आन्तरिक ऊर्जा व्यक्तित्व विकास करते हुए भावनात्मक सुरक्षा प्रदान करती है, आत्मविश्वास को सुदृढ़ बनाती है। यह ऊर्जा जागृत न हो तो व्यक्ति Over confident अथवा Low confident हो जाता है।

इस चक्र में रूकावट होने पर अथवा इसके सक्रिय न होने पर समस्त चक्रों पर दुष्प्रभाव पड़ता है, क्योंकि यह प्रथम चक्र होने से सभी का आधार चक्र है। इसके असंतुलन से व्यक्ति सुनता कम और बोलता ज्यादा है। वह परिस्थितियों को भी सहज स्वीकार नहीं कर पाता।

इस चक्र के जागृत होने से क्रोध, पागलपन, घृणा, वस्तु के प्रति अत्यधिक लगाव, अनियंत्रण, अवसाद, अहंकार, वैचारिक एवं भावनात्मक अस्थिरता, ईर्ष्या, आलस्य, अपेक्षा वृत्ति, बड़बड़ाना, (Depression) आत्महत्या के प्रयास आदि कई भावनात्मक समस्याएँ नियंत्रित होती हैं तथा दुष्प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त करने में सहयोग मिलता है।

सुसंस्कारों के निर्माण में यह चक्र विशेष सहायक बनता है। घटती संवेदनाओं एवं पारिवारिक मूल्यों के पुनर्जागरण में इस चक्र का सक्रिय रहना आवश्यक है। यह चक्र कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करते हुए मृत्यु भय को दूर करता है। इससे साधक आत्मज्ञाता बनकर स्वस्वरूप को प्राप्त करते हुए अन्य कई आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करता है।

इस चक्र का मुख्य सम्बन्ध प्रजनन तंत्र, गुर्दे एवं गुप्तांग से है। इसलिए तत्सम्बन्धी रोगों जैसे– पुरुष एवं स्त्री प्रजनन अंगों की समस्या, हस्त दोष, स्वप्न दोष, मासिक धर्म सम्बन्धी विकारों आदि का उपशमन होता है। इसी के साथ कैन्सर, कोष्ठबद्धता, फोड़े, सिरदर्द, हड्डी-जोड़ों आदि की समस्या, शारीरिक कमजोरी, बवासीर, गुर्दे, मांसपेशी आदि रोगों का भी निवारण होता है।

यह चक्र शक्ति केन्द्र एवं गोनाड्स ग्रन्थि के कार्य को प्रभावित करता है अत: इसका संतुलन अथवा असंतुलन शरीर की समस्त गतिविधियों को प्रभावित करता है।

2. स्वाधिष्ठान चक्र

दूसरा स्वाधिष्ठान चक्र मूलाधार एवं नाभि के मध्य स्थित है। इसे सकराल, यौन, स्वाधिष्ठान एवं द्वितीय चक्र के नाम से भी जाना जाता है। इस चक्र में उत्पन्न ऊर्जा काम वासना एवं यौन उत्तेजना को नियंत्रित रखती है। दूसरों से प्रीतिपूर्ण व्यवहार रखने में यह चक्र सहायक बनता है।

स्वाधिष्ठान चक्र प्रभावित होने पर व्यक्ति के जीवन में निम्न प्रभाव देखें जा सकते हैं–

इस चक्र का मूल कार्य प्रजनन तंत्र एवं यौन इच्छाओं को नियंत्रित करना है। इससे सम्बन्धों में मधुरता एवं विश्वास की वृद्धि होती है। इसका असंतुलन या निष्क्रियता कामेच्छाओं को असंतुलित और सम्बन्धों में पारस्परिक अविश्वास की वृद्धि करता है।

प्रथम मूलाधार चक्र यदि सम्यक प्रकार से जागृत हो और साधक को व्यक्तित्व बोध अच्छे से हुआ हो तो ही व्यक्ति दूसरे चक्र की ऊर्जा का उपयोग सत्कार्यों में कर सकता है। अत: दूसरा चक्र मुख्य रूप से व्यावहारिक, पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन को प्रेम एवं सौहार्द पूर्ण बनाने में सहायक बनता है।

इस चक्र की सक्रियता से भावनात्मक समस्याएँ जैसे– भय, लालसा, असृजनशीलता, अविश्वास, निष्क्रियता, अनाकर्षक व्यवहार, अत्यधिक कामवृत्ति, अकेलापन, नशे की आदत, मानसिक अशांति एवं भावनात्मक अस्थिरता आदि का निवारण होता है।

यह चक्र आत्मा की आन्तरिक शक्तियों एवं गुणों को जागृत करते हुए जीव को निर्भय बनाता है। क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, राग-द्वेष आदि दुष्वृत्तियों का क्षय करता है। व्यक्तित्व हिमालय की भाँति धवल एवं वाणी प्रभावशाली बनती है। अणिमा आदि सिद्धियों की प्राप्ति होती है। साधक को आध्यात्मिक उच्चता प्राप्त होती है।

शारीरिक स्तर पर यह चक्र मुख्य रूप से प्रजनन अंग, दोनों पैर एवं गुर्दे आदि को विशेष प्रभावित करता है। इन अंगों से सम्बन्धित रोग जैसे कि

पैरों में दर्द, सुजन, गुर्दे के रोग, प्रजनन समस्याएँ, अंडाशय, गर्भाशय की समस्या, यौनी विकार, यौन रोग आदि का शमन होता है। इसी के साथ यह खून की कमी, सूखी त्वचा, खसरा, हर्निया, दाद-खाज आदि चर्म समस्याएँ, नपुंसकता, मासिक धर्म सम्बन्धी विकार, रक्त कैन्सर आदि का भी शमन करता है।

इस चक्र के जागृत होने से स्वास्थ्य केन्द्र एवं प्रजनन ग्रन्थियाँ प्रभावित होती हैं। जिसके द्वारा काम विकार एवं भावनाओं पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

3. मणिपुर चक्र

तीसरा मणिपुर चक्र नाभि में स्थित है। इसे नाभि चक्र या तृतीय चक्र के नाम से भी जाना जाता है। मणिपुर एक ऊर्जा चक्र है। यह साधक को सक्रिय, गतिशील एवं उत्साही बनाता है। इससे साधक आत्मविश्वासी एवं दृढ़ संकल्पी बनता है।

इस चक्र के जागृत होने पर साधक के मनोबल, संकल्पबल एवं आत्मविश्वास में वृद्धि होती है तथा इस चक्र के विकार युक्त होने पर व्यक्ति असक्षम एवं असृजनशील बन जाता है और उसके मनोविकार बढ़ने लगते हैं।

यह तृतीय चक्र व्यक्ति को सामाजिक कर्तव्यों एवं दायित्वों के विषय में जागृत करता है। प्रथम चक्र स्वयं को स्वयं से, द्वितीय चक्र दो व्यक्तियों के पारस्परिक व्यवहार से और तृतीय चक्र समूह से जोड़ता है। यह उर्ध्वगमन में भी सहायक बनता है।

इस चक्र के जागरण से क्रोध, भय, अनैकाग्रता, अविश्वास, शंकालु वृत्ति, अखुशहाल जीवन, अविषाद, लालच, अत्यधिक कामवृत्ति आदि भावनात्मक समस्याएँ नियंत्रित होती हैं।

इस चक्र के ध्यान से कई आध्यात्मिक लाभ प्राप्त होते हैं जैसे कि व्यक्ति अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, क्षमा आदि को स्वीकार कर उत्तरोत्तर प्रगति करता है। अणिमा आदि अष्ट सिद्धियाँ और नैसर्प आदि नौ निधियों की शक्ति प्राप्त होती है तथा परोपकार एवं परमार्थ आदि की रूचि में वृद्धि होती है।

मणिपुर चक्र का मुख्य प्रभाव उदर भाग स्थित पाचनतंत्र, यकृत (लीवर), पित्ताशय तिल्ली आदि पर पड़ता है। जब यह चक्र प्रभावित होता है तब पाचन संबंधी समस्याएँ मधुमेह, अल्सर, पित्ताशय, लीवर, उदर आदि के रोगों

में निश्चित रूप से फायदा होता है। इसी प्रकार यह चक्र रक्त विकार, हृदय विकार, मानसिक विकार, शरीर एवं श्वास की दुर्गंध, वायु विकार, आँखों की समस्या आदि अनेक रोगों का निवारण करता है।

इस चक्र के प्रभावित होने से एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज ग्रन्थियाँ विकार मुक्त होती है तथा तैजस् केन्द्र सक्रिय बनता है। ऐसी स्थिति में उदर प्रदेश एवं पाचन तंत्र सम्बन्धी कार्य सुचारू रूप से होते हैं।

4. अनाहत चक्र

अनाहत सप्त चक्रों में चौथा चक्र है। इसका स्थान हृदय प्रदेश माना गया है। इसे अनहत, हृदय अथवा चतुर्थ चक्र के नाम से भी जाना जाता है। अनाहत चक्र की शक्ति प्रेम, परोपकार, दयालुता, उदारता, सहकारिता, कर्तव्यपरायणता, विश्वमैत्री की भावना को उत्पन्न करती हैं। अनाहत चक्र के प्रभावित होने पर व्यक्ति में निम्न प्रभाव परिलक्षित होते हैं।

यह चक्र मुख्य रूप से वक्ष:स्थल, हृदय, रक्तवाहिनियों एवं श्वसन संस्थान सम्बन्धी कार्यों को प्रभावित करता है। इसे भाव संस्थान भी माना गया है। कलात्मक उमंगे, रसानुभूति एवं कोमल संवेदनाओं के उत्पादन का स्रोत यही चक्र है।

अनाहत चक्र के जागृत होने पर व्यक्ति हृदयगत भावों को सम्यक् रूप से अभिव्यक्त करने में सक्षम बनता है। कलात्मक एवं सृजनात्मक कार्य जैसे चित्रकला, नृत्य, संगीत, कविता आदि की अभिरूचि में वृद्धि होती है।

भावनात्मक विकार जैसे कि उत्तेजना, चिल्लाना, गाली देना, अनुत्साह, असन्तुष्टि, दुखीपन, धुम्रपान, निर्ममता, कौटुम्बिक समस्या, आत्मसम्मान की कमी आदि अनेक नकारात्मक शक्तियों का निर्गमन इस चक्र की साधना से हो सकता है।

आध्यात्मिक दृष्टि से करूणा, क्षमा, विवेक, आत्मिक आनंद, उदारता, प्रेम, सौहार्द, वसुधैव कुटुम्बकम् आदि के भाव विकसित होते हैं तथा सभी के प्रति मैत्री एवं समत्त्व वृत्ति का विकास होता है।

जब किसी मुद्रा का प्रभाव अनाहत चक्र पर पड़ता है तो दैहिक स्तर पर हृदय, रक्त संचरण एवं श्वसन क्रिया प्रभावित होती है। जिससे हृदय रोग, दमा, छाती में दर्द, रक्तवाहिनियों में रूकावट या Blotting आ जाना आदि

रोगों में विशेष रूप से लाभ प्राप्त होता है। इससे एलर्जी, Anxiety disorder सुस्ती, फेफड़ों के रोग, प्रतिरोधात्मक तंत्र के विकार आदि शारीरिक समस्याएँ भी दूर होती हैं।

थायमस ग्रन्थि एवं आनंद केन्द्र के सम्यक संचालन हेतु इस केन्द्र का सक्रिय होना बहुत आवश्यक है। भावना शुद्धि, सौहार्द एवं सामंजस्य की स्थापना में यह चक्र विशेष सहयोगी है।

5. विशुद्धि चक्र

सात चक्रों में पांचवाँ विशुद्धि चक्र कण्ठ प्रदेश में स्थित है। इसे विशुद्ध, कण्ठ अथवा पंचम चक्र के नाम से भी जाना जाता है। पंचम चक्र की ऊर्जा के प्रभाव से साधक अपने आत्म भावों को वाणी के द्वारा अच्छी प्रकार से अभिव्यक्त कर पाता है। इस चक्र के प्रभाव से साधक के वैयक्तिक, व्यवहारिक एवं आध्यात्मिक जीवन में निम्न लाभ देखे जा सकते हैं-

यह विशुद्धि चक्र संचार केन्द्र है और स्वयं को व्यक्त करने में मुख्य रूप से सहायक बनता है। विपरित परिस्थितियों में समत्व स्थिति एवं प्रेमपूर्ण व्यवहार में भी विशेष उपयोगी बनता है। अचेतन मन एवं चित्त संस्थान को प्रभावित करते हुए दायें मस्तिष्क के Silent area को जगाने में भी यह चक्र प्राथमिक भूमिका निभाता है।

इस चक्र के सक्रिय न होने पर भावनाओं की अभिव्यक्ति एवं अन्य संचरण कार्यों में रूकावट आ जाती है। इसी के साथ स्मरण शक्ति का ह्रास, कई प्रकार की मानसिक विकृतियाँ एवं कंठ विकार उत्पन्न होते हैं।

चक्र के सक्रिय होने पर भावनात्मक समस्याएँ जैसे अनियंत्रित व्यवहार, भावनाओं में रूकावट, आंतरिक चिंता, अनुशासन की कमी, स्मृति खोना, आत्महीनता, घबराहट, निष्क्रियता, अहंकार आदि अवरोधों के निवारण में विशेष सहायता प्राप्त होती है।

पाँचवें चक्र का ध्यान करने पर साधक भूख प्यास को नियंत्रित कर सकता है। इससे अतिन्द्रिय क्षमता के प्रसुप्त बीजांकुर फुट पड़ते हैं। आंतरिक शक्ति का जागरण होता है। शारीरिक, मानसिक, वैचारिक एवं भावनात्मक स्थिरता एवं दृढ़ता बढ़ती है। साधक चिंतन शक्ति का विकास करते हुए दार्शनिक या आत्मचिंतक बनता है। कंठ प्रदेश में स्रावित होने वाले अमृत रस के पान

से साधक कांतिवान एवं तेजस्वी बनता है तथा अन्य भी कई आध्यात्मिक लाभों को प्राप्त करता है।

शारीरिक स्तर पर विशुद्धि चक्र के जागरण एवं संतुलन से स्वर तंत्र, कंठ एवं कर्ण प्रदेश पर अधिक प्रभाव पड़ता है। इससे तत्सम्बन्धी रोगों थायरॉइड, बहरापन, कम सुनना, Vocal cord एवं स्वर तंत्र के विकार आदि से राहत मिलती है।

विशुद्धि चक्र के रोग मुक्त होने से विशुद्धि केन्द्र, थायरॉइड और पेराथायरॉईड ग्रंथियाँ प्रभावित होती हैं। इससे वाणी प्रखर एवं प्रभावशाली बनती है।

6. आज्ञा चक्र

इस चक्र का स्थान दोनों भौहों के बीच है। इसे तीसरी आँख या षष्टम चक्र के नाम से भी जाना जाता है। इस चक्र से प्राप्त ऊर्जा अन्तर्ज्ञान, एकाग्रता एवं अतिन्द्रिय शक्तियों में वृद्धि करती है। आध्यात्मिक उत्थान में यह चक्र विशेष सहायक माना गया है। इसके गतिशील होने पर साधक के जीवन में निम्न लाभ देखे जाते हैं–

इस चक्र का मुख्य सम्बन्ध हमारे अन्तर्ज्ञान एवं अवचेतन मन में घटित घटनाओं से है। यह ईडा, पिंगला एवं सुषुम्ना का संगम स्थल है। इस चक्र की साधना से व्यष्टि सत्ता समष्टि चेतना से सम्बन्ध जोड़ने में सक्षम हो जाती है।

आज्ञा चक्र के जागरण से साधक दिव्य ज्ञानी, दार्शनिक, दूसरों के मनोभावों को समझने वाला बनता है। भूत एवं भविष्य का ज्ञान और विचार संप्रेषण में दक्षता प्राप्त कर लेता है। मन, बुद्धि एवं विचारों की एकाग्रता सधती है जिससे आत्मनियंत्रण की विशिष्ट शक्ति का जागरण होता है।

इस चक्र के प्रभावित होने पर उन्मत्तता, अवषाद, ज्ञान की कमी, चालाकी, स्मृति समस्याएँ, मानसिक विकार, अनिश्चिय, पागलपन, चंचलता, वैचारिक अस्थिरता आदि भावनात्मक समस्याओं का समाधान होता है।

आत्मनियंत्रण में यह चक्र विशेष सहायक है। बौद्धिक सूक्ष्मता एवं प्रखरता में वृद्धि करते हुए यह आन्तरिक ज्ञान चेतना को भी जागृत करता है। इस चक्र को आत्मा का उत्थान द्वार माना गया है। इससे साधक काम वासना आदि पर विजय प्राप्त कर आत्मानंद की प्राप्ति करता है तथा मस्तिष्किय रहस्यों एवं आत्मज्ञान को उपलब्ध करता है।

छठे आज्ञा चक्र के जागृत होने पर शरीरस्थ पीयूष ग्रन्थि एवं छोटा मस्तिष्क विशेष प्रभावित होता है। इनके स्वस्थ रहने से अनिद्रा, सिरदर्द, ब्रेनट्युमर, मिरगी एवं मस्तिष्क संबंधी रोगों का निवारण होता है। इसी के साथ पुरानी थकान, पागलपन, पीयुष ग्रन्थि की समस्या, बौद्धिक दुर्बलता आदि भी दूर होती हैं।

बौद्धिक स्तर पर यह चक्र एकाग्रता को बढ़ाता है। विचारों को स्थिर करता है। बौद्धिक दुर्बलता एवं अस्थिरता को दूर करता है। सूक्ष्म बुद्धि विकसित होने से समझ शक्ति तथा स्मृति बल में अभिवृद्धि होती है।

आज्ञा चक्र आन्तरिक दिव्य ज्ञान को जागृत करने एवं आत्मनियंत्रण में विशेष लाभदायी है। इस चक्र के संतुलित रहने से दर्शन केन्द्र एवं पीयूष ग्रन्थि नियन्त्रित रहती हैं।

7. सहस्रार चक्र

सहस्रार चक्र सिर के ऊपरी भाग में अवस्थित उच्चतम चेतना का केन्द्र है। इसे ताज या सप्तम चक्र के नाम से भी जाना जाता है। इस चक्र का सम्बन्ध सम्पूर्णतया आध्यात्मिक जगत से है। इस चक्र में प्रवाहित ऊर्जा आत्मा और परमात्मा के बीच तादात्म्य स्थापित कर शाश्वत सत्य का अनुभव करवाती है।

यह चक्र अमरत्व का प्रतीक है। इस चक्र का मुख्य सम्बन्ध ऊपरी मस्तिष्क से है। यह साधक के ज्ञानार्जन में सहायक बनता है और उसे निर्विकल्प एवं निर्विकारी बनाता है।

सहस्रार चक्र के जागृत होने पर साधक की मनोदशा संसार के भौतिक प्रपंचों से मुक्त होकर आध्यात्मिक जगत में स्थिर होती है। इससे असम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था प्राप्त होती है। यह चक्र साधना के उच्चतम प्रतिफल की अनुभूति करवाता है।

भावनात्मक समस्याएँ जैसे कि उन्मत्तता, अवषाद, मृत्यु भय, निराशा, नादानी, पागलपन, अनुत्साह , अन्तरप्रेरणा की कमी, खुश नहीं रहना, निर्णय आदि लेने में कठिनाई होना, मानसिक एवं वैचारिक अस्थिरता आदि के निवारण में विशेष भूमिका निभाता है।

इस चक्र की साधना से साधक को दिव्य ज्ञान की अनुभूति होती है तथा परमोच्च सिद्ध अवस्था की प्राप्ति होती है।

दैहिक स्तर पर यह चक्र मुख्य रूप से ऊपरी मस्तिष्क को संतुलित रखता है। मस्तिष्क कैन्सर, मानसिक एवं बौद्धिक समस्याएँ , कामासक्ति, सिरदर्द, मिरगी आदि में इस चक्र की सक्रियता फायदा करती है। इससे पार्किंसंस रोग, अन्त:स्त्रावी ग्रन्थियों की समस्या, ऊर्जा की कमी, पुरानी बिमारी, कामेच्छाओं के असंतुलन आदि दूर होते हैं।

पिनियल ग्रन्थि एवं ज्योति केन्द्र सम्बन्धी असंतुलन के नियंत्रण में यह चक्र सहायक बनता है। इस चक्र के विकार ग्रस्त होने पर व्यक्ति को शारीरिक और मानसिक अवस्था का ज्ञान नहीं रहता।

ग्रन्थि तंत्रों पर मुद्रा के प्रभाव

आधुनिक विज्ञान के अनुसार व्यक्ति की विविध शारीरिक क्रियाओं के संचालन हेतु अनेक ग्रन्थियाँ एक टीम के रूप में कार्य करती हैं, जिसे तन्त्र कहा जाता है। शरीर के नियंत्रक एवं संयोजक के रूप में मुख्य दो तन्त्र हैं– नाड़ी तन्त्र एवं अन्त:स्त्रावी ग्रन्थि तन्त्र।

अन्त:स्त्रावी ग्रन्थियों की रचना हमारे शरीर के नियामक एवं रक्षक तंत्र के रूप में की गई है। यह अपने प्रभावों का निष्पादन रासायनिक स्त्रावों के माध्यम से करता है जिसे हार्मोन (Harmone) कहते हैं, यह हार्मोन्स रक्त में घुल-मिलकर शरीर के गठन एवं उसके स्वस्थ रहने में सहयोगी बनते हैं तथा मुनष्य की मानसिक दशा, स्वभाव, व्यवहार आदि पर भी गहरा प्रभाव डालते हैं। मुनष्य के भीतर रहे हुए आवेग, वासना, घृणा, कामना आदि को नियंत्रित करने में यह एक प्रमुख स्त्रोत है। योगाचार्यों के अनुसार ग्रन्थियाँ मन और चारित्र का निर्माण करती हैं।

मुद्रा प्रयोग के द्वारा पेडु के ईद-गिर्द और नीचे स्थित विद्युत एवं ऊर्जा का उर्ध्वारोहण किया जा सकता है। इससे अन्त:स्त्रावी ग्रन्थियों की शक्ति को कई गुणा बढ़ाकर उत्तम चारित्रिक विकास भी संभव है। इन स्त्रावों के असंतुलन से शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकृतियाँ उत्पन्न होती है। भारतीय योगी साधकों ने हजारों वर्ष पूर्व इन ग्रन्थियों का वर्णन चक्र अथवा कमल के रूप में किया है। ग्रन्थियों एवं चक्रों की तुलना करने पर उनमें कोई विशेष अंतर परिलक्षित नहीं होता।

10... यौगिक मुद्राएँ : मानसिक शान्ति का एक सफल प्रयोग

जिस प्रकार मधुमक्खी सिंचित फलों के रस में अपना स्राव मिलाकर मधु बनाती है उसी प्रकार ग्रन्थियाँ शरीर में से आवश्यक तत्त्व ग्रहण करके उनमें अपना रस मिलाकर रासायनिक कारखानों की भाँति शक्तिशाली हार्मोन्स का निर्माण करती हैं। ये हार्मोन्स हमारे शरीर में प्रतिक्षण मृतप्राय: कोशिकाओं (Cells) को पुनर्जीवित कर क्रियाशील बनाने का कार्य करते हैं। इससे शारीरिक क्रियाएँ व्यवस्थित रूप से चलती रहती है। कई बार जब ग्रन्थियों में विकृति आ जाती है तो उन्हें संतुलित करना अत्यावश्यक हो जाता है, अन्यथा कई असाध्य रोग उत्पन्न हो सकते हैं। समस्त शारीरिक एवं मानसिक रोगों का मूल कारण अन्त:स्रावी ग्रन्थियों का असंतुलन ही है।

पंच महाभूतों का नियमन कर शरीर के संगठन (Melabolism of the body) को मजबूत रखना ग्रन्थियों का मुख्य कार्य है। मस्तिष्क और शरीर के प्रत्येक अवयव का संतुलन एवं रोगों से सुरक्षित रखने का कार्य ग्रन्थियाँ ही करती हैं। इस तरह ग्रन्थियाँ हमारे शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक एवं वैयक्तिक निर्माण एवं विकास में सहायक बनती हैं। इन ग्रन्थियों के असंतुलन का प्रभाव व्यक्ति के स्वभाव एवं व्यवहार पर परिलक्षित होता है जैसे कि यदि एंड्रिनल ग्रन्थि सही रूप से कार्यरत न हो तो लीवर बराबर काम नहीं करता तथा व्यक्ति डरा हुआ एवं चिडचिड़ा बन जाता है। यौन ग्रन्थियों के अधिक सक्रिय होने पर वासना बढ़ती है और व्यक्ति स्वार्थी बनता है। यदि थायमस ग्रन्थि अंसतुलित हो तो स्वभाव में छिछोरापन और दुष्टता आती है। पिच्युटरी ग्रन्थि के बराबर काम नहीं करने पर व्यक्ति निर्दयी और कठोर बन जाता है तथा अपराध कार्यों में उसकी प्रवृत्ति बढ़ जाती है। इसलिए अंत:स्रावी ग्रन्थियों को संतुलित रखना परम आवश्यक है। ये समस्त ग्रन्थियाँ परस्पर एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं क्योंकि एक ग्रंथि में उत्पन्न विकार समस्त ग्रन्थियों को प्रभावित करता है। मुद्रा प्रयोग के माध्यम से अंत:स्रावी ग्रन्थियों के स्राव को संतुलित किया जा सकता है। हमारे शरीर में मुख्यतया निम्न आठ ग्रन्थियाँ हैं–

1. पिनीयल ग्रन्थि (Pineal Gland)

पिनीयल ग्रन्थि मस्तिष्क के मध्य पिछले हिस्से में स्थित है। इसका आकार गेहूं के दाने से भी छोटा होता है। यह ग्रन्थि मुख्य सचिव की भाँति शरीर

की व्यवस्था एवं गतिविधियों का संचालन करती है। इसे तीसरी आंख भी कहते हैं।

पिनीयल ग्रन्थि सभी ग्रन्थियों का विधिवत विकास एवं संचालन करती है, शैशव अवस्था में कामवृत्तियों को नियंत्रित रखती है तथा संकट के समय में शारीरिक तन्त्रों को आवश्यक निर्देश देने एवं उन्हें क्रियान्वित करने का कार्य करती है। इससे नियंत्रण एवं नेतृत्व शक्ति का विकास होता है। अत: इस ग्रन्थि का सक्रिय एवं संतुलित रहना अनिवार्य है।

शारीरिक स्तर पर इस ग्रन्थि के विधिवत् कार्य न करने पर उच्च रक्तचाप (High Blood Pressure) एवं समय से पूर्व काम वासना जागृत हो जाती है। शरीरस्थ सोडियम, पोटैशियम और जल की मात्रा का संतुलन यही ग्रन्थि करती है। जिन लोगों की यह ग्रन्थि ठीक से काम नहीं करती उनके शरीर में पानी का जमाव होने से शरीर फुग्गे की तरह फूल जाता है और किडनी के रोगों की संभावना बढ़ जाती है।

यदि यह ग्रन्थि जागृत होकर सम्यक रूप से कार्य करे तो मनुष्य में अनेक दिव्य गुणों का उद्‌भव हो सकता है। इससे साधक में सज्जनता, साधुता, समझदारी आती है तथा हृदय की सुकुमारता एवं मनोबल दृढ़ होता है।

2. पीयूष ग्रन्थि (Pituitary Gland)

पीयूष ग्रन्थि का स्थान मस्तिष्क के निचले छोर तथा नाक के मूल भाग के पीछे की ओर है। इस ग्रन्थि का आकार मटर के दाने के जितना है। यह ग्रन्थि सब ग्रन्थियों की रानी है तथा अन्य ग्रन्थियों को काम का आदेश देती है। इसे ग्रन्थियों को नेता (Master Gland) भी कहा जाता है।

यह ग्रन्थि कम से कम नौ प्रकार के विभिन्न हार्मोनों का स्राव करती है जिससे जीवन के कई महत्त्वपूर्ण क्रियाकलापों पर प्रभाव पड़ता है। यह हमारे मनोबल, निर्णायक शक्ति, स्मरण शक्ति एवं देखने-सुनने की शक्ति का नियमन करती है। इस ग्रन्थि के सक्रिय रहने से व्यक्ति बुद्धिशाली, प्रसिद्ध लेखक, कवि, वैज्ञानिक, तत्त्वज्ञानी और मानव जाति का प्रेमी बनता है।

इस ग्रन्थि का स्राव शरीर की आन्तरिक हलन-चलन, स्फुर्ति, हृदय की धड़कन, शरीर तापक्रम, रक्त शर्करा आदि को नियंत्रित रखता है। यह ग्रन्थि व्यक्ति की लम्बाई, सिर के बाल एवं हड्डियों के विकास को भी संचालित करती है।

इस ग्रन्थि के असंतुलित होने पर से शरीर दुर्बल अथवा अत्यधिक मोटा हो जाता है। यह मस्तिष्क का भी नियंत्रण करती है। अत्यधिक डरने, चोट लगने अथवा गर्भावस्था में अधिक चिंता करने से गर्भस्थ शिशु की पीयूष ग्रन्थि प्रभावित होती है जिसके परिणामस्वरूप अल्प विकसित मस्तिष्क वाले बच्चे (Retarded child) का जन्म होता है। ऐसे बच्चे हीन वृत्तिवाले, भावनाशून्य, शरारती एवं स्वच्छंदी होते हैं। पीयूष ग्रन्थि को मुद्रा प्रयोग द्वारा प्रभावित करने से इन सब समस्याओं में विस्मयकारी समाधान देखा जा सकता है।

इस ग्रन्थि के सक्रिय रहने से बालकों के शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास में सहायता प्राप्त हो सकती है। यह ग्रन्थि तनावमुक्त, प्रसन्नता, सहिष्णुता, मैत्री भावना आदि गुणों से युक्त जीवन जीने में सहयोग करती है तथा वाचालता, अस्थिरता, अत्यधिक संवेदनशीलता, शारीरिक उष्णता आदि को न्यून करती है।

3. थाइरॉइड-पेराथाइरॉइड ग्रन्थियाँ (Thyroid and Para thyroid Gland)

थाइरॉइड एवं पेराथाइरॉइड ग्रन्थियाँ स्वर यंत्र के समीप श्वासनली के ऊपरी छोर पर स्थित हैं। इन्हें अवटु एवं परावटु ग्रन्थि भी कहा जाता है। यह ग्रन्थि विपुल मात्रा में रक्त की आपूर्ति करती है और बालकों के विकास में विशेष सहायक बनती है।

थाइरॉइड ग्रन्थि शरीर में ऊर्जा उत्पादन का मुख्य अवयव है। चयापचय की मात्रा और व्यक्ति की जल्दबाजी को निर्धारित करने का मुख्य कार्य यही ग्रन्थि करती है। इस ग्रन्थि की सक्रियता से सद्भाव, उच्च विचारशक्ति, एकाग्रता, आत्मसंयम, संतुलित स्वभाव, पवित्रता, परोपकार आदि गुणों का जन्म होता है।

शारीरिक स्तर पर यह ग्रन्थि शरीरस्थ चूने एवं गंधक तत्त्व (Calcium and Phosphorus) का पाचन करती है। शरीर में रहे विजातिय तत्त्वों को दूर करती है। गर्मी को संतुलित रखती है। पाचन एवं प्रजनन अंगों से सीधा सम्बन्ध होने के कारण यह भोजन को रक्त, मांस, मज्जा, हड्डी एवं वीर्य में परिवर्तित करने में सहायक बनती है। कामेच्छा को गति देने, प्रजनन अंगों को स्वच्छ रखने एवं मासिक धर्म को नियंत्रित रखने में भी इस ग्रन्थि की मुख्य भूमिका है।

इस ग्रन्थि के असंतुलित रहने पर शरीर में थकान महसूस होती है। शरीर का सूखना (Rickets), हिचकी (Convulsion), स्नायुओं का ऐंठन आदि रोग होते हैं। बालकों का विकास अवरूद्ध हो जाता है। पथरी, मोटापा, रियुमेटिजम, आर्थराईटिस, कोलेस्ट्रॉल आदि की समस्या बढ़ जाती है तथा अस्वस्थता, वाचालता, मुखरता, कृतघ्नता आदि दुर्गुणों की वृद्धि होती है।

इस ग्रन्थि की संतुलित अवस्था में वायु तत्त्व, केलशियम, आयोडिन और कोलेस्ट्रॉल नियन्त्रित रखते हैं। मस्तिष्क को संतुलित रखते हुए यह शरीर में होने वाले वसा, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट की चयापचय क्रिया को भी नियंत्रित रखती है।

इस ग्रन्थि के जागृत रहने पर सुख और स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है, कामेच्छा नियंत्रित रहती है और बालकों में सुसंस्कारों एवं सद्गुणों का विकास होता है।

4. थायमस ग्रन्थि (Thymus Gland)

थायमस ग्रन्थि गर्दन के नीचे एवं हृदय के कुछ ऊपर सीने के मध्य स्थित है। इसे धायमाता कहा जाता है। इसका प्रमुख कार्य बालकों की रोग से रक्षा करना है। शैशव अवस्था में इस ग्रन्थि की वृद्धि बहुत तेजी से होती है और बीस वर्ष की आयु के बाद यह सिकुड़ जाती है।

इस ग्रन्थि से शैशव अवस्था में शारीरिक विकास का नियमन होता है। विशेष रूप से गोनाड्स (काम ग्रन्थियों) को सक्रिय नहीं होने देती। यौवन अवस्था में उन्मादों का निरोध करती है। मस्तिष्क का सम्यक नियोजन करते हुए लसिका-कोशिकाओं के विकास में अपने स्राव (T-cells) द्वारा सहयोग कर रोग निरोधक कार्यवाही में योगदान करती है। इस प्रकार बालकों के शारीरिक, मानसिक एवं चारित्रिक विकास में यह विशेष सहयोगी बनती है।

5. एड्रीनल ग्रन्थि (Adrenal Gland)

एड्रीनल ग्रन्थि गुर्दे के ऊपरी भाग में युगल रूप में रहती है। यह टोपी जैसी त्रिकोणाकार होती है। इस ग्रन्थि के द्वारा ग्रन्थि शारीरिक गतिविधियों जैसे– हलन-चलन, श्वसन, रक्त संचरण, पाचन, मांसपेशी संकुचन, पानी आदि अनावश्यक पदार्थों के निष्कासन में विशेष सहयोग प्राप्त होता है।

यह ग्रन्थि तीन दर्जन से भी अधिक प्रकार के स्रावों को उत्पन्न करती

है। ये स्राव मस्तिष्क एवं प्रजनन अवयवों के स्वस्थ विकास में सहायक बनते हैं तथा मानसिक एकाग्रता एवं शारीरिक सहनशीलता को बढ़ाते हैं। इन स्रावों के प्रभाव से शरीर की स्नायविक और मांसपेशीय संरचना स्वस्थ एवं बलवान रहती है। रोग प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास करते हुए शरीर के लिए आवश्यक रसायनों एवं औषधियों के निर्माण में भी यह सहायक बनती है। शरीरस्थ अग्नितत्त्व का नियमन करते हुए यह ग्रन्थि यकृत, लीवर, गोल ब्लेडर, पाचक रस एवं पित्त उत्पादन कार्य का संतुलन करती है।

इस ग्रन्थि के सक्रिय एवं संतुलित रहने से तीव्र परख शक्ति, अथक कार्य शक्ति, आंतरिक साहस, निर्भयता, आशावादिता, आत्मविश्वास आदि सकारात्मक गुणों की वृद्धि होती है। इसके एपीनेफ्रीन और नोर-एपीनेफ्रिन नामक हार्मोनों के स्राव दर्द, शीत प्रकोप, अल्प रक्तचाप, भावनात्मक उद्वेग, क्रोध, उत्तेजना आदि का शमन करने में विशेष सहयोगी बनते हैं।

6. पेन्क्रियाज ग्रन्थि (Pancreas Gland)

यह ग्रन्थि पेट में 6इंच से 8 इंच लम्बी स्थित है। इस ग्रन्थि में उत्पन्न रस क्षारीय स्वभाव का होने से शरीर के आम्लिय तत्त्वों को नियंत्रित रखता है। इन्हीं रसों में से एक इंसुलिन नामक रस रक्त शर्करा को पचाने में महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। यही रस शरीर में ऊर्जा का भी उत्पादन करता है।

वर्तमान वैज्ञानिक अनुसंधानों के अनुसार पेन्क्रियाज के अधिक क्रियाशील रहने पर शरीरस्थ रक्त शर्करा कम हो जाती है जिससे लो ब्लड प्रेशर, आधासीसी आदि रोगों की संभावना बढ़ जाती है और वहीं इसकी निष्क्रियता मधुमेह आदि रोगों को बढ़ाती है।

इस ग्रन्थि से जागृत रहने पर भूख, पसीना, रक्तचाप आदि नियंत्रित रहते हैं तथा सिरदर्द, तनाव, कमजोरी, लो ब्लड प्रेशर, मधुमेह आदि रोगों का निवारण होता है। यह ग्रन्थि अनिर्णायकता, चिंतातुरता, अतिसंवेदनशीलता आदि समस्याओं का भी निवारण करती है।

7. प्रजनन ग्रन्थियाँ (गोनाड्स)

रजपिंड एवं शुक्रपिंड (Overies and Testies) के रूप में काम ग्रन्थियाँ मनुष्य के शरीर में पेडु एवं पृष्ठ रज्जु के नीचे के छोर के पास स्थित हैं। स्त्रियों में डिम्बाशय एवं पुरुषों में वृषण प्रजनन ग्रन्थि का कार्य करते हैं। यह ग्रन्थि प्रजनन की अटूट श्रृंखला को चालु रखती है।

गोनाड्स या काम ग्रन्थियाँ मुख्य रूप से कामेच्छा को नियन्त्रित कर विपरित लिंग के प्रति आकर्षण उत्पन्न करती हैं। इससे निःसृत स्राव के द्वारा स्त्रियाँ स्त्रियोचित व्यक्तित्व को और पुरुष पुरुषत्व को प्राप्त करते हैं। ग्रन्थियाँ देह में स्थित जलतत्त्व का संतुलन करते हुए ज्ञानतंतुओं, मज्जा कोष, मांस, हड्डी, बोन-मेरो एवं वीर्य रज का नियमन करती हैं तथा अन्य अवयव एवं उनके क्रियाकलापों पर भी गहरा प्रभाव डालती है।

यदि काम ग्रन्थियाँ सुचारू रूप से कार्य न करें तो कन्याओं की मासिक धर्म (Menstural Periods) सम्बन्धी गड़बड़ियाँ, मुहाँसे, पांडुरोग (Anemia) आदि तथा लड़कों में हस्तदोष-स्वप्नदोष आदि समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। इस ग्रन्थि के सक्रिय रहने पर शरीर की गर्मी संतुलित रहती है। इससे युवक-युवतियों का स्वभाव मिलनसार बनता है। यह मनुष्य के व्यवहार एवं वाणी को लोकप्रिय बनाती है।

चैतन्य केन्द्रों पर मुद्रा का प्रभाव

भगवतीसूत्र में बतलाया गया है 'सव्वेणं सव्वे' हमारी चेतना के असंख्य प्रदेश हैं और वे सब चैतन्य केन्द्र हैं। कुछ स्थान या केन्द्र ऐसे होते हैं जिनके द्वारा हम शरीर एवं भावों को अधिक प्रभावित कर सकते हैं। हमारे शरीर के संचालन में चैतन्य केन्द्रों की विशेष भूमिका होती है। चेतना का आन्तरिक स्तर मन नहीं है अपितु चेतन मन में उठने वाले आवेग क्रोध, अभिमान, ईर्ष्या, लालच आदि वृत्तियाँ हैं।

यद्यपि प्रत्येक मनुष्य में विवेक चेतना अन्तर्निहित होती है। इस विवेक चेतना एवं विवेक पूर्ण निर्णायक शक्ति का सम्यग विकास ही हमारे भीतर रही पाशवी वृत्तियों, रूढ़िगत परम्पराओं, मानसिक विकारों एवं भावनात्मक अस्थिरता आदि को दूर कर सकती है। विवेक चेतना के जागरण के लिए चैतन्य केन्द्रों का स्वस्थ एवं विकार रहित रहना परमावश्यक है। चित्त का यह स्वभाव है कि वह सिर से लेकर पैर तक घुमता रहता है। कभी ऊपर तो कभी नीचे, कभी अच्छे विचारों में तो कभी बुरे विचारों में, कभी उत्कृष्ट भावों में तो कभी गहन पतन के मार्ग पर। इन सब पर नियंत्रण करने हेतु चैतन्य केन्द्रों का संतुलित एवं जागृत रहना आवश्यक है। मुद्रा प्रयोग के माध्यम से यह कार्य सहज संभव होता है।

16... यौगिक मुद्राएँ : मानसिक शान्ति का एक सफल प्रयोग

वैज्ञानिक शोधों के अनुसार हमारा सम्पूर्ण शरीर विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र (Electro Magnetic Field) है, किन्तु कुछ विशेष स्थानों में विद्युत क्षेत्र की तीव्रता अन्य स्थानों की तुलना में कई गुणा अधिक होती है। हमारा मस्तिष्क, इन्द्रियाँ, अन्त:स्रावी ग्रन्थियाँ आदि कुछ ऐसे ही क्षेत्र हैं। आयुर्वेद की भाषा में इन्हें मर्म स्थान कहा गया है। आयुर्वेदाचार्यों ने 107 मर्म स्थानों का उल्लेख किया है जहाँ पर प्राणों का केन्द्रीकरण होता है। इन रहस्यमय स्थानों में चेतना विशेष प्रकार से अभिव्यक्त होती है। युवाचार्य महाप्रज्ञजी ने तेरह चैतन्य केन्द्रों की चर्चा की है।

1. शक्ति केन्द्र 2. स्वास्थ्य केन्द्र 3. तैजस केन्द्र 4. आनंद केन्द्र, 5. विशुद्धि केन्द्र 6. ब्रह्म केन्द्र 7. प्राण केन्द्र 8. चाक्षुष केन्द्र 9. अप्रमाद केन्द्र 10. दर्शन केन्द्र 11. ज्योति केन्द्र 12. शांति केन्द्र और 13. ज्ञान केन्द्र।

ये चैतन्य केन्द्र समस्त अवयवों में सक्रियता उत्पन्न करते हैं तथा इन्द्रियों एवं मन को भी संचालित करते हैं। इन्द्रियों पर नियन्त्रण पाना साधना का मुख्य लक्ष्य होता है। मुद्रा साधना इसमें सहायक बनती है।

1-2. शक्ति केन्द्र एवं स्वास्थ्य केन्द्र

शक्ति केन्द्र मूलाधार के स्थान पर अर्थात् पृष्ठ रज्जु के नीचे स्थित है। यह स्थान हमारी समस्त शारीरिक ऊर्जा एवं जैविक विद्युत (Bio-electricity) का संचयगृह है। यहीं से विद्युत का उत्पादन एवं प्रसरण होता है। इस केन्द्र के जागृत होने से अधोगामी विद्युत प्रवाह ऊर्ध्वगामी बनता है। इससे साधक की सभी क्रियाएँ सकारात्मक एवं ऊर्ध्वगामी बनती है। शक्ति केन्द्र कुण्डलिनी का स्थान है अत: इसके जागृत होने से साधना चरम लक्ष्य तक अवश्य पहुँचती है।

पेडु के नीचे जननेन्द्रिय का अधोवर्ती स्थान स्वास्थ्य केन्द्र है। यह काम ग्रन्थियों का प्रभावी क्षेत्र है इसलिए काम-वासना आदि की उत्पत्ति यहीं से होती है और हमारे समग्र स्वास्थ्य का नियंत्रण भी यहीं से होता है। स्वास्थ्य केन्द्र के स्वस्थ, सक्रिय एवं संतुलित रहने पर व्यक्ति स्वस्थ चित्त का अनुभव करता है। मानसिक एवं भावनात्मक स्वस्थता एवं विकार रहितता में भी यह केन्द्र सहायक बनता है। आत्मनियंत्रण की कला भी इसी केन्द्र से विकसित होती है।

शक्ति केन्द्र और स्वास्थ्य केन्द्र की निर्दोषता से सम्पूर्ण विकास सहज एवं सरल हो जाता है। ये दोनों मूल केन्द्र होने से यदि इनमें विकार हो जायें तो समस्त केन्द्र विकार ग्रस्त हो जाते हैं। यह केन्द्र संतुलित रहने से वृत्तियों का उभार ही नहीं होता, कामेच्छा आदि संतुलित रहती हैं तथा आन्तरिक ऊर्जा का ऊर्ध्वारोहण होता है।

3. तैजस केन्द्र

तैजस् केन्द्र नाभि के स्थान पर होता है। इस केन्द्र का सम्बन्ध एड्रीनल-पैन्क्रियाज ग्रंथि एवं मणिपुर चक्र से है। यह केन्द्र ग्रन्थियों एवं चक्रों के कार्य वहन में सहायक बनता है। योगाचार्यों के अनुसार इस केन्द्र के असंतुलन से क्रोध, लोभ, भय आदि वृत्तियाँ अभिव्यक्त होती हैं। इसके जागरण एवं संतुलन के द्वारा विकृत भावों को रोका जा सकता है। इसके माध्यम से ईर्ष्या, घृणा, भय, संघर्ष, तृष्णा आदि कुवृत्तियों को भी नियंत्रित रखा जा सकता है।

तैजस् केन्द्र अग्नि तत्त्व का स्थान है। इसके अधिक सक्रिय होने पर काम-वासना आदि वृत्तियों में उभार आ जाता है अत: इसको नियन्त्रित रखने से तेजस्विता बढ़ती है, शक्ति का संचय होता है तथा आवेगात्मक वृत्तियाँ शांत रहती हैं।

4. आनंद केन्द्र

आनंद केन्द्र का स्थान फुफ्फुस के नीचे हृदय के निकट में है। थायमस ग्रन्थि को प्रभावित करने हेतु यह एक महत्त्वपूर्ण चैतन्य केन्द्र है। आनंद केन्द्र के जागृत होने से साधक बाह्य जगत से मुक्त होकर भीतरी जगत में प्रवेश करता है। काम-वासना के परिशोधन में भी यह सहायक बनता है।

जब आनंद केन्द्र संतुलित रहता है तब काम वासना आदि वृत्तियाँ संतुलित रहती हैं, अध्यात्म की ओर रूझान बढ़ता है और हृदय सम्बन्धी रोगों का निवारण होता है।

आनंद केन्द्र के विकृत होने पर कामवृत्तियों की उग्रता बढ़ जाती है जिससे आलस, शुष्कता, निष्क्रियता आदि में वृद्धि होती है एवं अन्य कई विकार उत्पन्न होते हैं।

5. विशुद्धि केन्द्र

विशुद्धि केन्द्र का स्थान कंठ है। यह थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि का मुख्य क्षेत्र है। इस केन्द्र के प्रभावित होने से वाणी पर विशेष प्रभाव पड़ता है। यह उच्चतर चेतना एवं आत्मिक शक्तियों का विकास करता है। इसका मन के साथ गहरा सम्बन्ध है।

इस केन्द्र के जागृत होने पर जीवन की गति नियंत्रित रहती है। इससे जैविक क्षमता में अभिवृद्धि भी होती है तथा यह भावों के उदात्तीकरण एवं निर्मलीकरण में सहायक बनता है। इस केन्द्र की विशुद्धि से चित्त की एकाग्रता, स्थिरता एवं समाधि को प्राप्त किया जा सकता है।

विशुद्धि केन्द्र का असंतुलन जीवन के प्रत्येक क्रियाकलाप में अरुचि उत्पन्न करता है। इससे मानसिक एवं आध्यात्मिक चेतना समाप्त हो जाती है। शारीरिक स्तर पर चयापचय, पाचन आदि की क्रिया असंतुलित रहती है।

इस केन्द्र के नियोजन से शारीरिक क्रियाएँ सुचारू रूप से चलती है। आध्यात्मिक एवं मानसिक जगत सुंदर बनता है।

6. ब्रह्म केन्द्र

ब्रह्म केन्द्र का स्थान जिह्वा का अग्रभाग है। इस केन्द्र की जागृति एवं साधना ब्रह्मचर्य को पुष्ट करती है। हमारे ज्ञानेन्द्रियों का कामेन्द्रियों के साथ सम्बन्ध होता है। जिह्वा का सम्बन्ध जननेन्द्रिय एवं जल तत्त्व से है अतः जब जिह्वा को अधिक रस मिलता है तो कामुकता बढ़ती है।

ब्रह्म केन्द्र के संतुलित अथवा नियंत्रित रहने से संयम एवं ब्रह्मचर्य में वृद्धि होती है। जीभ पर रखा गया संयम काया-वासनाओं को शिथिल करता है। ब्रह्म केन्द्र पर नियंत्रण प्राप्त करने से मनवांछित कार्य की सिद्धि होती है।

इस केन्द्र का असंतुलन काम वासनाओं को उत्तेजित एवं वाणी को अनियंत्रित करता है।

7. प्राण केन्द्र

प्राण केन्द्र का स्थान नासाग्र है। यह अंग प्राण का मुख्य केन्द्र है और इसकी साधना से प्राण का ऊर्ध्वीकरण होता है।

प्राण केन्द्र की साधना से प्रकाश दर्शन, पूर्वाभास, दूराभास आदि हो सकता है। एकाग्रता की सिद्धि में यह केन्द्र अत्यन्त उपयोगी है। इससे संकल्प

शक्ति, मनोबल एवं आत्मविश्वास की वृद्धि होती है।

इस केन्द्र के निष्क्रिय होने पर प्राण बल कमजोर होता है जिससे जीवन का समग्र विकास अवरुद्ध हो जाता है।

8. चाक्षुष केन्द्र

चाक्षुष केन्द्र का स्थान चक्षु है। चित्त की एकाग्रता के लिए यह बहुत प्रभावशली केन्द्र है। इसके माध्यम से मस्तिष्किय विद्युत् से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो सकता है। यह जीवनशक्ति का केन्द्र है अत: इसके दीर्घकालीन अभ्यास से दीर्घायु की प्राप्ति हो सकती है।

9. अप्रमाद केन्द्र

अप्रमाद केन्द्र का स्थान कान और उसके आस-पास कनपट्टि का स्थान है। इस केन्द्र की साधना व्यसन मुक्ति में परम उपयोगी है।

रूस के वैज्ञानिकों के अनुसार अप्रमाद केन्द्र पर विद्युत् प्रवाह के प्रयोग से व्यसन मुक्ति में सफलता प्राप्त हो सकती है। इस केन्द्र पर नियंत्रण प्राप्त करने से अनेक बुराईयों का शमन होता है। स्नायुतंत्र चैतन्यशील बनता है तथा स्मृति का विकास होता है। इससे मूर्छा एवं भ्रम की स्थिति दूर होती है।

अप्रमाद केन्द्र की असक्रियता अथवा अतिसक्रियता व्यक्ति को सुस्त, आलसी एवं प्रमादी बनाती है।

10. दर्शन केन्द्र

दर्शन केन्द्र का स्थान हमारी दोनों भृकुटियों के बीच है। यह अति महत्त्वपूर्ण चैतन्य केन्द्र है। शरीर शास्त्रियों के अनुसार यह वीतराग प्राप्ति का सूचक केन्द्र है। इसे आज्ञा चक्र एवं तृतीय नेत्र भी कहा जाता है।

इस केन्द्र की सक्रियता से चैतन्य जागरण का मार्ग प्रशस्त होता है। चंचल वृत्तियाँ समाप्त होती हैं। मानसिक, वाचिक एवं भावनात्मक स्थिरता और एकाग्रता का विकास होता है। पूर्णाभास, अन्तर्दृष्टि एवं अतिन्द्रिय क्षमताओं का वर्धन होता है। विचार सकारात्मक, उच्च एवं आध्यात्मिक बनते हैं।

दर्शन केन्द्र का असंतुलन व्यक्ति को मानसिक एवं बौद्धिक रूप से विक्षिप्त और असंतुलित कर मस्तिष्क सम्बन्धी विकारों एवं रोगों को उत्पन्न करता है तथा पीयूष ग्रन्थि के कार्यों को भी प्रभावित करता है।

11. ज्योति केन्द्र

ज्योति केन्द्र ललाट के मध्य भाग में स्थित है। इस केन्द्र का सम्बन्ध पिनीयल ग्रन्थि से है। यह केन्द्र कषाय, नोकषाय, काम वासना, असंयम, आसक्ति आदि संज्ञाओं के उपशमन में विशेष सहायक बनता है।

ज्योति केन्द्र को नियंत्रित करने से क्रोधादि आवेश एवं आवेग शांत हो जाते हैं। ब्रह्मचर्य की साधना ऊर्ध्वता को प्राप्त करती है। पिच्युटरी एवं पिनीयल ग्रन्थि की सक्रियता बढ़ जाती है। एड्रीनल एवं गोनाड्स ग्रन्थियों पर नियंत्रण प्राप्त होता है। कामवृत्तियाँ अनुशासित होने से आन्तरिक आनंद की अनुभूति होती है।

इस केन्द्र के सुप्त रहने पर अपराधी मनोवृत्तियों को बल मिलता है। इससे काम, क्रोध, भय आदि संज्ञाएँ उत्पन्न होती हैं तथा मानसिक एवं भावनात्मक विकृतियाँ बढ़ती है।

इस केन्द्र की साधना करने वाला शुद्ध आत्मस्वरूप को प्राप्त कर कामी से अकामी बन जाता है।

12. शांति केन्द्र

शांति केन्द्र का स्थान मस्तिष्क का अग्रभाग माना गया है। यह चित्त शक्ति का भी एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। इसका सम्बन्ध भावधारा से है। सूक्ष्म शरीर से प्रवाहमान भावधारा मस्तिष्क के इसी भाग में आकर जुड़ती है।

आयुर्वेदाचार्यों ने इसे अधिपति मर्म स्थान कहा है। हठयोग के अनुसार यह ब्रह्मरन्ध्र या सहस्रार चक्र का स्थान है। इसके जागृत होने से परमोच्च अवस्था एवं आत्मानंद की प्राप्ति होती है तथा चैतन्य केन्द्रों का जागरण एवं हृदय परिवर्तन होता है।

शांति केन्द्र की असक्रियता अवचेतन मन में एवं अन्तःस्रावी ग्रन्थियों में विकार उत्पन्न करती है। इससे नाड़ी संस्थान के कार्यों में भी बाधा पहुँचती है।

13. ज्ञान केन्द्र

सिर का ऊपरी भाग (चोटी का स्थान) ज्ञान केन्द्र माना गया है। यह मानसिक ज्ञान का चैतन्य केन्द्र है। मन की सारी मनोवृत्तियाँ इसके विभिन्न कोष्ठों के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। यही स्थान बुद्धि, स्मृति, चिन्तनशक्ति आदि का मुख्य केन्द्र है।

ज्ञान केन्द्र के जागरण से मस्तिष्क विकसित होता है। चैतन्य शक्ति प्रबल बनती है। दिव्य ज्ञान का जागरण होता है। अतिन्द्रिय क्षमता का विकास होता है। पूर्वजन्म स्मृति, प्राण-अवबोध (Pre-cognition) आदि विशेष शक्तियाँ प्रकट होती हैं।

पाँच तत्त्वों पर मुद्रा के प्रभाव

हमारा शरीर मुख्य रूप से पंच महाभूतों का पिण्ड है। ये पाँच तत्त्व मिलकर हमारी समस्त क्रियाओं का संयोजन करते हैं। इनका भिन्न-भिन्न संयोजन शरीर की प्रकृति को निश्चित करता है। जब पाँच तत्त्व उचित मात्रा में बने रहते हैं तो शरीर की चयापचय क्रियाएँ भी सम्यक् प्रकार से होती है तथा शरीर स्वस्थ एवं तंदरूस्त रहता है।

पारिवारिक संस्कारों, वंशानुगत परम्परा, आहारचर्या, जीवनशैली, वातावरण आदि के कारण तत्त्वों की मूल अवस्था में परिवर्तन होता रहता है। इससे शारीरिक क्रियाओं में विक्षेप एवं विकृति आ जाती है और तत्त्वों की स्वभाव च्युति शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक गतिविधियों को प्रभावित करती है। इन तत्त्वों के मूलस्थिति में रहने पर शरीर विशिष्ट शक्ति प्राप्त करता है एवं मस्तिष्क व्यवस्थित रूप में कार्य करता है।

मुद्रा प्रयोग के द्वारा शरीरस्थ पाँचों तत्त्वों का संतुलन किया जा सकता है। शरीरशास्त्रियों एवं आयुर्वेदाचार्यों ने पाँच अंगुलियों में पाँचों तत्त्वों का प्रतिपादन किया है। जिसके शरीर में जिस तत्त्व की कमी या असंतुलन हो वह उस तत्त्व से सम्बन्धित मुद्रा का प्रयोग करके उस कमी की परिपूर्ति कर सकता है।

पृथ्वी आदि पाँचों तत्त्व हमारे शरीर की विद्युत शक्ति का नियंत्रण करते हैं। पश्चिमी वैज्ञानिकों ने भी इस विद्युत को जीव विद्युत् (Bioelectricity) अथवा जीवन शक्ति (Bioenergy) के रूप में स्वीकृत किया है। यह प्राण शक्ति जीवन बैटरी के रूप में हमारे शरीर में गर्भाधान के समय स्थापित हो जाती है जो चैतन्य रूपी विद्युत् प्रवाह को उत्पन्न करती है। मुद्रा आदि यौगिक साधनाओं के द्वारा यह विद्युत् प्रवाह सक्रिय रहता है।

मनुष्य की शारीरिक क्रियाओं में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश ये पाँचों तत्त्व निम्न प्रकार से सहायक बनते हैं–

1. पृथ्वी तत्त्व

शरीर का स्थूल ढांचा, अस्थि, मांसपिण्ड आदि पृथ्वी तत्त्व का रूप है। इस तत्त्व की कमी से शरीर के सभी जैविक बल निष्क्रिय हो जाते हैं। उन सभी को सक्रिय रखने के लिए अधिक शक्ति की जरूरत पड़ती है जो कि पृथ्वी तत्त्व से प्राप्त होती है। अधिक वजन वाले, मांसल, चरबीयुक्त व्यक्ति इस तत्त्व के आधिपत्य के उदाहरण हैं। ऐसे लोग निश्चिन्त स्वभाव वाले होते हैं। कुछ हासिल करने की उत्सुकता उनमें नहीं रहती, वे संघर्ष से दूर भागते हैं तथा सुस्त एवं आलसी प्रवृत्ति वाले होते हैं।

इस तत्त्व के त्रुटिपूर्ण रहने से व्यक्ति स्वार्थी बनता है तथा उसके विचारों आदि में शुष्कता एवं आग्रह बढ़ जाता है।

पृथ्वी एक तटस्थ तत्त्व है। इसके संतुलित रहने से व्यक्ति तटस्थ विचारों वाला होता है और उसकी विचलित अवस्था दूर होती है। इस तत्त्व के नियमन से शरीर की स्थूलता, हड्डी, मांस, आदि नियंत्रित रहते हैं।

2. जल तत्त्व

जल जीवन तत्त्व है। हमारे शरीर में 70% से अधिक जल तत्त्व का परिमाण है। यह तत्त्व अपने स्वभाव के अनुसार ही शीतलता प्रदान करता है तथा जीवन प्रवाह को सुरक्षित रखता है। शरीर के तापमान को नियंत्रित एवं रूधिर आदि की कार्य पद्धति को संतुलित रखने में इसका महत्त्वपूर्ण योगदान है।

इस तत्त्व के संतुलित रहने से मूत्रपिंड, प्रजनन अंग, लसिका ग्रन्थियों आदि का स्राव संतुलित रहता है। यह प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास करता है। यौन ग्रन्थियों, चेताकोषों, रजवीर्य, अस्थिमज्जा आदि को उत्पन्न करता है तथा शरीर को स्वस्थ रखने में मुख्य सहयोगी बनता है। इस तत्त्व के असंतुलन से शरीर में जल तत्त्व की कमी आदि हो जाती है जिससे रक्त वाहिनियों, मूत्राशय आदि में विकार उत्पन्न हो सकते हैं। भावों के प्रवाह में भी यह रूकावट उत्पन्न करता है।

3. अग्नि तत्त्व

यह तत्त्व शरीर में उत्पन्न अग्नि द्वारा आहार का पाचन कर शरीर को शक्ति प्रदान करता है। इसके जठर, तिल्ली, यकृत, स्वादुपिंड, एड्रीनल आदि

मुख्य केन्द्र हैं। अग्नि तत्त्व संतुलित एवं सक्रिय रहने पर शरीर में अग्निरस, पित्तरस, पाचकरस आदि की उत्पत्ति होती है। यह शरीर के तापमान को बनाए रखते हुए सभी अंगों को सक्रिय रखता है। इससे रूधिर, मांस, चर्बी, अस्थि आदि के निर्माण में सहायता प्राप्त होती है। यह स्नायुतंत्र को स्वस्थ एवं चेहरे को सुंदरता प्रदान करता हुआ रोग प्रतिरोधक तत्त्वों को उत्पन्न करने में भी सहायता प्रदान करता है।

इस तत्त्व का असंतुलन पाचन सम्बन्धी विकारों का मूलभूत कारण है। इससे एनीमिया, पीलिया, बेहोशी, मस्तिष्क सम्बन्धी अव्यवस्था, दृष्टि विकार, मोतिया बिंद, एसिडिटी आदि शारीरिक समस्याएँ उत्पन्न होती है और आन्तरिक बल घटता है।

यह तत्त्व विचार शक्ति में सहायक एवं मस्तिष्क शक्ति को विकसित करता है। इससे शारीरिक तेज एवं कांति में वृद्धि होती है तथा यह ऊर्जा के जागरण एवं ऊर्ध्वीकरण में सहायक बनता है।

4. वायु तत्त्व

वायु तत्त्व को जीवन कहा गया है। यह एक ऐसी शक्ति है जो शरीर के प्रत्येक भाग का संचालन करती है। इसके छाती, फेफड़े, हृदय, थायमस ग्रन्थि आदि मुख्य केन्द्र हैं।

वायु तत्त्व शरीर के प्रमुख सहकारी एवं संरक्षक बल को उत्पन्न करने में सहयोगी बनता है। यह हृदय एवं रूधिर अभिसरण की क्रिया को नियंत्रित और शरीर को संतुलित बनाए रखता है। इससे श्वसन एवं मलमूत्र की गति में भी मदद मिलती है।

इस तत्त्व के समस्थिति में रहने पर वचन शक्ति, मानसिक शक्ति एवं स्मरण शक्ति में वृद्धि होती है। इससे स्व नियंत्रण में भी विशेष सहयोग प्राप्त होता है।

इसके असंतुलन से हृदय रोग, वायु विकार, फेफड़ें आदि के विकार उत्पन्न होते हैं तथा विचारों में संकीर्णता एवं असहकारिता आदि भावों का जन्म होता है।

5. आकाश तत्त्व

यह तत्त्व सम्पूर्ण शरीर में हवा, रक्त, जल आदि तत्त्वों के वहन या

संचरण में सहयोग करता है। इस तत्त्व के संतुलित रहने से शरीरस्थ विष द्रव्यों का निष्कासन सहजतया हो जाता है जिससे शरीर स्वस्थ एवं तंदुरुस्त रहने के साथ-साथ थाइरॉईड, पेराथाइरॉईड, टान्सिल, लार रस आदि पर नियंत्रण रहता है। इससे मस्तिष्क सम्बन्धी विकार भी दूर होते हैं।

इस तत्त्व के असंतुलन से हार्टअटैक, लकवा, मूर्च्छा आदि अनेक प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न होती है। पीयूष ग्रन्थि एवं पीनियल ग्रन्थि के विकारों का मुख्य कारण इसी तत्त्व का असंतुलन है। यह तत्त्व सम्यक् दिशा में गतिशील हो तो मानसिक शक्तियों का पोषण होता है तथा अध्यात्म मार्ग की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार उपरोक्त वर्णन से यह सुस्पष्ट है कि प्रत्येक मुद्रा शरीर के किसी न किसी शक्तिमान चक्रों एवं केन्द्रों आदि को निश्चित रूप से प्रभावित कर उन्हें संतुलित करती है। इससे तद्स्थानीय रोगों का शमन एवं तज्जनित गुणों का प्रगटन होता है।

मुद्रा प्रयोग के नियम-उपनियम

यहाँ मुद्रा का तात्पर्य हाथ की विभिन्न आकृतियों से है क्योंकि प्रायः मुद्राएँ हाथों द्वारा ही की जाती है। कहा जाता है जैसे ब्रह्माण्ड पाँच तत्त्वों से निर्मित है वैसे ही प्राणवान शरीर भी पाँच तत्त्वों से बना हुआ है। इन पाँच महाभूत तत्त्वों में अग्नि, वायु, आकाश, पृथ्वी और जल की गणना होती है। यौगिक पुरुषों के अनुसार हमारी पाँचों अंगुलियाँ इन तत्त्वों का प्रतिनिधित्व करती हैं।

स्पष्ट है कि हाथ की अंगुलियों से की जाने वाली मुद्राओं के माध्यम से शरीर के आवश्यक तत्त्वों का प्रभाव घटा-बढ़ा सकते हैं। जिससे शरीर में इन तत्त्वों का संतुलन बना रहता है तथा शरीर के साथ-साथ बुद्धि, मन एवं चेतना के दोषों का परिहार और गुणों का उत्सर्जन होता है।

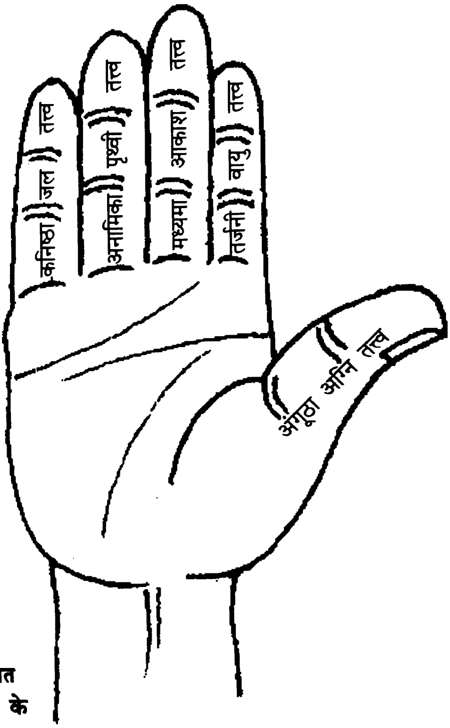

प्रचलित मान्यता के अनुसार

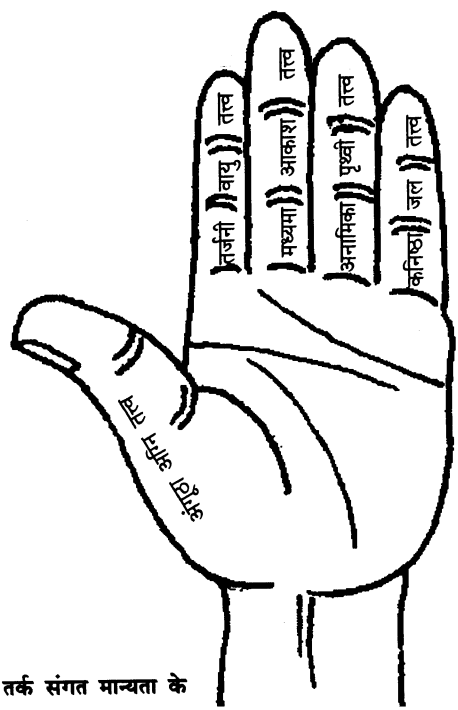

तर्क संगत मान्यता के अनसार..

अंगुलियों के नाम	**तत्त्वों के नाम**
अंगूठा (Thumb)	अग्नि तत्त्व (Fire-sun)
तर्जनी (Index)	वायु तत्त्व (Air-wind)
मध्यमा (Middle)	आकाश तत्त्व (Ether-space)
अनामिका (Ring)	पृथ्वी तत्त्व (Earth)
कनिष्ठिका (Little)	जल तत्त्व (Water)

मुद्रा की आवश्यक जानकारी

1. सामान्यतया मनुष्य पाँच तत्त्वों के संतुलन से स्वस्थ रह सकता है। ऋषि-महर्षियों द्वारा निर्दिष्ट एवं अनुभवियों द्वारा उपदर्शित मुद्राएँ बौद्धिक, मानसिक एवं दैहिक संतुलन की अपेक्षा से है अत: इन मुद्राओं का प्रयोग करने से पूर्व उसके प्रति दृढ़ विश्वास एवं अटूट श्रद्धा अवश्य होनी चाहिए।
2. शारीरिक संरचना के अनुसार अंगूठे के अग्रभाग पर दूसरी अंगुली के अग्रभाग को दबाने से, उस अंगुली का जो तत्त्व है वह बढ़ जाता है तथा अंगुली के अग्रभाग को अंगूठे के मूल पर लगाने/दबाने से उस अंगुली का जो तत्त्व है उसमें कमी आ जाती है।
3. मुद्रा करते समय अंगुली और अंगूठे का स्पर्श सहज होना चाहिए। अंगूठे से अंगुली को सहज दबाव देना चाहिए और शेष अंगुलियाँ अमुक-अमुक मुद्रा के नियमानुसार सीधी या एक-दूसरे से सटी रहनी चाहिए। हथेली का भाग मुद्रा नियम के अनुरूप रहना चाहिए। यदि अंगुलियाँ पहली बार में सही रूप से सीधी-टेढ़ी या सटी हुई न रह पायें तो आरामपूर्वक जितना बन सके, मुद्रा को यथारूप बनाने की कोशिश करें। तदनन्तर अभ्यास द्वारा धीरे-धीरे सही मुद्रा भी बन जाती है।
4. मुद्रा प्रयोग दोनों हाथों से करें, क्योंकि दायें हाथ की मुद्रा करने से शरीर के बाएँ भाग पर असर होता है और बाएँ हाथ की मुद्रा करने से शरीर के दायें भाग पर असर होता है। इस तरह शरीर और मन हर तरह से संतुलित रहता है।
5. हर कोई स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध, रोगी-निरोगी मुद्राओं का प्रयोग कर सकता है।

6. प्रत्येक व्यक्ति के स्वयं के लिए जो भी मुद्रा उपयोगी हो, उस मुद्रा का प्रयोग नियमत: 48 मिनट तक करना चाहिए। अभ्यास के द्वारा समय मर्यादा बढ़ाई जा सकती है। यदि कोई मुद्रा लंबे समय तक एक साथ न हो सके तो सुबह-शाम 15-15 मिनट करके 30 मिनट तक तो अवश्य करनी चाहिए।
7. भोजन के तुरन्त बाद 30 मिनट तक किसी भी मुद्रा को नहीं करें। केवल गैस या अफरा दूर करने के लिए वायु मुद्रा की जा सकती है।
8. प्राण मुद्रा, अपान मुद्रा, पृथ्वी मुद्रा और ज्ञान मुद्रा को साधक इच्छानुसार दीर्घ समय तक कर सकते हैं, किन्तु वायु मुद्रा, शून्य मुद्रा, लिंग मुद्रा वगैरह अन्य मुद्राएँ व्याधि दूर न हों तब तक ही करनी चाहिए।
9. कोई अन्य चिकित्सा या औषधि का सेवन कर रहे हों, तो उस समय भी मुद्रा चिकित्सा का प्रयोग कर सकते हैं।
10. मुद्राओं में अपानवायु रोग मुक्ति के लिए श्रेष्ठकारी है। इस मुद्रा को हृदय पर स्पर्शित करते ही किसी भी रोग में तत्काल फायदा होता है इसलिए डाक्टरों/वैद्यों के पास जाने से पूर्व रोगी को यह मुद्रा अवश्य कर लेनी चाहिए। उसे तात्कालिक राहत का अहसास होता है।
11. शरीर, मन और चेतना को स्वस्थ रखने के लिए प्राणवायु एवं अपानवायु को संतुलित रखना अत्यन्त जरूरी है। यह संतुलन प्राण मुद्रा एवं अपानमुद्रा के प्रयोग से ही संभव है। इन मुद्राओं के प्रयोग से नाड़ी शुद्धि और शरीर रोग रहित बनता है इसलिए ये मुद्राएँ निश्चित करनी चाहिए।
12. अनेकों मुद्राएँ चैतसिक, मानसिक, आध्यात्मिक और भावनात्मक विकास के उद्देश्य से की जाती हैं। इन मुद्राओं को निर्धारित दिशा, आसन, मंत्र एवं समयानुसार करने पर अधिक लाभदायी होती हैं।
13. मुद्रा प्रयोग से पंच तत्त्वों में परिवर्तन, विघटन, प्रत्यावर्तन, अभिवर्धन होता रहता है परिणामत: तत्त्वों में सामंजस्य बना रहता है।
14. कुछ मुद्राएँ निश्चित यौगिक आसन में बैठकर की जाती हैं। इनमें हठयोग सम्बन्धी मुद्राएँ एवं पूजोपासना सम्बन्धी मुद्राएँ मुख्य हैं।
    रोग शमन में उपयोगी योग तत्त्व मुद्रा विज्ञान की बहुत सी मुद्राएँ चलते-फिरते, सोते-जागते किसी भी स्थिति में की जा सकती हैं।

अधिकांश मुद्राओं का प्रयोग आवश्यक होने पर 45 से 48 मिनट करना चाहिए। यदि किसी मुद्रा को एक साथ न कर पायें तो 15-15 मिनट या 16-16 मिनट में विभाजित कर तीन बार में पूर्ण कर सकते हैं।

15. मुद्राएँ भिन्न-भिन्न हेतुओं से विभिन्न आसनों में की जाती है। हठयोग की मुद्राएँ बैठकर की जाती हैं किन्तु कुछ मुद्राओं में लेटना भी पड़ता है। हठयोग की मुद्राओं को नियमित रूप में कम से कम एक मिनिट से तीस मिनिट तक कर सकते हैं।

नाट्य परम्परा की मुद्राएँ अधिकांशत: भाव प्रदर्शन के उद्देश्य से प्रयुक्त होती हैं अत: विधि नियम के अनुसार बैठकर या खड़े होकर की जाती है। इनमें समय की कोई निश्चित अवधि नहीं है।

योग तत्त्व मुद्रा विज्ञान की मुद्राएँ अनन्त हैं। इस श्रेणि की मुद्राएँ प्राय: हाथ की पाँच अंगुलियों से ही बनती हैं किन्तु कुछ मुद्राओं में दोनों हाथों के साथ-साथ सम्पूर्ण शरीर का प्रयोग भी किया जाता है। जैसे ज्ञान मुद्रा, वैराग्य मुद्रा, अभय मुद्रा, ध्यान मुद्रा आदि में समग्र शरीर का उपयोग होता है। साधारण ज्ञान मुद्रा चलते-फिरते, उठते-बैठते अथवा विभिन्न कार्य करते हुए एक हाथ से या दोनों हाथों से भी की जा सकती है किन्तु मुख्य ज्ञान मुद्रा किसी आसन में बैठकर ही की जाती है।

रोग निवारक मुद्राएँ एक साथ दो, तीन, चार भी लगातर की जा सकती है। चाहें तो हर सैकेण्ड के बाद मुद्रा परिवर्तित कर सकते हैं। आवश्यकता होने पर बार-बार बदलते हुए कुछ अधिक समय भी मुद्राएँ कर सकते हैं।

रोग दूर करने वाली साधारण मुद्राओं में किसी मुद्रा को पहले तथा बाद में करने का कोई नियम नहीं है। जिस मुद्रा की आवश्यकता पहले समझें उसे इच्छानुसार कर सकते हैं।

हिन्दु उपासना में गायत्री मुद्राओं का प्रमुख स्थान माना गया है। इन मुद्राओं को त्रिकाल सन्ध्या में करने का प्रावधान है। इन्हें धीरे-धीरे भी कर सकते हैं और शीघ्रता के साथ भी इनका प्रयोग किया जा सकता है।

मुद्रा अभ्यासी साधकों के लिए आवश्यक है कि वे साधना काल के दौरान आत्मा, मन और शरीर से पूरी तरह शान्त और पवित्र हों। ऐसी स्थिति में मुद्राओं का पूर्ण लाभ प्राप्त होता है।

मुद्राएँ करते समय अतिरिक्त अन्य अंगुलियों को सीधा रखना चाहिए। मुद्राएँ उचित प्रकार से करने पर ही अपना प्रभाव दिखाती हैं।

मुद्रा चिकित्सा को अन्य चिकित्सा प्रणालियों जैसे ऐलोपैथी या होम्योपैथी के साथ भी किया जा सकता है। इससे अन्य चिकित्सा प्रणालियों में किसी भी प्रकार से बाधा नहीं पहुँचती वरन् लाभ ही होता है।

प्राय: मुद्राओं का प्रभाव अतिशीघ्र होता है परन्तु पुराने रोगों के निवारण हेतु मुद्राएँ लम्बे समय तक करनी चाहिए।

किसी भी क्रिया को करने से पूर्व उसके लाभ-हानि, विधि-अविधि के विषय में सम्यक जानकारी हो तो उसका प्रयोग शीघ्र परिणामी होता है। मुद्रा साधना यद्यपि एक शारीरिक क्रिया है परन्तु इसका प्रभाव साधक मनुष्य की सूक्ष्म तन्त्र प्रणालियों पर भी देखा जाता है। यही तन्त्र मनुष्य के स्वभाव, आचरण एवं भावजगत को संतुलित रखते हैं। इस अध्याय के माध्यम से साधक को मुद्रा साधना के उन्हीं पक्षों से परिचित करवाते हुए मुद्रा प्रयोग में अधिक जागरूक एवं सक्रिय बनाने का प्रयास किया है। इससे साधक स्वयं अपने रोगों के लक्षण जानकर किस चक्र या ग्रन्थि को नियंत्रित करना है यह जान सकेगा एवं तत्सम्बन्धी मुद्राओं सम्यक विधिपूर्वक उपयोग करके उनके सुपरिणाम प्राप्त कर सकेगा।

●

अध्याय-2

सामान्य अभ्यास साध्य यौगिक मुद्राओं का स्वरूप एवं उनके सुप्रभाव

मुद्रा विज्ञान, योग विज्ञान का अति सूक्ष्म अंग है। शुद्ध विज्ञान पर आधारित यह विद्या योग साधक ऋषि-महर्षियों एवं अतिशय युक्त पुरुषों की अपूर्व देन है। योग साधना के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए राजमार्ग है।

मानव शरीर प्रकृति की सर्वोत्तम कृति है। यौगिक और प्राकृतिक दृष्टि से इसके भीतर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का समावेश हो जाता है। हाथ की 5 अंगुलियों में पाँच तत्त्व और सात चक्रों का समावेश हो जाता है। हर अंगुली से सूक्ष्म विद्युत प्रवाह निकलता है। यौगिक साधना के द्वारा इस प्रवाह को बढ़ाया जा सकता है तथा इसके अनेक आश्चर्यकारी प्रभाव भी देखे जाते हैं।

मुद्रा प्रयोग के द्वारा सहज रूप से शारीरिक प्रकृति को नियन्त्रित रखा जा सकता है। इसी कारण योग साधकों ने आसन, प्राणायाम आदि क्रियाओं में मुद्रा प्रयोग को विशेष महत्त्व दिया है। कई मुद्राएँ इतनी सरल होती हैं कि उन्हें लघु प्रयासों के द्वारा ही सीखा जा सकता है। ऐसी ही कुछ यौगिक मुद्राओं का स्वरूप एवं उसके परिणाम इस प्रकार हैं।

1. चिन्मुद्रा

चिन् का अर्थ है चेतना। चेतन तत्त्व की ओर उन्मुख करने वाली होने के कारण इसे चिन्मुद्रा कहा जाता है। इस मुद्रा का प्रयोजन बाह्य चेतना से आभ्यन्तर चेतना में प्रवेश करना है। संसारी प्राणी की चेतना प्रतिसमय बाह्य जगत में शाश्वत सुख ढूंढती रहती है, क्षणिक पदार्थों के संयोग में सुखानुभूति की कल्पना करती रहती है, स्वार्थमूलक सम्बन्धों में आत्मशक्ति का विनाश करती रहती है इस तरह की भ्रमपूर्ण प्रवृत्तियों से छुटकारा पाने हेतु सबल माध्यम है चिन्मुद्रा।

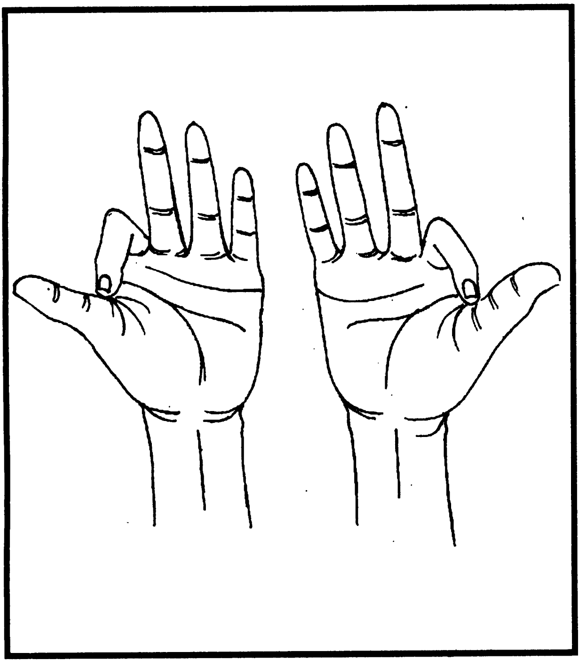

चिन्मुद्रा

विधि

यह मुद्रा किंचित अन्तर के साथ ज्ञान मुद्रा से मिलती-जुलती ही है। इस मुद्रा के सम्बन्ध में दो तरह की विधियाँ प्रचलित है। प्रथम विधि के अनुसार तर्जनी अंगुली के अग्रभाग को अंगूठे के मूल स्थान से स्पर्शित करें।

◆ द्वितीय विधि के अनुसार तर्जनी अंगुली के अग्रभाग को अंगूठे के अग्रभाग से संयुक्त करें।

• उसके पश्चात शेष तीनों अंगुलियों को शरीर से दूर स्वयं की ओर सीधी एवं हथेली को ऊर्ध्वमुखी रखते हुए हाथों को घुटनों पर रखना चिन्मुद्रा है।[1]

निर्देश

1. ज्ञान मुद्रा की भाँति हाथों को शिथिल रखें।
2. मुद्राभ्यास के समय ध्यान उपयोगी अनुकूल आसन में बैठें।
3. मुद्रा का उचित परिणाम हासिल करने के लिए 15 से 30 मिनट तक नियमित प्रयोग करना चाहिए।

सुपरिणाम

● इस मुद्रा का अभ्यासी साधक निम्न चक्रों आदि का भेदन कर उससे प्राप्त होने वाली शक्तियों को स्वयं में प्रकट कर लेता है।

चक्र– अनाहत, विशुद्धि एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** थायमस, थायरॉइड, पेराथायरॉइड एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** आनंद, विशुद्धि एवं ज्योति केन्द्र।

● इससे एलर्जी, दमा, गठिया, बहरापन, मस्तिष्क की समस्या, गले, मुंह, कंठ, कंधे, कान आदि के विकार, कमजोरी, हृदय रोग, छाती में दर्द आदि शारीरिक समस्याओं का शमन होता है।

● इस मुद्रा से अनुत्साह, उन्मत्तता, अवसाद, निराशा, पागलपन, असन्तुष्टि, सुस्ती, लज्जा, निर्ममता, धुम्रपान, निष्क्रियता, शंकालु वृत्ति, भावनात्मक अस्थिरता, लालसा, असृजनशीलता आदि भावनात्मक समस्याओं का निवारण होता है।

● इस मुद्राभ्यास के द्वारा नाड़ियों के प्रवाह को विपरीत करने से दीर्घ अवधि तक स्थिर अवस्था में रहने की क्षमता का जागरण होता है।

● तर्जनी एवं अंगूठे का संयोग तथा मध्यमा, अनामिका एवं कनिष्ठिका का अलगाव प्रकृति के त्रिगुणत्व पर जीवात्मा का ऐक्य भाव प्रस्तुत करता है। परिणामत: चेतन द्रव्य अचेतनात्मक सत्ता पर विजय पा लेती है शेष परिणाम ज्ञान मुद्रा के समान जानने चाहिए।

2. चिन्मय मुद्रा

चिन्मय का अर्थ होता है अभिव्यक्त चेतना। यह दृश्यमान जगत जितने भी रूपों में दिखाई दे रहा है वह चेतनात्मक शक्ति का ही प्रकट रूप है, बाह्य रूप हैं। पृथ्वी, पानी, वायु, वनस्पति, पशु, पक्षी आदि चेतन सत्ता की ही पर्यायें हैं तथा मकान, वस्त्र, आभूषण, पैसा, रूप, शरीर आदि चेतना शक्ति से पृथक हुई रूपान्तरित अचेतन पर्यायें हैं।

प्रत्येक चेतन सत्तात्मक द्रव्य अनन्त शक्ति का पुंज है। अज्ञानदशा, भ्रमदशा में वह शक्ति अधिकांशत: आवृत्त रहती है तथा जितने अंशों में अनावृत्त रहती है वह भी सम्यक पुरुषार्थ के अभाव में व्यर्थ चली जाती है। इस मुद्रा का अभ्यास आवृत्त शक्ति को उद्घाटित और अनावृत्त शक्ति का सदुपयोग करने के उद्देश्य से किया जाता है।

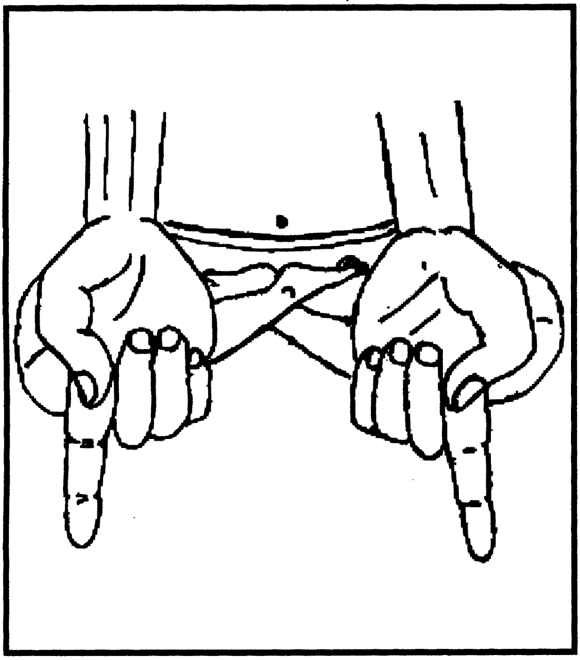

चिन्मय मुद्रा

विधि

◆ किसी भी ध्यान के एक आसन में बैठ जायें। फिर ज्ञान मुद्रा की भाँति ही तर्जनी अंगुली के अग्रभाग को अंगूठे के अग्रभाग से अथवा मूल स्थान से हल्के दबाव के साथ स्पर्शित करें।

◆ फिर शेष तीनों अंगुलियों को इस तरह मोड़ें कि उनके अग्रभाग हथेली का स्पर्श करें अथवा हथेली को इंगित करें। फिर इस आकार में रही हुई हथेलियों को ऊर्ध्वमुख या अधोमुख रूप से घुटनों पर रखना चिन्मय मुद्रा है।[2]

निर्देश

1. इस मुद्रा का प्रयोग वज्रासन अथवा वीरासन जैसे आसनों के साथ करें।
2. यदि वज्रासन में बैठकर मुद्राभ्यास करना चाहें तो हथेलियों को घुटनों के बजाय जांघों पर रखें।
   यदि वीरासन में अभ्यास करने के इच्छुक हो तो हथेलियों को एक दूसरे के ऊपर अथवा पैरों पर रखें।
3. इस मुद्रा का प्रयोग 15 से 20 मिनट तक अवश्य करें।

सुपरिणाम

- चिन्मय मुद्रा के प्रतीकात्मक अर्थ पर विचार किया जाए तो इस मुद्रा में मुड़ी हुई चार अंगुलियाँ जगत के सीमित पक्ष को उजागर करती हुई चेतना को स्वयं के विराट् स्वरूप का बोध करवाती है। बंधी हुई मुट्ठी भौतिक जगत की संकीर्णता एवं अचेतनता को दर्शाती हुई स्वभाव में स्थिर रहने का संकेत करती है। सामने की ओर इंगित करता हुआ अंगूठा चेतन मन को भावातीत स्तर पर पहुंचने का निर्देश करता है। तर्जनी एवं अंगूठे के मध्य रहा हुआ संस्पर्श यह उजागर करता है कि अभिव्यक्त चेतना (संसारी आत्मा) और अनभिव्यक्त चेतना (मुक्त आत्मा) अभिन्न है।

- चिन्मुद्रा की मूल्यवत्ता के विषय में कहा जाता है कि मुड़ी हुई अंगुलियाँ शारीरिक, प्राणिक एवं मानसिक पक्षों का प्रतिनिधित्व करती हुई इन स्थानों को लाभ पहुँचाती है। अंगूठा का संकेत इस चेतना को सर्वव्यापी सत्ता से सम्पर्क स्थापित करने की क्षमता का अहसास कराता हुआ दुर्बल मन को सबल बनाता है।

- इस मुद्रा को योग मुद्रा का प्रतीक भी माना गया है। इस अपेक्षा से चार अंगुलियाँ चैतन्यता या पूर्ण सजगता के क्रमिक विकास को दर्शाती हुई आत्म भावों को तद्रूप प्रवृत्ति करने के लिए प्रेरित करती है।

- सामान्यतया यह मुद्रा निम्न चक्र आदि के दोषों का शमन कर उन्हें सही दिशा की ओर प्रवृत्त करती है। इससे साधक दीर्घायु प्राप्त करता है।

चक्र– मूलाधार, मणिपुर एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी, अग्नि एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति, तैजस एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, पांव, पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, स्नायु तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, निचला मस्तिष्क आदि।

3. उन्मनी मुद्रा

उन्मनी का शाब्दिक अर्थ है- मन रहित अथवा विचार रहित होना। मुद्रा का अर्थ है- मानसिक वृत्तियों की साहजिक चेष्टा। उन्मनी मुद्रा एक साधना मूलक प्रयोग है जिसमें मन विचार रहित अवस्था में पहुँच जाता है। इस दृष्टि से मुद्रा को निर्विचार ध्यान की अवस्था भी कहा जा सकता है। उन्मनी मुद्रा का प्रयोजन भूत लक्ष्य भी निर्विकल्प अवस्था (मोक्षअवस्था) की उपलब्धि है।

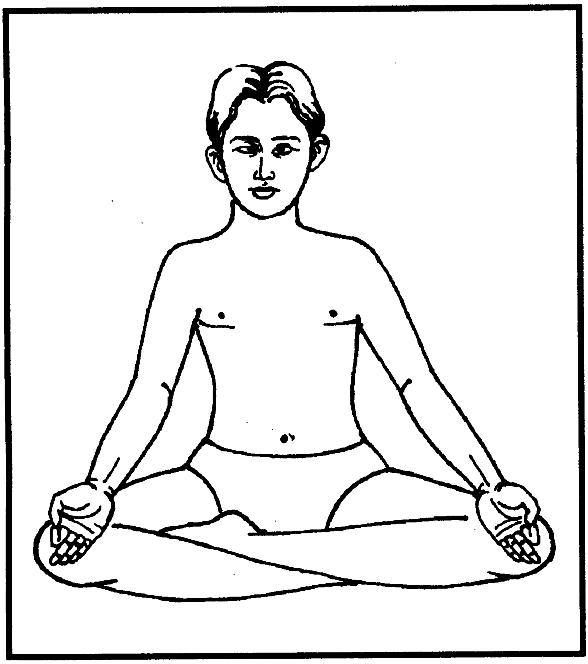

उन्मनी मुद्रा-1

विधि

किसी भी आरामदायक आसन में बैठ जायें। सहज रूप से आँखे पूरी खुली रहें। आपकी सजगता (ध्यान) बिन्दू (चोटी का मध्यभाग अथवा तालु स्थान के ऊर्ध्वभाग) पर रहे। तदनन्तर जैसे-जैसे आपकी सजगता आज्ञा चक्र, विशुद्धि चक्र, अनाहत चक्र, मणिपुर चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र और मूलाधार चक्रों पर अवरोहण (ऊपर से नीचे की ओर आयें) करें वैसे-वैसे अपनी आँखों को शनैः शनैः बन्द करते जायें। जब आपकी सजगता मूलाधार चक्र पर पहुँच जाये

तो आँखें या तो पूर्णत: बन्द होनी चाहिए अथवा किंचित खुली रहनी चाहिए। आप स्वानुभव द्वारा इनमें से किसी एक तरीके को अपनाएँ।[3]

आरामदायक अवस्था तक अपनी चेतना को मूलाधार चक्र पर केन्द्रित करके रखना उन्मनी मुद्रा है।

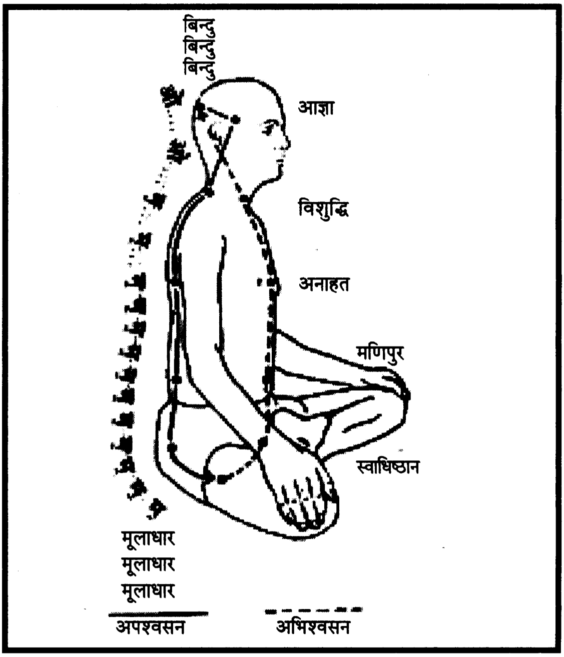

उन्मनी मुद्रा-2

निर्देश

1. किसी योग्य गुरु के निर्देशन में इस प्रक्रिया का अभ्यास करें।
2. यह अभ्यास किसी भी समय अनुकूल अवधि तक किया जा सकता है। एक बार में कम से कम 10 आवृत्ति होनी चाहिए।
3. इस प्रक्रिया में आँखें खुली रहने पर भी आपकी चेतना चक्रों एवं सूक्ष्म आरोहण मार्ग में लगी रहें। वे बाहर के किसी भी दृश्य को न देखें। यही उन्मनी मुद्रा की यथार्थ स्थिति है।
4. इस मुद्रा के अभ्यास में अधिक बल न लगाये। जितना सहज और स्वाभाविक रूप से हो उतना ही करें।

5. यह अभ्यास शारीरिक रूप से कम एवं मानसिक रूप से ज्यादा किया जाता है। इसमें भले ही आँखों की पलके आंशिक रूप से बन्द रखी जाती हैं फिर भी इस प्रक्रिया को मानसिक रूप से अनुभव करना होता है वही महत्त्वपूर्ण है।[4]

सुपरिणाम

• उन्मनी मुद्रा वह अवस्था है जिसमें मन-अमन की ओर, योग-अयोग की ओर, देह-विदेह की ओर, वचन-मौन की ओर, इन्द्रियाँ-अतीन्द्रिय की ओर, जीव-शिव की ओर,नर-नारायण की ओर अग्रसर बनता है।

• उन्मनी मुद्राभ्यस्त व्यक्ति सांसारिक कार्यों को करते हुए भी निर्विचार स्थिति में रह सकता है। मन क्रियाशील रहने पर भी उसके आन्तरिक विचारों में सामंजस्य रहता है। उसके अन्दर सभी प्रकार के विश्लेषण, परस्पर विरोध और संघर्ष का अभाव रहता है। वह मानसिक क्रियाओं के प्रति सचेत रहते हुए भी कहीं पर आसक्त नहीं रहता। वह खुली आँखों से दृश्यमान जगत को देखता हुआ भी उनसे ममत्त्व नहीं रखता है।

• हठयोग प्रदीपिका में उन्मनी मुद्रा के महत्त्व को उजागर करते हुए कहा गया है कि जो अपने मन को आलम्बन रहित करके कोई चिन्तन नहीं करता, उस विचार शून्यता की अवस्था में घर के अन्दर और बाहर समान रूप से व्याप्त आकाश के सदृश उसका मन अचल और स्थिर रहता है।[5]

इसी विषय में आगे कहते हैं कि इस जगत में जड़ और चेतन जो कुछ प्रपंचात्मक दृश्य है, वे सभी मन की कल्पना हैं। वह एक भ्रमपूर्ण अज्ञान का आवरण है। जिस समय मन में उन्मनी अवस्था आती है उस समय सभी प्रकार के द्वन्द्व और अविद्या के प्रभाव समाप्त हो जाते हैं।[6]

• उन्मनी मुद्रा की सर्वाधिक उपादेयता यह भी मानी जा सकती है कि उस साधक में संसार के समस्त विषयों की आसक्तियाँ और उनके बन्धन दूर हो जाते हैं। वह शीघ्र ही निर्विचार एवं शून्यता की स्थिति के निकट पहुँच जाता है।

इस मुद्रा का मुख्य प्रभाव निम्न चक्रों आदि पर पड़ता है जिससे अभ्यासी साधक स्वस्थ एवं तनाव रहित जीवन जीने की योग्यता विकसित कर लेता है।

चक्र– आज्ञा, मूलाधार एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** आकाश एवं पृथ्वी तत्त्व **ग्रन्थि–** पीयूष, प्रजनन एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** दर्शन, शक्ति एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मस्तिष्क, स्नायु तंत्र, आंख, मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव।

4. भूचरी मुद्रा

'भूचरी' का शाब्दिक रूप से अर्थ किया जाए तो 'भू' का अर्थ है- पृथ्वी, 'चर' का अर्थ है- गतिमान, चलायमान। यहाँ यह अर्थ युक्तियुक्त नहीं है इसलिए भूचरी का रहस्यात्मक अर्थ ग्रहण करेंगे। यहाँ भूचरी का अभिप्रेत अर्थ है- शून्य को एकटक देखना।

जब साधक शून्य के प्रति पूर्णत: सजग रहता है तब उसे अन्य कुछ भी दिखलाई नहीं पड़ता है। कदाच कोई बाह्य घटना देख भी ली जाए तो भी चेतन मन पर किसी तरह का प्रभाव विद्यमान नहीं रहता। इसे साधना की उत्कृष्ट स्थिति/उत्कृष्ट भूमिका कहा जा सकता है।

इस मुद्रा का उद्देश्य शून्य के प्रति सजग रहते हुए आत्म द्रव्य की अनन्त ज्ञानादि पर्यायों में रमण करना है।

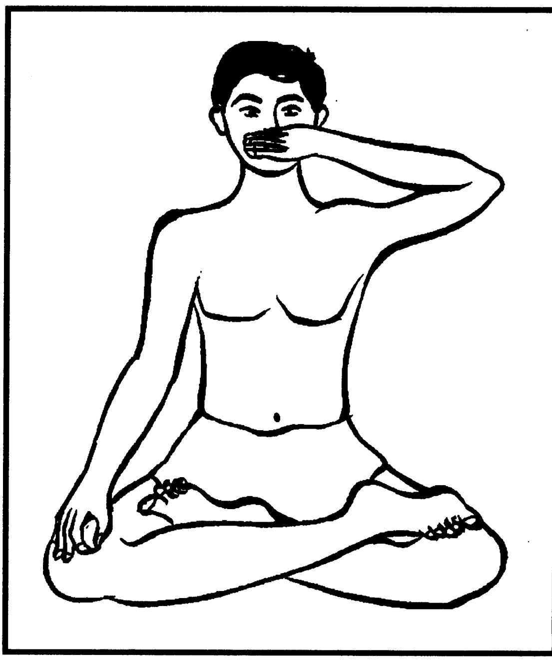

भूचरी मुद्रा

विधि

किसी भी ध्यान के आसन में बैठ जायें। तदनन्तर बायें हाथ को ज्ञान मुद्रा पूर्वक घुटने पर रखें, दाहिने हाथ को उठाकर चेहरे के सम्मुख लायें। हथेली

सीधी, समस्त अंगुलियाँ परस्पर में सटी हुई एवं अधोमुख रहें। अंगूठे को इस तरह रखें कि वह ऊपरी होठ को स्पर्श करता रहे। कोहनी शरीर के बगल में रहे। फिर अपनी आँखों को कनिष्ठा अंगुली के अग्रभाग पर केन्द्रित करें। जब चित्त की एकाग्रता बढ़ जाये तो हाथ को हटा लिया जाए, परन्तु दृष्टि को उसी स्थान पर केन्द्रित करने का प्रयास करते रहना भूचरी मुद्रा है।[7]

निर्देश

1. इस मुद्रा का अभ्यास किसी भी आसन, स्थिति एवं समय में किया जा सकता है।
2. मुद्रा प्रयोग के समय कनिष्ठिका अंगुली के अग्रभाग को लगभग एक मिनट या उससे अधिक समय तक निहारें। यदि संभव हो सके तो इस दौरान पलकों एवं पुतलियों को भी हिलाये-डुलाये नहीं।
3. यदि इस दौरान अन्य विचार आते हैं तो उन्हें आने दें, लेकिन साथ ही साथ अंगुली के अग्रभाग के प्रति निरन्तर सजगता बनाए रखें।
4. लगभग एक मिनट के बाद अपने हाथ को चेहरे के सामने से हटा लें, लेकिन उस स्थान को निरन्तर निहारते रहें जहाँ पर छोटी अंगुली थी।
5. पूर्णतः शून्य में लीन हो जायें, खो जायें।

सुपरिणाम

- यदि इस मुद्रा का अभ्यास पर्याप्त अवधि तक सजगता के साथ किया जाये तो शांति और मानसिक एकाग्रता बढ़ती है।
- अन्तर्निरीक्षण करने की क्षमता का विकास होता है। स्मरण शक्ति में अभिवृद्धि होती है। इससे चेतना अन्तर्मुखी बनती है।
- ध्यान की तैयारी के लिए यह अभ्यास उत्तम कोटि का कहा जा सकता है।
- अगोचरी मुद्रा एवं शाम्भवी मुद्रा के सभी लाभ इससे प्राप्त होते हैं।
- यह मुद्रा अन्य कई दृष्टियों से भी गुणकारी है। जैसे कि इस मुद्रा का अभ्यासी साधक विशिष्ट केन्द्रों को जागृत कर शारीरिक एवं भावनात्मक समस्याओं से ऊपर उठ जाता है। इस मुद्रा से प्रभावित चक्र आदि का चार्ट इस प्रकार है–

चक्र– विशुद्धि एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** थायरॉइड, पेराथायरॉइड एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र–** विशुद्धि एवं आनन्द केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** नाक, कान, गला, मुँह, स्वरयंत्र, हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्त संचरण प्रणाली।

5. नासाग्र-नासिकाग्र मुद्रा

योग साधना के अभ्यासी अथवा योग साधना में रूचि रखने वाले व्यक्ति इतना अवश्य जानते होंगे कि प्रत्येक चेतना शक्ति में प्राणों का प्रवाह कभी मन्द तो कभी तीव्र रूप से, कभी सम तो कभी विषम रूप से बहता रहता है। प्राण शक्ति का आवागमन प्राय: नासारन्ध्रों से होता है तथा नासारन्ध्रों में उस शक्ति (वायु) के आवागमन का नियंत्रण अंगुलियों द्वारा किया जाता है। इस उद्देश्य से एक हाथ को चेहरे के सामने विशिष्ट स्थिति में रखना नासिका अथवा नासिकाग्र मुद्रा कही जाती है।

सामान्यतया अग्रलिखित विधि के अनुसार हाथ एवं अंगुलियों को नासिका पर स्थिर करना नासिका मुद्रा है। यह मुद्रा मुख्य रूप से नाड़ी शोधन नामक प्राणायाम के अभ्यास में सहायक बनती है।

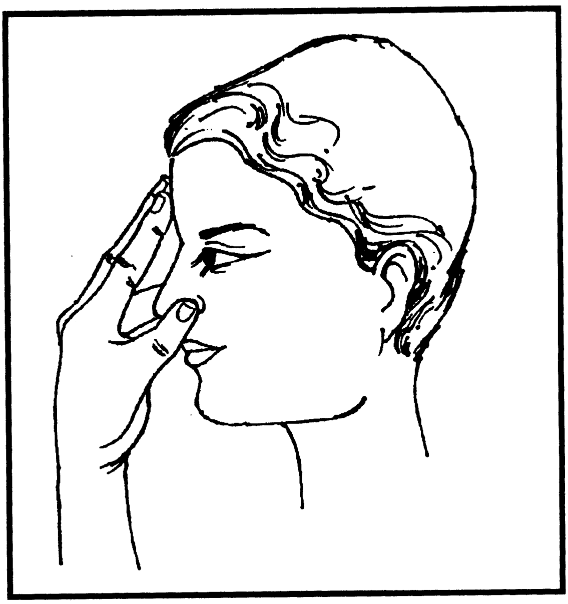

नासिकाग्र मुद्रा

विधि

◆ सर्वप्रथम सुविधाजनक आसन में बैठ जायें। फिर दाहिने हाथ को चेहरे के सामने ले आयें (बायें हाथ का भी प्रयोग किया जा सकता है)।

◆ तर्जनी और मध्यमा अंगुलियों को सीधा रखते हुए उनके अग्रभागों को भ्रूमध्य (ललाट के मध्य) पर रखें, अंगूठे को दाहिने नासारन्ध्र के बगल में रखें

तथा अनामिका अंगुली को बायें नासारन्ध्र के बगल में रखें। कनिष्ठिका अंगुली का उपयोग नहीं होगा।

◆ सिर एवं पीठ का हिस्सा सीधा रखें, किसी तरह का जोर न लगायें। इस अवस्था को नासिका मुद्रा कहते हैं।

◆ अब नासिका मुद्रा का अभ्यास करने हेतु दाहिने नासिका रन्ध्र को अंगूठे से दबाकर आवश्यकता अनुसार खोले अथवा बंद करें, पुनः पुनः खोलने-बंद करने की पुनरावृत्ति करते रहें। इस प्रकार नासिका में वायु के आवागमन को इच्छानुसार नियंत्रित किया जाता है।

◆ इसी तरह से बायें नासारन्ध्र को भी अनामिका से दबाकर आवश्यकतानुसार खोलते अथवा बंद करते हुए वायु को नियंत्रित किया जाता है।[8]

निर्देश

1. इस अभ्यास की सिद्धि के लिए निर्दिष्ट विधि का यथायोग्य अनुसरण करना चाहिए।
2. यह अभ्यास किसी भी समय अनुकूल अवधि तक किया जा सकता है।

सुपरिणाम

● यह मुद्रा अनेक हस्त मुद्राओं में से एक है। इसका प्रयोग अधिकांश प्राणायाम के अभ्यास के पूर्व उसकी संसिद्धि एवं सफलता के उद्देश्य से किया जाता है।

● सामान्यतया नासाग्र मुद्रा से शरीर में प्राण प्रवाह का नियमन होता है। इससे मन को शांत रखने में मदद मिलती है। सम्पूर्ण शरीर को अतिरिक्त मात्रा में ऑक्सीजन मिलती है और साथ ही साथ शरीर से अधिकाधिक कार्बन डाईऑक्साइड बाहर निकलती है। इससे रक्त परिशुद्ध होता है और सम्पूर्ण शरीर के स्वास्थ्य और शक्ति में वृद्धि होती है।

● इस मुद्रा से निम्नांकित केन्द्र आदि प्रभावित होते हैं जिससे कई समस्याओं का सहज निराकरण होता है।

चक्र– मणिपुर, अनाहत एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** अग्नि, वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज, थायमस एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस, आनंद एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, यकृत, तिल्ली, आंतें, हृदय, फेफड़ें, भुजाएं, रक्त संचरण प्रणाली, स्नायुतंत्र, निचला मस्तिष्क।

6. भैरव मुद्रा

हिन्दू परम्परा में शिव के अनेक रूप माने गये हैं, उनमें से एक रूप है भैरव। इसे भयानक और दुर्जेय कहते हैं। इस संदर्भ में शिव की पत्नी को भैरवी (शक्ति) कहा गया है।

इस संसार में एक निश्चित संप्रदाय है, जो शिव और शक्ति के इस रूप की आराधना करते हैं। उन अनुयायियों को भैरवी नाम से संबोधित करते हैं। ऐतिहासिक वृत्तों के अनुसार भैरव तंत्र नाम का एक विराट् तंत्र शास्त्र है।[9]

जैन परम्परा में शिव और शक्ति की भिन्न-भिन्न कल्पना नहीं की गई है वहाँ शिव-शक्ति में एक्य माना है। शिव अर्थात परमात्मा अनन्त ज्ञान-अनन्त दर्शन-अनन्त चारित्र और अनन्त वीर्य रूप शक्ति से सम्पन्न ही होता है। जो स्वशक्ति से पूर्णतः युक्त हो वही परमात्मा के संबोधन का अधिकारी होता है। परमात्मा (शिव) के संदर्भ में पत्नी आदि गृहस्थ सम्बन्धों की कल्पना कैसे की जा सकती है? यद्यपि संप्रदाय विशेष की अपनी मान्यता उनके अनुयायियों के लिए श्रद्धा एवं विश्वास का प्रतीक होती है अतः आचरणीय है।

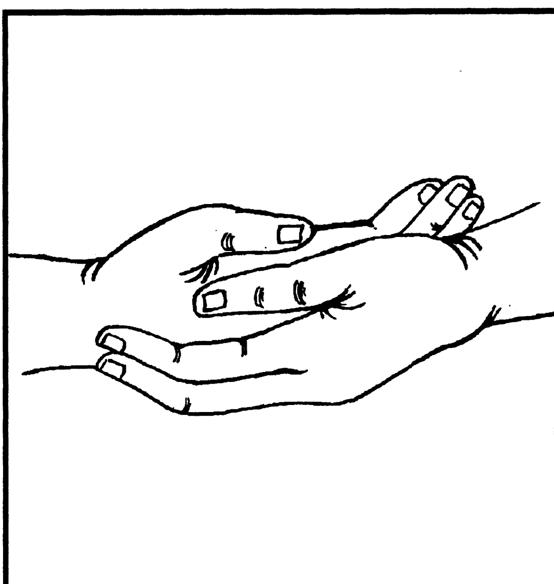

भैरव मुद्रा

विधि

◆ भैरवी मुद्रा एक अत्यन्त सरल प्रक्रिया है। तंत्र शास्त्रियों के अनुसार ध्यान के आसन में बैठते समय गोद में एक हथेली पर दूसरी हथेली को रखना भैरवी मुद्रा है। जैन आम्नाय में इसे ध्यान मुद्रा के नाम से उपचरित किया गया है।

◆ यदि भैरवी शब्द के रहस्यपूर्ण अर्थ पर चिंतन किया जाये तो दोनों में नाम वैषम्य होने पर भी स्वरूप और उद्देश्य में एकरूपता ही प्रतीत होती है।

◆ भैरव शब्द शक्ति समूह, शक्ति स्रोत का वाचक है, जबकि ध्यान साधना में आरुढ़ व्यक्ति भी एकाग्रचित्त हो अर्जित शक्ति का संचय करता हुआ आवृत्त शक्ति को निरावृत्त करता है।

◆ इस मुद्रा को अनेक लोग अनजाने में स्वाभाविक रूप से भी करते हैं।

यह मुद्रा शरीरस्थ निम्न चक्र आदि पर अद्भुत प्रभाव डालती हैं जिससे व्यक्ति का जीवन निरोग एवं दोष मुक्त बनता है–

चक्र– मूलाधार एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व**– पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि**– प्रजनन एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र**– शक्ति एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव, स्नायु तंत्र, निचला मस्तिष्क।

7. नौमुखी मुद्रा

संस्कृत भाषा के 'नवम्' शब्द से 'नौ' बना है। नौ शब्द नव का संख्यावाची है। मुखी का अर्थ है– द्वार अथवा रास्ता। यहाँ नौमुखी शब्द का वाच्यार्थ नौ द्वारों को बन्द करना है।

प्रत्येक मानव शरीर में नौ द्वार हैं जिनसे हम भौतिक एवं सांसारिक अनुभव प्राप्त करते हैं तथा ऐच्छिक विषय-वासना की परिपूर्ति करते हैं। वे नौ द्वार इस प्रकार हैं- दोनों नेत्र, दोनों कान, दोनों नासारन्ध्र, मुँह, गुदा द्वार और जननेन्द्रिय।

इन नौ द्वारों के अतिरिक्त मानव शरीर में एक दसवाँ द्वार भी है जिससे आत्म साक्षात्कार अथवा मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। इसलिये इसे ब्रह्म द्वार या मुक्ति देय मार्ग कहा जाता है। हमारे प्रतिदिन के क्रियाकलाप उक्त नौ द्वारों से प्राप्त अनुभवों पर आधारित होते हैं क्योंकि ये सदैव खुले रहते हैं। जबकि दसवाँ द्वार बंद रहता है। नौ मुखी मुद्रा में इन बाह्याभिमुखी एवं पापास्रवजनक द्वारों को कुछ समय के लिए बन्द किया जाता है। इस क्रियाभ्यास से दसवें-

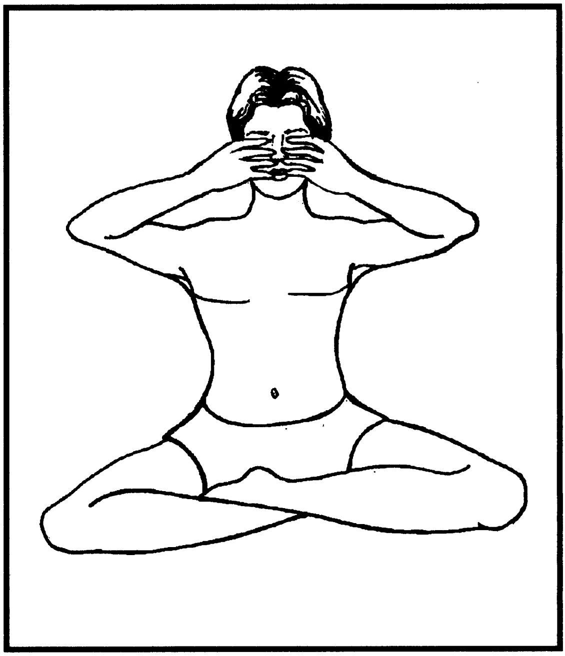

नौमुखी मुद्रा

ब्रह्मद्वार को खोलने में आशातीत सहयोग मिलता है। इस प्रकार यह एक अध्यात्म लक्षी प्रक्रिया है। यह क्रिया ऐन्द्रिक अनुभवों से विमुख हो निर्विकारी-निराकारी आत्मानुभव को प्राप्त करने के उद्देश्य से की जाती है।

विधि

◆ किसी भी आरामप्रद आसन में बैठ जायें।

◆ धीमी एवं लम्बी श्वास लेते हुए शरीर को शिथिल करें।

◆ फिर योनि मुद्रा में वर्णित विधि के अनुसार कर्ण युगल, नेत्र युगल, नासारन्ध्रों एवं मुँह को हल्के दबाव से बन्द कर दें।

◆ तदनन्तर मूलबन्ध एवं वज्रोली मुद्रा का अभ्यास शुरु कर दें।

◆ तत्पश्चात अन्तर्कुंभक (श्वास को भीतर रोकते) लगाते हुए श्वास के अनुभव के साथ चेतना को क्रमशः मूलाधार से स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा, बिन्दु और सहस्रार चक्र पर्यन्त पहुँचायें।

कुंभक की स्थिति में ही सहस्रारचक्र (शिखा का मध्य-तालु का ऊपरी भाग) पर ध्यान करें अर्थात अपनी सजगता पूर्वक सहस्रार स्थान पर होने वाले प्रकम्पनों को देखें।

◆ संभावित अवधि तक कुंभक (श्वास रोककर रखें) करें।

◆ तदनन्तर नासारन्ध्रों से हाथ हटाकर धीरे-धीरे रेचक (श्वास को बाहर) करें।

◆ रेचक क्रिया के समय मूलबंध एवं वज्रोली मुद्रा को शिथिल कर दें। परन्तु हाथों को यथास्थान रखें।

रेचक क्रिया के पश्चात किंचित विश्राम कर, पुनः शरीर को शिथिल करते हुए वर्णित क्रिया की पुनरावृत्ति करें।[10]

निर्देश

1. इस क्रियाभ्यास के दौरान चेतना को अधिकतम समय तक सहस्रारचक्र पर केन्द्रित करने का प्रयास करें।
2. यदि अंतर्कुंभक करते हुए सम्पूर्ण आवृत्ति न कर सकें तो, प्रारंभ में कुछ दिनों सहस्रारचक्र पर श्वसन क्रिया कर लें, धीरे-धीरे यह समस्या दूर होती चली जायेगी।
3. अंतर्कुंभक का प्रबल प्रयत्न करें। अंतर्कुंभक की स्थिति जितनी अधिक होगी मुद्राभ्यास की फलश्रुति उतनी ही अनुपात में होगी।
4. तनाव रहित अवस्था में जितनी देर संभव हो, कर सकते हैं।

सुपरिणाम

• प्राचीन मुद्राओं में इस मुद्रा की परिगणना की जाती है इससे माना जा सकता है कि पूर्वकाल के ऋषि-महर्षियों द्वारा यह निश्चित रूप से समादृत एवं आचरित रही है।

• इस मुद्रा के द्वारा शारीरिक स्वस्थता, बौद्धिक निर्मलता, वैचारिक पवित्रता, चित्त एकाग्रता, निस्पृहता, निर्विकारता, अन्तर्मुखता, ब्रह्मस्वरूप तादात्म्यता, पापभीरुता, संकल्पदृढ़ता, उच्च मानसिकता, उदारता, हृदयविशालता, सहिष्णुता, सौहार्द्रता, परदुःखकातरता, सत्कर्मों में तत्परता, इन्द्रिय विषयों से पराङ्मुखता, आत्म सजगता, स्वलक्ष में जागरूकता, नैतिकता, निष्पक्षता, सक्रियता आदि अनेक गुणों का प्रादुर्भाव होता है।

- सत्यानन्द सरस्वती के मतानुसार नौमुखी मुद्रा के अभ्यास हेतु कुछ अन्य अभ्यासों की भी आवश्यकता होती है जैसे उज्जायी प्राणायाम, खेचरी मुद्रा, वज्रोली मुद्रा, योनि मुद्रा, मूलबंध आदि। इस मुद्रा में खेचरी मुद्रा आदि से होने वाले लाभ भी प्राप्त होते हैं। विशेष रूप से अभ्यासी साधक सहस्रारचक्र पर स्थित दसवाँ द्वार भेदने/अनावृत्त करने में समर्थ हो जाता है।
- इस मुद्रा से निम्न चक्र आदि भी सही दिशा में कार्य करते हैं और उससे देहजन्य एवं भावनाजन्य समस्याओं का अन्त हो जाता है।

चक्र– मूलाधार, आज्ञा एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, पीयूष एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति, दर्शन एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव, स्नायुतंत्र, मस्तिष्क, आँख।

8. अगोचरी मुद्रा

अगोचरी का अर्थ होता है- अज्ञात। अत: इसे अज्ञात मुद्रा भी कहा जा सकता हैं। अगोचरी संस्कृत के अगोचरम् शब्द से बना है। अगोचरी मुद्रा का तात्पर्य इन्द्रिय ज्ञान से परे अतीन्द्रिय ज्ञान से है। स्पष्टत: यह मुद्रा अंधकार से प्रकाश की ओर, असत्य से सत्य की ओर, मृत्यु से अमरत्व की ओर ले जाने वाली मुद्रा है।

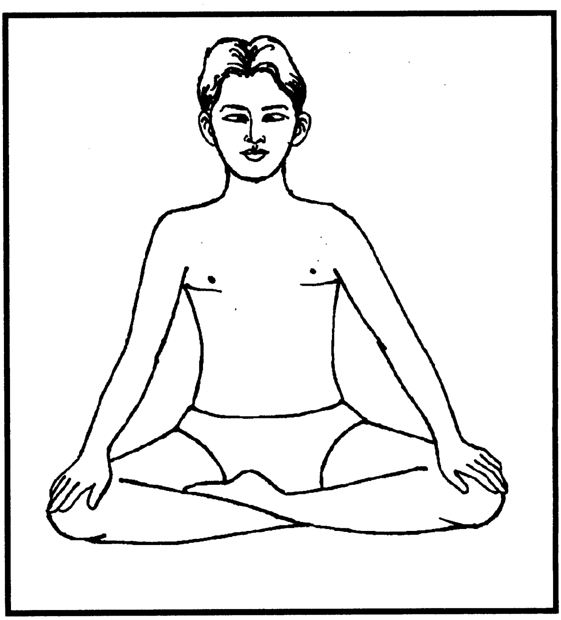

अगोचरी मुद्रा

इस मुद्रा का दूसरा नाम नासिकाग्र दृष्टि है क्योंकि इस प्रक्रिया में निरन्तर नासिका के अग्रभाग को निहारा जाता है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि अगोचरी मुद्रा अब तक ज्ञात योग की सर्वाधिक प्राचीन क्रियाओं में से एक है। इसका प्रमाण मोहनजोदड़ो की खुदाई से प्राप्त सिन्धु घाटी की सभ्यता के भग्नावेषों में मिलता है। यह सभ्यता हजारों वर्ष पूर्व अस्तित्वमान थी। विख्यात पुरातत्त्ववेत्ता सर जॉन मार्शल, जिनकी देख-रेख में मोहनजोदड़ों का अधिकांश खुदाई कार्य सम्पन्न हुआ। वे कहते हैं कि

"उपरोक्त दर्शाया गया चित्र योग करते हुए किसी व्यक्ति का द्योतक है, जिसकी पलकें लगभग आधी बन्द हैं तथा आँखे नीचे की ओर नासिका के अग्रभाग पर टिकी हुई है।"

इसका अर्थ हुआ कि उस समय शिल्पकारों एवं जनसामान्य को भी इस अभ्यास के महत्त्व का ज्ञान था। तभी तो उन्होंने उसे पत्थर पर उत्कीर्ण कर भावी पीढ़ी के लिए सुरक्षित रखा।[11]

प्रस्तुत क्रम में यह चर्चा करना भी आवश्यक प्रतीत होता है कि साधारण तौर पर इस अभ्यास में आपको कोई विशिष्टता नजर नहीं आयेगी, किन्तु हकीकत में ऐसा नहीं है। यदि दीर्घकाल तक इसका सुविधि अभ्यास किया जाये तो यह बाह्य राग-रंग में फंसे हुए एवं झूंठे प्रपंचों में उलझे हुए मनस्तर को अन्तर्मुखी बनाती है साथ ही ध्यान के अवतरण में सहायक बनती है।

गीता में नासिका के अग्रभाग को निहारने पर बल देते हुए उससे मन शुद्ध-शान्त एवं स्थिर होता है ऐसा फल वर्णन भी किया गया है।[12] इस चर्चा का सारभूत तत्त्व यही है कि अगोचरी मुद्रा आभ्यन्तर जगत के प्रत्येक सोपानों का संस्पर्श कराने में सक्षम है।

विधि

- इस मुद्राभ्यास हेतु निर्दिष्ट किसी भी आसन में बैठें।
- फिर आँखें बन्द कर लें और सारे शरीर को शान्त, शिथिल एवं स्थिर कर दें।
- तत्पश्चात आँखें खोल लें और नासिकाग्र पर दृष्टि को केन्द्रित करें अर्थात निरन्तर नासिकाग्र को निहारें।
- यदि आपकी दोनों आँखें नासिका के अग्रभाग पर टिकी होंगी तो नासिका की दोहरी रूपरेखा दिखाई पड़ेगी। जिस स्थान पर दोनों एक-दूसरे से

मिलती है वहाँ नुकीला बिन्दु बनता है। इसी बिन्दु पर अपनी दृष्टि टिकायें।

◆ यदि नुकीला बिन्दु दिखाई नहीं पड़ता तो इसका मतलब है कि आपकी दोनों आँखें नासिकाग्र पर केन्द्रित नहीं है इसके लिए धीरे-धीरे प्रयत्नशील रहें।

◆ प्रारम्भ में अधिक देर तक नासिकाग्र पर दृष्टि को केन्द्रित करना सम्भव नहीं है। अत: थोड़ी-थोड़ी देर के बाद दृष्टि को विराम देते रहें और पुनर्भ्यास के लिए भी जुटे रहें। इस तरह शनैः शनैः आँखें अभ्यस्त होने लगेंगी और तब नासिकाग्र दृष्टि का समय भी बढ़ता जायेगा।

◆ जब आप में एक मिनट या कुछ अधिक समय तक लगातार अभ्यास करने की क्षमता प्राप्त हो जाए तो नासिकाग्र के साथ-साथ नासिका के अन्दर श्वास-प्रश्वास के प्रवाह का अनुभव करें।

◆ नासारंध्रों में श्वास के प्रवाह के साथ ही हल्की ध्वनि भी सुनाई पड़ती है इस ध्वनि के प्रति सजग रहे।

◆ इस तरह नासिकाग्र, श्वास-प्रश्वास की गति एवं संबंधित ध्वनि के प्रति सजग रहें। यही अगोचरी मुद्रा की अभ्यास विधि है।[13]

निर्देश

1. किसी भी स्थिति में आँखों पर जोर न दें।
2. अभ्यास में दक्षता पाने हेतु कुछ सप्ताह का समय लगता है अत: जल्दबाजी न करें।
3. इस अभ्यास हेतु किसी भी प्रकार की तैयारी जरुरी नहीं है अत: दिन में किसी भी समय इसका अभ्यास किया जा सकता है।
4. आप यथासंभव अधिकतम देर तक यह अभ्यास कर सकते हैं। अभ्यास की अवधि जितनी बढ़ेगी उतनी लाभकारी है।

   इस मुद्रा को कम से कम पाँच मिनट करने का अवश्य प्रयत्न करें।

सुपरिणाम

● स्वयं की उपस्थिति अन्तर्जगत में हो ऐसे चाहक व्यक्ति अथवा जिन्हें अन्तर्दर्शन की गहरी तमन्ना हो ऐसे साधक पुरुष ही अगोचरी मुद्रा का अभ्यास करते हैं।

● इस अभ्यास में आँखों को ऐसी स्थिति में रखा जाता है जिस स्थिति के वे आदि नहीं हैं। लेकिन नियमित अभ्यास से आँखों की मांसपेशियाँ अपने

इस नये कार्य को स्वीकार कर लेती हैं। इसके परिणामस्वरूप उनकी शक्ति में वृद्धि होती है तथा देखने की क्षमता बढ़ जाती है।

- कुछ देर तक सजगता पूर्वक अभ्यास करने से एकाग्रता एवं मानसिक शान्ति में वृद्धि होती है। वस्तुतः यह अन्तर्दर्शन की विधि है। यद्यपि इस अभ्यास के दौरान आँखें खुली रहती है किन्तु बाह्य जगत के प्रति सजग नहीं रहतीं। आँखें पूर्णतः एकाग्र होती हैं और फलतः मन भी।

- सत्यानन्द सरस्वती के निर्देशानुसार इसके तथा त्राटक के लाभ लगभग समान है। इसमें और त्राटक दोनों में चित्तशक्ति को एक केन्द्र पर सुस्थिर किया जाता है। जिससे एकाग्रता की क्षमता विकसित होती है और जिनका दैनिक जीवन में अपरिमित उपयोग है।[14]

- इसके अतिरिक्त मन की शक्ति को एक केन्द्र पर केन्द्रित करने से मानसिक शान्ति प्राप्त होती है तथा मन का निरन्तर यहाँ-वहाँ भटकना बन्द हो जाता है। ध्यान के अनुभव प्राप्त करने एवं मन की सुषुप्त शक्तियों को उजागर करने में भी विशेष सहायक है।

यह अभ्यास मानसिक विक्षेपों को दूरकर स्मरण शक्ति को प्रखर बनाने में भी सहायता प्रदान करता है।

निम्न स्थितियों में यह अभ्यास अपरिहार्य रूप से करें–

1. यदि आपका मन अशान्त एवं चंचल है अथवा आपको क्रोध आ रहा हो,
2. तनावपूर्ण और विघटनकारी परिस्थितियों से सामना करने की संभावना नजर आ रही हो,
3. स्नायविक तनाव, अनिद्रा आदि रोगों से त्रस्त हो,
4. आँखें तथा आँखों की मांसपेशियाँ कमजोर हों,
5. मन विक्षेपों, व्याधियों एवं वैमनस्य भाव से ग्रसित हो तो यह अति प्रभावकारी प्रक्रिया है।

इसका प्रातःकाल में किया गया अभ्यास आपको दैनिक जीवन की समस्याओं का सामना करने हेतु तैयार करता है तथा रात्रि में सोने से पूर्व का अभ्यास गहरी एवं सुखद निद्रा की तैयारी स्वरूप मन को शान्त करता है।

इस तरह अगोचरी मुद्रा वैयक्तिक आदि कई दृष्टियों से अनुकरणीय है।

इस मुद्रा से निम्न चक्र आदि संप्रभावित होते हैं–

चक्र– स्वाधिष्ठान, आज्ञा एवं मणिपुर चक्र **तत्त्व–** जल, आकाश एवं अग्नि तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, पीयूष, एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज ग्रन्थि **केन्द्र–** स्वास्थ्य, दर्शन एवं तैजस केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, निचला मस्तिष्क, स्नायु तंत्र, पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें आदि।

9. योग मुद्रा

योग का शाब्दिक अर्थ मेल या जोड़ है। मुद्रा का अर्थ है- अंतर्भावों की शारीरिक या मानसिक अभिव्यक्ति।

सांकेतिक अर्थ की दृष्टि से विश्लेषण करें तो भावनात्मक स्तर पर मन और चेतना के बीच तादात्म्य स्थापित करना योग मुद्रा है।

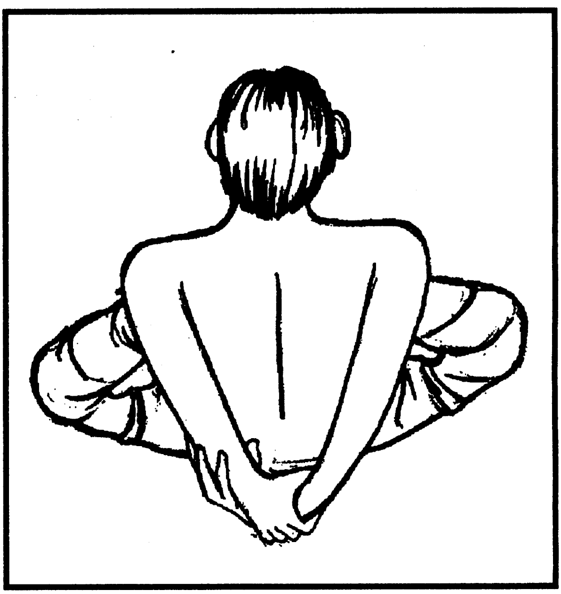

योग मुद्रा

यह मुद्रा एक प्रकार का आसन है। यह नाम से मुद्रा प्रतीत होती है किन्तु इसे आसन के अन्तर्गत स्थान दिया गया है। एक तरह से यह पश्चिमोत्तानासन और पद्मासन का संयोग है।

अधिकांश लोग पद्मासन में सरलतापूर्वक नहीं बैठ सकते वे कुछ अवधि

तक ही इस आसन का अभ्यास कर सकते हैं। पद्मासन से होने वाले कष्टों को दूर करने के लिए योग मुद्रा उत्तम अभ्यास है।

योग मुद्रा के द्वारा घुटनों तथा नितम्बों के जोड़ ढ़ीले होते हैं। पैर दर्द की आरंभिक बाधा को दूर करने के लिए एवं मानसिक परिस्थितियों को अनुकूल बनाने के लिए योग मुद्रा श्रेष्ठ प्रयोग है।

इस आसन को योग मुद्रा कहने का मूल कारण यह है कि इसके प्रयोग द्वारा साधक अपनी अंतस्थ आत्मा से सम्बन्ध स्थापित करता है। योग मुद्रा का उद्देश्य भी इसी तथ्य में अंतर्निहित है।

विधि

◆ इस मुद्रा की सफलता हेतु पद्मासन में बैठ जायें। आँखें बंद कर लें। दोनों हाथों को कमर के पीछे ले जाकर अंगुलियों को एक-दूसरे में फंसा दें अथवा बायें हाथ से दाहिने हाथ की कलाई पकड़ लें। यह आरंभिक अवस्था है।

◆ तदनन्तर पूरे शरीर को तनावों से मुक्त कर दें। धीरे-धीरे लम्बी श्वास लेते रहें। धीरे-धीरे श्वास छोड़ते हुए सामने झुकें। मस्तक को जमीन पर टिकाने का प्रयत्न करें। यदि मस्तक जमीन को न छू सकें तो जितना अधिक झूक सकते हैं झुकें।

यह अंतिम अवस्था है।

◆ तत्पश्चात पूरे शरीर के साथ-साथ पीठ को विशेष रूप से शिथिल करें। धीरे-धीरे गहरी श्वास लेते हुए पेट के संकुचन और प्रसार का ख्याल करते जायें।

इस आसन में जितने अधिक समय तक सुविधापूर्वक बैठ सकते हैं बैठें। यह मूलभूत अवस्था है।[15]

निर्देश

1. इस मुद्रा को पद्मासन में ही करें।
2. प्रारंभिक अभ्यासी नितम्बों के नीचे गद्दी या मोड़ा हुआ कंबल रख सकते हैं। इससे आसन करना सरल होगा।
3. किसी भी परिस्थिति में अपने पैरों एवं पीठ पर जोर न डालें। यदि पैरों में अत्यधिक दर्द होने लगे तो तुरंत आसन बंद कर दें।
4. श्वसन और शारीरिक गतिविधि के मध्य पूर्ण समन्वय रहे, इसका ख्याल रखें।

5. यदि संभव हो तो दोनों एड़ियों का दबाव पेट पर पड़े, इससे आसन का अधिकतम लाभ मिलेगा।
6. अंतिम अवस्था में शरीर को पूर्णतः शिथिल करने का प्रयत्न करें।
7. इस मुद्रासन को यथासंभव कई बार दोहराया जा सकता है।

सुपरिणाम

• प्रारम्भ में इस मुद्रा को करने में कठिनाई आ सकती है, परन्तु एक बार सध जाये तो अत्यन्त गुणकारी है।

• शारीरिक दृष्टि से उदर के अंगों की अच्छी मालिश हो जाती है तथा कब्ज से लेकर मधुमेह तक इनसे संबंधित विभिन्न रोग तिरोहित हो जाते हैं।

• इस आसन में उठी हुई एड़ियों से उदर के आंतरिक भागों पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है।

• इस मुद्रा द्वारा पैरों की ओर होने वाले रक्त संचार में कमी आती है और उदर तथा श्रोणि क्षेत्र में रक्त का प्रवाह बढ़ जाता है। इससे वहाँ के अंगों की कार्य प्रणाली सुचारु हो जाती है एवं अनेक प्रकार के यौन रोगों के निदान में लाभ पहुँचता है।

• अभ्यास के दौरान कोशिकाएँ एक-दूसरे से अलग हो जाती हैं इससे मेरूदण्ड के स्नायु तनाव रहित हो जाते हैं। ये स्नायु संपूर्ण शरीर एवं मस्तिष्क से जुड़े हैं अतः परिणामस्वरूप संपूर्ण शरीर एवं मनोजगत पर लाभजनित प्रभाव पड़ता है।

• भावनात्मक स्तर पर योग मुद्रा संपूर्ण मन और शरीर को शिथिल कर देती है। इस दृष्टि से ध्यान के पूर्व यह आसन उपयोगी सिद्ध होता है।

• मानसिक दृष्टि से व्यक्ति टेन्शन मुक्त एवं तनाव रहित अवस्था में रहता है।

• इस मुद्रा से मूलाधार आदि शक्ति केन्द्र अपने स्वरूप की ओर अभिमुख होते हैं-

चक्र– मूलाधार, आज्ञा एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, पीयूष एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति, दर्शन एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव, स्नायुतंत्र, निचला मस्तिष्क, ऊपरी मस्तिष्क एवं आँख आदि।

10. ब्रह्म मुद्रा

सामान्यतः सच्चिदानन्द-निर्विकार-निराकार स्वरूपी चेतना को ब्रह्म कहा जाता है। ब्रह्म कर्ममुक्त आत्मा का संबोधन है। श्रमण संस्कृति जगत स्रष्टा अथवा जगत निर्माता को ब्रह्म के रूप में स्वीकार नहीं करती है। वह ब्रह्म अर्थात परमात्मा को स्व-स्वरूप में स्थिर एवं आत्म सुख का कर्त्ता-भोक्ता मानती है। इसके विपरीत ब्राह्मण संस्कृति ब्रह्मा को सृष्टि रचयिता मानती है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए ब्रह्मा को चतुरानन (चार मुख वाला कहा गया है।

इस मुद्रा के माध्यम से चतुर्मुखी ब्रह्मा के साक्षात्कार एवं स्वनिहित ब्रह्म स्वरूप को प्रकट करने का अभ्यास किया जाता है।

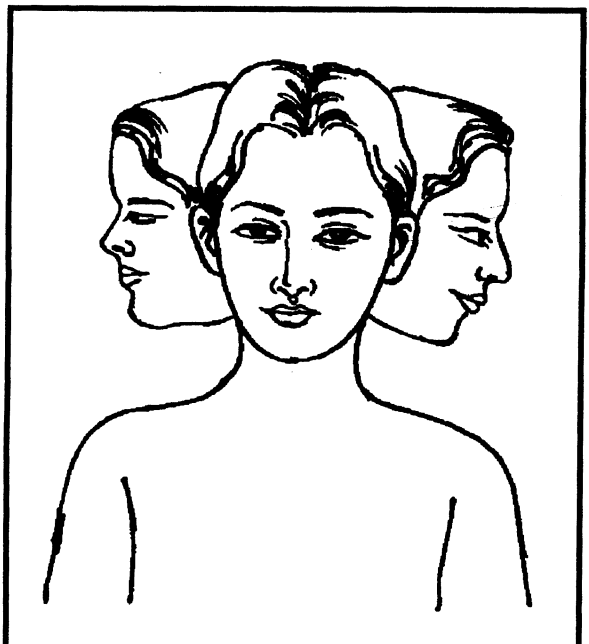

ब्रह्म मुद्रा

विधि

◆ ध्यान सिद्धि के लिए परम उपयोगी पद्मासन या सुखासन में बैठ जायें। मेरूदण्ड को सीधा रखें। चक्षुयुगल को मन्द गति से उन्मीलित कर दें। दोनों हाथों से ज्ञान मुद्रा करके उन्हें घुटनों पर स्थिर करें।

◆ तदनन्तर शान्त भाव से सिर को सामने की ओर स्थिर करें। फिर धीरे-धीरे मस्तक को दाहिनी ओर घुमाएँ, ताकि ढ़ाई मिनट की अवधि में कंधे की सीध में आ सके।

◆ समय की गणना हेतु गिनती या श्वास संख्या का सहारा लें। लगभग चौथाई मिनट (15 सैकण्ड) सिर को दायीं ओर ही स्थिर रखें।

◆ तत्पश्चात धीरे-धीरे मस्तक को बायीं ओर घुमाना प्रारम्भ करें तथा पाँच मिनट में बाएँ कंधे की सीध में पहुंचा दें। लगभग चौथाई मिनट (15 सैकण्ड) सिर को बायीं ओर ही सुस्थिर रखें।

◆ उसके बाद मस्तक को पुनः दाहिनी ओर घुमाना प्रारम्भ करें तथा ढ़ाई मिनट में प्रारंभिक स्थिति में पहुँचे।

◆ लगभग चौथाई मिनट (15सैकण्ड) सिर को दाहिनी ओर ही स्थिर रखें।

◆ तत्पश्चात मस्तक को ऊपर की ओर ले जाना प्रारंभ करे। ढ़ाई मिनट तक ऊपर उठाते हुए सिर को अधिकतम पीछे की ओर ले जाएँ।

◆ लगभग चौथाई मिनट (15 सैकण्ड) सिर को इसी स्थिति में रखें।

◆ तदनन्तर मस्तक को पुनः सामने की ओर लाते हुए पाँच मिनट तक नीचे की ओर जाने दें। लगभग चौथाई मिनट (15 सैकण्ड) सिर को अवनत स्थिति में रहने दें।

◆ फिर ढ़ाई मिनट की अवधि में मस्तक को प्रारंभिक (सामने की) स्थिति में ले आएँ।

◆ इस तरह चारों दिशाओं में सिर को घुमाने एवं स्थिर करने में 21 मिनट का समय व्यतीत होता है।

यह ब्रह्म मुद्रा का एक वृत्त हुआ।[16]

निर्देश

1. इस मुद्रा के लिए उपरोक्त आसन का ही उपयोग करें।
2. इस मुद्रा की यथाशक्ति कितनी भी आवृत्तियाँ की जा सकती है।
3. ब्रह्म मुद्रा के अभ्यास काल में श्वास की गति सामान्य रूप से मन्द रहे।

सुपरिणाम

• शारीरिक दृष्टि से गर्दन की नसों को पुनः पुनः तानने एवं ढीला करने से उनमें शक्तिवर्द्धन और लचीलापन आता है।

क्रेनियल नर्व्स जो गर्दन से गुजरती है उसकी अच्छी मालिश हो जाने से मस्तिष्क सम्बन्धी विभिन्न अंग जैसे- आँख, कान, नाक, जिह्वा आदि स्वस्थ और सक्रिय रहते हैं।

टॉन्सिल की अनचाही बढ़त, जलन एवं सूजन समाप्त होती है।

• आध्यात्मिक दृष्टि से मन शान्त एवं सुस्थिर बनता है। विचारधारा को अंत:केन्द्रित करने में यह मुद्रा सहयोग करती है परिणामत: ध्यान साधना के उच्च प्रयोग किये जा सकते हैं।

• ब्रह्म मुद्रा से विशुद्धि, आज्ञा एवं सहस्त्रार चक्र प्रभावित होते हैं। इससे आभ्यन्तर शक्तियाँ विकसित एवं फलदायी होती है।

11. आकाशी मुद्रा

आकाश शब्द अनेकार्थक हैं। संस्कृत हिन्दी कोश में आसमान, मुक्त स्थान, ब्रह्म, प्रकाश, स्वच्छता, विश्वव्यापी सूक्ष्म द्रव्य आदि को आकाश कहा गया है। यहाँ आकाश के सम्बन्ध में मुक्त स्थान, ब्रह्म, प्रकाश इन अर्थों को ग्रहण किया जा सकता हैं। इन अभिप्रेत अर्थों के आधार पर माना जा सकता है कि आकाशी मुद्रा का प्रयोजन कर्मबद्ध चेतना की चरम अवस्था परमात्म पद (ब्रह्म) को उपलब्ध करना एवं ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि गुणों से सतत प्रकाशित आत्मा की निर्मल-निर्विकार अवस्था का साक्षात्कार करना है।

विधि

◆ ध्यान के किसी भी आसन में बैठ जायें।

◆ फिर मुँह को बंद कर, अधिक जोर न देते हुए जिह्वाग्र को अधिकाधिक पीछे मोड़ें।

◆ फिर जिह्वा के अग्रभाग से ऊपरी तालु का स्पर्श करना आकाशी मुद्रा है।

निर्देश

1. सभी मुद्राओं की भाँति इसका प्रशिक्षण भी योग्य निर्देशन में लें।
2. वैकल्पिक रूप से आकाश मुद्रा के प्रयोग के समय उज्जायी प्राणायाम एवं शाम्भवी मुद्रा का अभ्यास कर सकते हैं।
3. नये अभ्यासी को यदि कुछ देर में ही असुविधा का अनुभव हों तो थोड़ी देर विश्राम कर पुन: क्रिया की पुनरावृत्ति करें।

4. अंतिम स्थिति में अधिकतम अवधि तक रूकें।
5. अभ्यासी आज्ञा चक्र (भ्रूमध्य भाग) पर चित्त की एकाग्रता बनाये रखें।

सुपरिणाम

• इस मुद्राभ्यास की मदद से उज्जायी प्राणायाम, शांभवी मुद्रा और खेचरी मुद्रा के अधिकांश लाभ मिलते हैं।

• नियमित अभ्यास करने से जिह्वा तालु के ऊपरी छिद्र से भी अन्त:भाग में चली जाती है इससे मस्तिष्क के नाड़ी केन्द्रों की क्रियाशीलता बढ़ती है।

• तालु के पीछे के रन्ध्र में अनेक दाब बिन्दु एवं ग्रन्थियाँ है। वे शारीरिक क्रियाओं पर अत्यधिक नियंत्रण करती हैं। मुड़ी हुई जिह्वा के कारण इनके रस-स्राव की क्रिया में वृद्धि होती है जिससे स्वास्थ्य को अत्यधिक लाभ पहुँचता है। लार की उत्पत्ति होने से भूख-प्यास मिटती है।

अध्यात्म वेत्ताओं के लिए यह उच्च यौगिक अवस्था है जिसमें साधक समुचित अभ्यास द्वारा चेतना की उच्चतम अवस्था को प्राप्त करता है।

भारतीय योग विज्ञान पूर्णरूपेण प्रकृति पर आधारित है। इसी कारण इसे परा विज्ञान भी कहा जाता है और इस पराविज्ञान के लिए कुछ भी असंभव नहीं है।

मुद्राओं के नित्य अभ्यास से बाह्य एवं आंतरिक सिद्धियों की प्राप्ति होती है। ब्रह्म स्थिति एवं ब्रह्म विद्या को प्राप्त कर साधक परमोच्च यौगिक स्थिति में स्थित हो सकता है अत: आत्म साधकों को निरंतर मुद्रा साधना में रत रहना चाहिए।

सन्दर्भ-सूची

1. *तंत्र, क्रिया और योग विद्या, स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, पृ. 201*
2. *वही, पृ. 202*
3. *वही, पृ. 670*
4. *वही, पृ. 670*
5. *हठयोग प्रदीपिका, 4/50*
6. *वही, 4/61*
7. *तंत्र, क्रिया और योग विद्या, स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, पृ. 261*
8. *वही, पृ. 69*

9. *वही, पृ. 343*
10. *वही, पृ. 790*
11. *वही, पृ. 206*
12. *गीता, 6/13*
13. *उद्धृत -तंत्र, क्रिया और योग विद्या, पृ. 206-207*
14. *वही, पृ. 207-212*
15. *वही, पृ. 387-388*
16. *सम्पूर्ण योग विद्या, पृ. 314-315*

●

अध्याय-3

विशिष्ट अभ्यास साध्य यौगिक मुद्राओं की रहस्यपूर्ण विधियाँ

योग साधना में मुद्रा विज्ञान का सर्वाधिक महत्त्व है। यह एक शीघ्र प्रभावी प्रक्रिया है। यद्यपि मुद्राओं को सहज एवं सुगम माना गया है किन्तु कुछ मुद्राएँ ऐसी भी होती है जिन्हें साधने के लिए विशेष प्रयास एवं अभ्यास की आवश्यकता होती है। यह मुद्राएँ कठिनतापूर्वक सिद्ध होती है परन्तु एक बार सिद्ध होने के बाद इनकी साधना अनेक दिव्य शक्तियों को जागृत करने में सहायक बनती है।

मुद्राओं का निरन्तर अभ्यास समाज में सात्त्विक परिवर्तन ला सकता है। लोगों की भावना को बदल सकता है। विचार एवं कर्म को नई दिशा प्रदान कर सकता है। मानव विकास एवं संरक्षण के लिए मुद्रा प्रयोग एक अचुक प्रयास है। अत: यहाँ पर विशिष्ट अभ्यास साध्य मुद्राओं का स्वरूप स्पष्ट किया जा रहा है।

1. महा मुद्रा

संस्कृत शब्दकोश में 'महा' का अर्थ है सबसे बड़ा और महान। मुद्रा का अर्थ है मानसिक (सूक्ष्म) वृत्ति। वस्तुत: महामुद्रा वह प्रयोग है जिसके द्वारा मानवीय चेतना उच्चतम स्तर पर गमन कर सकती है। नि:सन्देह यह चैतसिक एवं भावनात्मक स्तर पर की जाने वाली विशिष्ट मुद्रा है। इस मुद्रा के वैशिष्ट्य को हर युग में स्वीकारा जाता रहा है किन्तु प्राचीन काल में इसे जनसाधारण को प्रकट रूप से कभी नहीं सिखलाते थे। यह विद्या गुरु-शिष्य परंपरा में प्रचलित थी। आधुनिक युग में समय और आवश्यकता को देखते हुए इसे प्रचारित किया जा रहा है ताकि साधारण जन समुदाय की संकुचित एवं स्वार्थमूलक भावनाएँ नि:स्वार्थता एवं संवेदनशीलता की पराकाष्ठा पर पहुँचें।

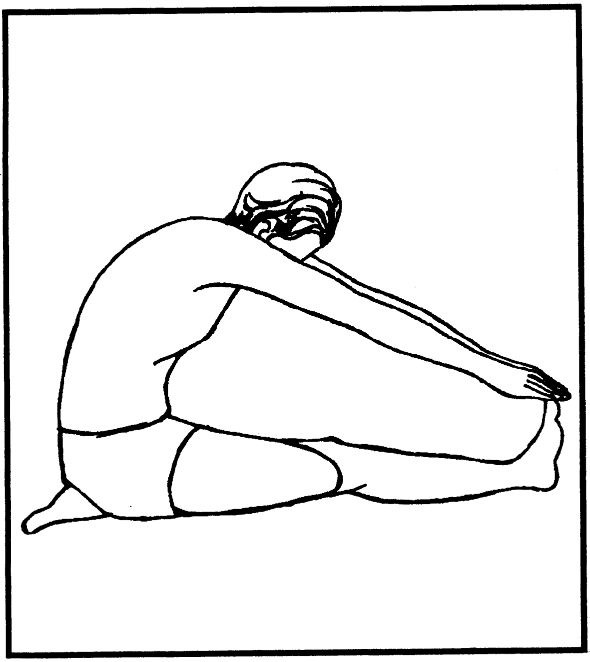

महा मुद्रा

विधि

महामुद्रा अभ्यास की अनेक विधियाँ है यहाँ सरल विधि प्रस्तुत कर रहे हैं-

- सर्वप्रथम आरामदायक स्थिति में बैठ जाएं।
- फिर दाहिने पैर की एड़ी को गुदाद्वार के नीचे रखे (एड़ी से गुदाद्वार को दबाकर रखें) तथा बायें पैर को सामने फैलाकर (सीधा) रखें।
- फिर सामने की तरफ इतना झुके कि दोनों हाथों से बांये पैर के अंगूठे को पकड़ सकें।
- फिर पूरे शरीर को शिथिल करें।
- फिर लम्बा-गहरा श्वास लें, मूलबन्ध एवं शाम्भवी मुद्रा का अभ्यास करें। फिर अंतरंग कुम्भक लगाते (श्वास रोकते) हुए चेतना को मूलाधार, विशुद्धि एवं आज्ञाचक्र पर केन्द्रित करें। प्रत्येक चक्र पर चेतना को एक या दो सैकण्ड तक स्थिर करें।
- श्वास रोकने की क्षमता अनुसार चेतना को मूलाधार, विशुद्धि, आज्ञा, फिर पुनः मूलाधार, विशुद्धि, आज्ञा इस तरह घुमाते रहें।

◆ फिर धीरे से रेचक करें (श्वास छोड़ें)।

◆ पुनः सामने झुकी हुई अवस्था में श्वास रोकें और दीर्घ पूरक (गहरा श्वास लेते) करते हुए क्रिया की पुनरावृत्ति करें।

◆ कुछ आवृत्तियों के पश्चात बायें पैर की एड़ी को गुदाद्वार के नीचे रखते हुए तथा दाहिने पैर को सामने फैलाकर अभ्यास करें।[1]

निर्देश

1. यह अभ्यास किसी भी समय किया जा सकता है। विशेष रूप से ध्यान के पूर्व इस अभ्यास का सूचन किया जाता है।
2. प्रारम्भिक अभ्यासी प्रत्येक पैर से तीन बार अभ्यास कर सकता है। धीरे-धीरे इच्छानुसार क्रिया की संख्या में वृद्धि की जा सकती है।
   सामान्य नियमानुसार इस अभ्यास की 12 आवृत्तियाँ होनी चाहिए। जब सजगता प्रत्येक आवृत्ति के अंत में मूलाधार पर लौटती है तब एक आवृत्ति हुई समझनी चाहिए। इसी तरह मानसिक रूप से इसकी गणना करनी चाहिए।
3. जितनी अधिक देर तक कुम्भक (श्वास को रोककर रखना) कर सकें उतना लाभकारी है परन्तु फेफड़ों पर किसी तरह का तनाव न पड़े।

सुपरिणाम

• मुद्राभ्यासी साधकों के अनुसार महामुद्रा के प्रयोग से निम्न लाभ होते हैं–

• महामुद्रा एक ऐसा अभ्यास है जिसके द्वारा शरीर, मन एवं इन्द्रियों में एक नवीन शक्ति का संचार होता है। इससे मन को एकाग्र करने में सहयोग मिलता है। चित्त सजगता अति सूक्ष्म और गहरी होती है जिसका अनुभव अभ्यासी ही कर सकते हैं।

• योगचूड़ामणि उपनिषद् में इसके लाभ की चर्चा करते हुए बतलाया है कि महा मुद्रा के अभ्यास से समस्त नाड़ी मंडलों (प्राण प्रवाह के मार्गों) की शुद्धि होती है, इड़ा और पिंगला में सम्यक सन्तुलन आता है तथा सभी रस शोषित होकर सुषुम्ना मार्ग की ओर जाते हैं। इसका प्रभाव सम्पूर्ण शरीर पर पड़ता है।[2]

• प्रस्तुत ग्रन्थ में यह भी निर्दिष्ट है कि इस मुद्रा की शक्ति से अस्वास्थ्यकर भोजन पच जाता है, स्वादहीन भोजन स्वादयुक्त हो जाता है तथा

अत्यधिक भोजन एवं विषाक्त भोजन भी पचकर अमृत-तुल्य हो जाता है। इसके प्रभाव से क्षय, कुष्ठ, अजीर्ण इत्यादि रोग भी नष्ट हो जाते हैं।[3]

- उपनिषद्कारों के मतानुसार महामुद्रा महान सिद्धियों को देने वाली है और बड़े यत्न से गुप्त रखने योग्य है। अत: इसे किसी भी अनधिकारी को नहीं बतलाना चाहिए।[4]

- इस अभ्यास दशा में पूरे समय तक मूलाधार चक्र पर दबाव पड़ता है जिसके फलस्वरूप समूचे शरीर की प्राण शक्ति में हलचल मच जाती है तथा प्राण-प्रवाह संतुलित रूप से होने लगता है। ग्रह्यामल में कहा गया है कि जैसे डंडे से आहत हुआ भी डंडे के समान खड़ा हो जाता है वैसे ही कुण्डलिनी शक्ति भी जागृत हो जाती है।

- महा मुद्रा के इस प्रयोग से खेचरी मुद्रा, शाम्भवी मुद्रा एवं मूलबन्ध के लाभ भी प्राप्त होते हैं।

2. नभो मुद्रा

नभ का अर्थ है आकाश। यहाँ नभो मुद्रा का तात्त्पर्य है जिह्वा को तालु की ओर प्रेरित करना। इस मुद्रा में साधक अपनी दृष्टि को भौंहों के मध्य में स्थिर कर जीभ के अग्रभाग को जितना तान सकें उतना पीछे की ओर करने का प्रयास करता है। इसमें जीभ ऊर्ध्व दिशा की ओर गमन करती है अत: इसका नाम नभो मुद्रा है।

इस मुद्रा का अभ्यास दीर्घकालीन तनावों से उत्पन्न होने वाली सभी व्याधियों से छुटकारा पाने हेतु किया जाना चाहिए।

विधि

घेरण्ड संहिता के अनुसार मन को स्थिर रखते हुए जिह्वा के अग्रभाग को ऊपरी तालु की ओर ले जाकर शक्ति अनुसार श्वास क्रिया का निरोध करना नभो मुद्रा है।[5]

निर्देश

1. इस मुद्रा में जीभ के अग्रभाग को सहज रूप से जितना पीछे की ओर तान सकते हैं, तानें। अनावश्यक जोर न लगायें। प्रयास रखें कि जीभ की निचली सतह ऊपरी तालु से स्पर्श करने लगे।

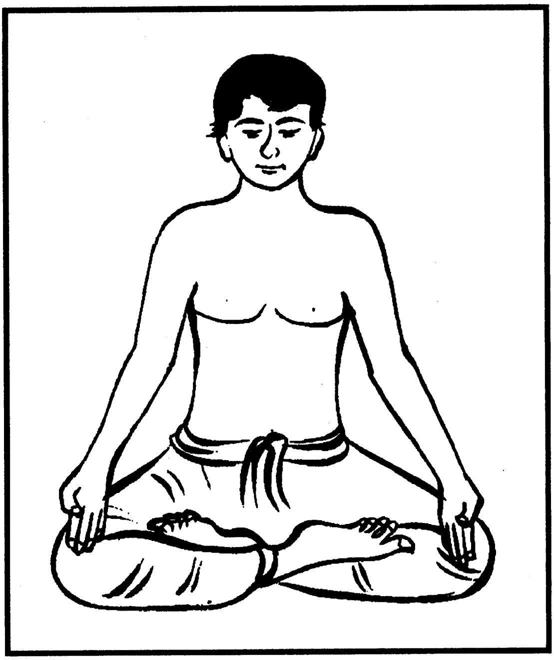

नभो मुद्रा

2. प्रारम्भ दिनों में यह मुद्रा करते समय कुछ क्षणों में ही असुविधा का अनुभव हो सकता है पर नियमित अभ्यास से नभो मुद्रा सहज रूप हो जायेगी।

   फिर भी जब आपको कष्ट का अनुभव हो तो थोड़ी देर के लिए जीभ को वापस सामान्य अवस्था में ले आयें। कुछ देर के बाद पुन: जीभ को मोड़ लें।
3. इस मुद्रा को उज्जायी प्राणायाम के साथ करना चाहिए।

सुपरिणाम

● नभो मुद्रा को उज्जायी प्राणायाम के साथ करने पर महत्त्वपूर्ण फायदे होते हैं।

● इसका अभ्यास करने वाला साधक शारीरिक एवं मानसिक रूप से शिथिल और शान्त हो जाता है।

● शरीर एवं मस्तिष्क पर इस मुद्रा के अनेक सूक्ष्म प्रभाव पड़ते हैं। यह प्रभाव भौतिक, मानसिक तथा बायोप्लाज्मिक स्तर पर होता है।

• मंद और गहरे श्वसन के परिणामस्वरूप मन एवं शरीर की शिथिलता के साथ-साथ बायोप्लाज्मिक शरीर भी संतुलित हो जाता है। इसके अतिरिक्त गले से निकलने वाली ध्वनि के प्रभाव स्वरूप हमारा सम्पूर्ण व्यक्तित्व सौम्य हो जाता है। यदि कोई उस ध्वनि के प्रति सजग रहे तो वह उनके लाभों का तुरन्त अनुभव कर सकता है।

• यह मुद्रा अनिद्रा रोगियों के लिए विशेष उपयोगी है।[6] यथार्थ में नभो मुद्रा साधारण कार्य नहीं है, यह एक रहस्यमयी अभ्यास है जिसके द्वारा अनेक रोग नष्ट किये जा सकते हैं। इसमें जिह्वा मुड़कर ऊपर पहुँच जाये और वहाँ कुछ मिनट तक स्थिर रह सके, तभी उसमें कुछ सफलता समझनी चाहिए।

3. उड्डीयान बन्ध मुद्रा

संस्कृत शब्द उड्डीयान का अर्थ है ऊपर उठना या उड़ना। बंध का अर्थ है बांधना। इस बंध मुद्रा में उदर प्रदेश को छाती की ओर अर्थात ऊपर की तरफ उठाया जाता है तथा शारीरिक बन्ध लगाकर प्राण को सुषुम्ना के निकट पहुँचाया जाता है जिससे वह सुषुम्ना के साथ ऊर्ध्वगामी बनता है (सुषुम्ना नाड़ी मेरुदण्ड के सभी चक्रों से होती हुई सबसे ऊपर सहस्रार चक्र में जाती है) इसलिए इस बंध का नाम उड्डीयान बन्ध है।

यह मुद्रा सुषुम्ना नाड़ी में निरुद्ध प्राण वायु को ऊर्ध्वगामी बनाने के उद्देश्य से की जाती है।

विधि

◆ उड्डीयान बंध करने के लिए ध्यान के उत्तम आसन में बैठ जायें।

◆ दोनों घुटने जमीन से सटे हुए रहें।

◆ दोनों हथेलियाँ दोनों घुटनों पर रखें।

◆ सम्पूर्ण शरीर को शिथिल कर दें।

◆ दोनों आँखें बन्द कर लें।

◆ जितनी गहराई से श्वास को बाहर छोड़ सकते हैं छोड़ें।

◆ श्वास को बाहर ही रोककर रखें। फिर जालन्धर बंध करें।

◆ तत्पश्चात दोनों हाथों से घुटनों पर दबाव देते हुए नाभिस्थल को ऊपर की ओर तथा उदर को नीचे ओर पीछे की तरफ खींचकर मेरुदण्ड के साथ लगाने का प्रयत्न करें।

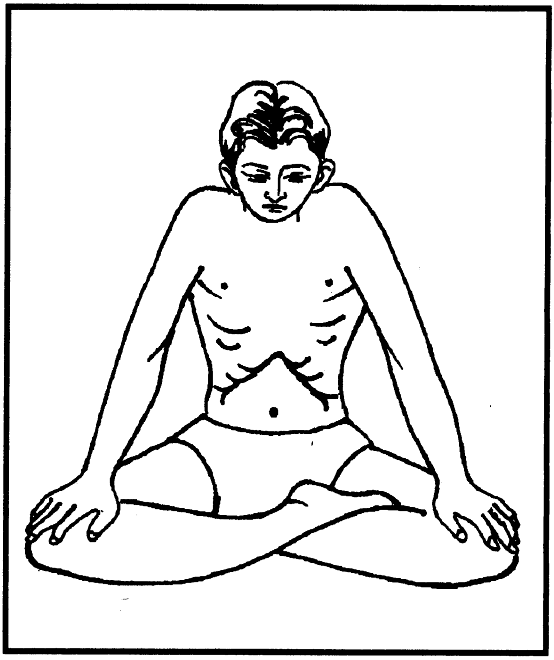

उड्डीयान बन्ध मुद्रा

यह इस बंध की अंतिम अवस्था है।

◆ इस अवस्था में यथाशक्ति श्वास को रोकने का प्रयास करें।

◆ तदुपरान्त धीरे-धीरे छाती को शिथिल कर दें, जालंधर बंध को मुक्त करें और हाथों को मोड़ लें।

◆ फिर धीरे-धीरे पूरक करें। यह उड्डीयान बंध मुद्रा कहलाती है।[7]

निर्देश

1. उड्डीयान बन्ध के अभ्यास हेतु पद्मासन, सिद्धासन अथवा सिद्धयोनि आसन उत्तम है। आपवादिक रूप से यह प्रयोग वज्रासन में भी किया जा सकता है।
2. इसमें दोनों घुटने जमीन से सटे रहने चाहिए, जिससे बन्ध सुविधापूर्वक लग सके।
3. इस मुद्रा में फेफड़ों को अधिकतम खाली रखने का प्रयास करें। इसके

लिए पेट की मांसपेशियों और छाती को अन्दर की ओर सिकोड़ना चाहिए।

4. ध्यान रहे कि इसकी अंतिम अवस्था के पूर्व जालन्धर बन्ध लगाया जाता है जिसके कारण श्वास अन्दर जाने से रूकती है।
5. अंतिम अवस्था में श्वास को अन्दर न जाने दें।
6. अंतिम अवस्था से लौटते समय सर्वप्रथम छाती को शिथिल करें। फिर जालन्धर बन्ध छोड़कर श्वास अन्दर लें।
7. प्रारम्भिक अभ्यासी किसी तरह की गलती न करते हुए इसे क्रमिक रूप से ही करें।
8. इस अभ्यास की जितनी आवृत्तियाँ करना चाहें, कर सकते हैं परन्तु जबर्दस्ती कभी भी न करें।

नये अभ्यासियों को इसकी सीमित आवृत्तियाँ ही करनी चाहिए। फिर धीरे-धीरे आवृत्तियों की संख्या में वृद्धि करें।

सुपरिणाम

• आत्मार्थियों के लिए यह बन्ध क्रिया नितान्त आवश्यक है। इसके अभ्यास से चेतना शक्ति ऊर्ध्वगामी बनती है।

• घेरण्ड संहिता के अनुसार यह मुद्रा मृत्यु रूपी गज के लिए सिंह के समान हैं, सभी बन्धों में प्रमुख है तथा इसके अभ्यास से सहज ही मोक्ष प्राप्ति होती है।[8]

• दत्तात्रेय संहिता में इसके श्रेष्ठ परिणामों का वर्णन करते हुए कहा है कि इसके अभ्यास से वृद्ध भी युवा हो जाता है। यदि छः मास पर्यन्त निरन्तर अभ्यास कर ले तो निःसन्देह मृत्यु पर भी विजय प्राप्त होती है।[9]

• शिवसंहिता में इसका मूल्य बताते हुए कहा है कि यह मृत्युरूपी मातंग का नाश करने वाला बन्ध रूपी सिंह है। जो योगी नित्य इस बन्ध का चार बार अभ्यास करता है उसका नाभिचक्र शुद्ध होकर वायु सिद्ध हो जाती है। यदि छह महीने तक अभ्यास करता है तो वह मृत्यु को निश्चित रूप से जीत लेता है। इस बन्ध के प्रभाव से योगी का शरीर सिद्ध हो जाता हैं, रोगों का शमन हो जाता है और जठराग्नि प्रज्वलित होकर रस की वृद्धि होती है।[10]

• हठयोग प्रदीपिका में इसका महत्त्व निरूपित करते हुए कहा है कि यह

अभ्यास प्राण रूपी पक्षी को, जो अविश्रान्त है उड़ान भरने में मदद करता है। इसके नियमित अभ्यास से वृद्ध भी युवावस्था को प्राप्त होता है।[11]

• यह सम्पूर्ण शरीर को पुनर्जीवन देता है और ध्यानावस्था में पहुँचने में सहायता करता है जिससे वृद्धों को भी युवा के समान स्फूर्ति का अनुभव होता है। वराह उपनिषद् में कहा गया है कि जिस प्रकार छाया व्यक्ति का पीछा करती है, उसी प्रकार श्वास जीवन के साथ रहता है। उड्डीयान अशान्त श्वास को ऊपर की ओर ले जाता है।[12] इसी तरह योग शिखा, योग कुण्डलिनी, ध्यान बिन्दू, योग तत्त्व, योग चूड़ामणि आदि कई उपनिषदों में इस सम्बन्धित चर्चा प्राप्त होती है।

संक्षेप में कहा जाए तो इससे सजगता की स्वाभाविक अवस्था अधिक गहरी और सूक्ष्म होती है। जिससे व्यक्ति अपनी प्रवृत्ति, अस्तित्व, नश्वरता और जीवनोद्देश्य आदि सम्पूर्ण जानकारी से लाभान्वित होता है।

• इस बन्ध क्रिया से शरीर के शक्ति सम्पन्न मूलाधार आदि चक्र, अग्नि आदि तत्त्व, एड्रीनल आदि ग्रन्थियाँ, तैजस आदि केन्द्र एवं शरीरस्थ कुछ अंग भी संतुलित होते हैं। इससे नानाविध रोगों एवं अन्तहीन समस्याओं का शमन होता है। इस मुद्रा से प्रभावित चक्र आदि का चार्ट निम्न प्रकार है-

चक्र– मणिपुर, मूलाधार एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व**– अग्नि, पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि**– एड्रीनल, पैन्क्रियाज, प्रजनन एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र**– तैजस, शक्ति एवं दर्शन केन्द्र।

4. जालन्धर बन्ध मुद्रा

जालन्धर शब्द का निर्माण जालन + धर इन दो शब्दों के योग से हुआ है। जालन का अर्थ है जाल और धर का अर्थ है धारा-प्रवाह।

इस अर्थ के आधार पर जालंधर शब्द की विभिन्न व्याख्याएँ की जा सकती है। यहाँ इसका अर्थ है शरीर की नाड़ियों का जाल या गुच्छा।

जालंधर शब्द का अन्य अर्थ भी किया जा सकता है उसके लिए ध्यान दीजिए हमारे शरीर में सोलह विशिष्ट केन्द्र हैं जिन्हें आधार कहते हैं। ये शरीर के सोलह विभिन्न हिस्सों में स्थित हैं- पैरों की अंगुलियाँ, टखने, घुटने, जांघें, मूलाधार (पेरिनियम), अनुत्रिक (कॉकसिक्स), नाभि, हृदय, गर्दन, टॉन्सिल, जीभ, नासिका, भ्रूमध्य, आँखें, सिर का पिछला एवं ऊपरी हिस्सा। प्राणिक शरीर में प्राण इन्हीं क्षेत्रों से होकर बहता है।

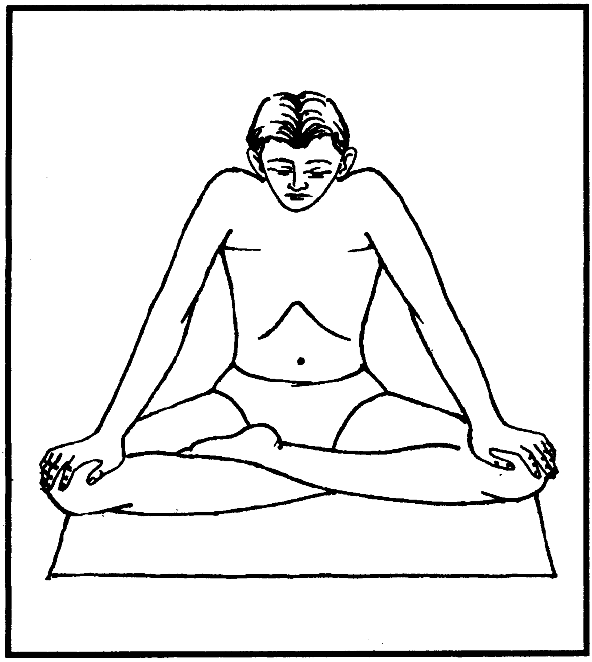

जालंधर बंध मुद्रा

तात्पर्य है कि जिस अभ्यास के द्वारा गर्दन के क्षेत्र के प्राण प्रवाहों को रोका जाता है वह जालंधर बंध कहलाता है।

इस मुद्रा के द्वारा गर्दन से जाने वाली नाड़ियों के जाल को नियंत्रित कर, तालु मूल से निर्झरित चन्द्र रूपी अमृत रस को नाभि प्रदेश की ओर गमन करने से अवरूद्ध किया जाता है जिससे मृत्यु पर विजय पाई जा सकें।

विधि

- जालंधर बंध के लिए सुविधाजनक आसन में बैठ जायें।
- स्मरण रहें, दोनों घुटने जमीन से सटे हुए रहें।
- दोनों हथेलियों को घुटनों पर रखें। पूरा शरीर शिथिल कर दें। फिर दोनों नेत्रों को बंद करते हुए गहरा श्वास लें। श्वास को अंदर ही रोक दें।
- तत्पश्चात कण्ठ का संकोच करें और ठुड्डी को दृढ़तापूर्वक गले से लगा दें अर्थात छाती से सटाकर रखें। इससे सोलह स्थानों पर बंध हो जाता है।
- इस स्थिति में जितनी देर श्वास रोककर रख सकें, रखें।

◆ फिर धीरे-धीरे कंधों को शिथिल करते हुए श्वास बाहर छोड़ें। सामान्य स्थिति में आ जायें। यह जालन्धर बंध कहलाता है।[13]

निर्देश

1. जालंधर बंध अनेक आसनों में किया जा सकता है लेकिन सबसे अच्छा आसन पद्मासन, सिद्धासन और सिद्धयोनि आसन है।
2. यह अभ्यास जालंधर बंध लगाने के ठीक पहले श्वास बाहर छोड़कर भी किया जा सकता है।
3. इस अभ्यास काल में अपनी सजगता गले के क्षेत्र में बनाये रखें। इसी के साथ मानसिक रूप से कुंभक की लंबाई गिनते जायें।
4. जालंधर बंध के दौरान किसी भी हालत में श्वास अंदर या बाहर न करें, जब तक कि आप ठुड्डी और भुजाओं को जकड़न से मुक्त न कर दें तथा सिर ऊपर न उठ जायें।
5. धीरे-धीरे कुंभक की लम्बाई बढ़ाते जायें।
6. सुविधाजनक रूप से जितनी आवृत्तियाँ कर सकें, करें।
7. नये अभ्यासी क्रमशः आवृत्तियों की संख्या बढ़ाएँ।

सुपरिणाम

• हठयोग संबंधी ग्रन्थों में इस मुद्रा स्वरूप के साथ-साथ तज्जनित परिणामों का भी वर्णन किया गया है।

• घेरण्ड संहिता में इसे महा मुद्रा की संज्ञा देते हुए मृत्यु की परम्परा को नष्ट करने वाला कहा गया है।[14]

• योग चूड़ामणि उपनिषद में पाँच महामुद्राओं का उल्लेख है। उपनिषतकार कहते हैं कि जो योगी महा मुद्रा, नभो मुद्रा, उड्डीयान बन्ध, जालन्धर बन्ध और मूलबन्ध को जानता है वह मोक्ष का अधिकारी होता है।[15]

• महर्षि घेरण्ड के अनुसार इस बन्ध के सध जाने पर योगियों को सिद्धि प्राप्त होती है तथा इसका छह महीने अभ्यास करने से योगी की साधना सिद्ध हो जाती है।[16]

• शिवसंहिता में इसे देवताओं के लिए भी दुर्लभ बताया गया है। इसी के साथ कहा गया है कि जालंधर बंध के अभ्यास से तालुमूल (चन्द्रमण्डल) से

स्रवित अमृत सूर्यमण्डल जठराग्नि में नहीं जाता तथा योगी पुरुष इसका पान करके दीर्घायु हो जाते हैं।[17]

• हठयोग प्रदीपिका में इसका लाभ दर्शाते हुए कहा गया है कि यह बंध गले की सभी नाड़ियों को अवरूद्ध करता है तथा मस्तिष्क से झरने वाले अमृत को रोकता है। इससे कंठ सम्बन्धी व्याधियों को विराम मिलता है। यह प्राण को सुरक्षा प्रदान करता है अर्थात सोलह आधारों की ओर जाने वाले प्राण प्रवाह को नियंत्रित करके इसे सुषुम्ना की ओर प्रेरित करता है।[18]

• योग चूड़ामणि उपनिषद में जालंधर बंध की महत्ता विस्तार पूर्वक कही गयी है।

संक्षेपत: जो आकाश तत्त्व और नीचे गिरने वाले दिव्य रस को धारण करता है वह समस्त निराशाओं एवं असंतोषों का निराकरण करने में सफल हो जाता है। इस अभ्यास से सिर के मध्य भाग से झरने वाले अधोगामी अमृत का निरोध होता है। अमृत अग्नि में नहीं पड़ता और शरीर की प्राण शक्ति यत्र-तत्र जाने से रूक जाती है तथा स्थिर रहती है।[19]

• शारीरिक एवं मानसिक स्तर पर जालधरबंध शरीर में प्राण-प्रवाह को नियंत्रित करता है, मानसिक शिथिलीकरण प्रदान करता है जिससे अनायास ही ध्यान की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

• ग्रीवा शिरानालों पर पड़ने से हृदय की गति कम होती है और इससे मन संतुलित होता है। इस बंध में श्वास नली बंध होने से ग्रीवा स्थित विभिन्न अंगों पर दबाव पड़ता है, इससे ग्रीवा स्थित थायराईड ग्रन्थि की मालिश हो जाती है। इस ग्रंथि पर सम्पूर्ण शरीर आश्रित है अत: शरीर के समस्त अवयव स्वस्थ एवं शान्त रहते हैं।

• इस बन्ध क्रिया की साधना से शरीर के शक्ति केन्द्रों पर भी अनूठा प्रभाव पड़ता है इससे साधक बाह्य एवं आभ्यन्तर उभय जगत को संतुलित कर लेता है। इस मुद्रा से प्रभावित सप्त चक्रों आदि की सूची इस प्रकार है-

चक्र– स्वाधिष्ठान, मूलाधार एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व–** जल, वायु एवं पृथ्वी तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि **केन्द्र–** स्वास्थ्य, शक्ति एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, मेरुदण्ड, कान, नाक, गला, मुख एवं स्वरयंत्र।

5. मूलबंध मुद्रा

मूल का अर्थ है जड़ और बंध का अर्थ है बांधना। सामान्यतया मूल शब्द के अनेक तात्पर्य हो सकते हैं जैसे मूलाधार चक्र, कुंडलिनी का निवास स्थान, मेरुदंड का आधार आदि। ये सभी समान अर्थ के द्योतक हैं, क्योंकि मेरुदंड का आधार मूलाधार चक्र है तथा मूलाधार चक्र के स्थान पर ही कुंडलिनी शक्ति रहती है। यहाँ अभिप्राय की दृष्टि से समग्र अर्थों का ग्रहण हो जाता है। पारिभाषिक दृष्टि से मूलाधार चक्र स्थित अपान वायु को ऊपर की ओर खींचना मूल बंध कहलाता है।

इस बंध का मुख्य उद्देश्य शरीर के निम्न प्रदेशों में निहित अपानवायु को ऊर्ध्वगामी करते हुए अध्यात्म दिशा की ओर प्रयाण करना है।

विधि

◆ मूल बंध के लिए ध्यान योग्य आसन में बैठे जायें। ◆ हथेलियों को घुटनों पर रखें। ◆ आँखें बन्द कर लें तथा सम्पूर्ण शरीर को शिथिल करें।

◆ गहरी श्वास लेकर अंतर्कुम्भक करें तथा जालंधर बंध लगायें। तदुपरान्त

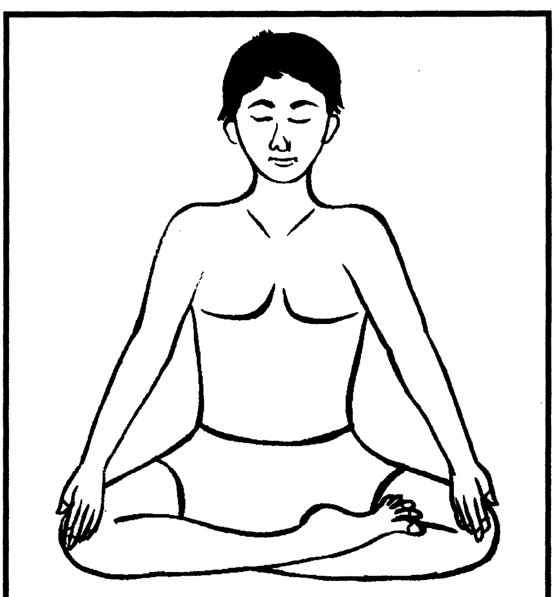

मूलबंध मुद्रा-I

बायें पैर की एड़ी से गुदामार्ग को दबाएँ और बलपूर्वक अपान वायु को आकर्षित करके ऊपर की ओर गतिशील करें यानी मूलाधार चक्र की निर्धारित मांसपेशियों को संकुचित करते हुए ऊपर की ओर खींचें। यह मूलबंध की मुख्य स्थिति है इस संकुचन को यथा संभव कायम रखें।[20]

◆ तत्पश्चात उस संकुचन को ढ़ीला करते हुए जालंधर बंध को मुक्त कर दें। फिर मस्तक को ऊपर उठाकर रेचक करें यह मूलबंध कहलाता है।

निर्देश

1. मूल बंध के अभ्यास हेतु पुरुषों के लिए सिद्धासन तथा महिलाओं के लिए सिद्धयोनि आसन सर्वोत्तम है। यदि उपरोक्त आसनों में नहीं बैठ सकते है तो ध्यान के किसी अन्य आसन में बैठ जायें।
2. दोनों घुटने जमीन से सटे रहने चाहिए।
3. यदि पेरिनियम की मांसपेशियों पर पर्याप्त नियंत्रण न होने के कारण मूलबंध लगाने में कठिनाई होती हो तो उसके बदले में नियमित रूप से अश्विनी मुद्रा का अभ्यास करें। जब पेरिनियम की मांसपेशियों पर आवश्यक नियंत्रण प्राप्त हो जाये तब अश्विनी मुद्रा का अभ्यास बंद करके मूलबंध का अभ्यास प्रारंभ कर दें।
5. इस बंध की अंतिम स्थिति में जाते समय श्वास क्रिया पर सजगता टिकी रहे। अंतिम स्थिति में हमारी सजगता पेरिनियम के संकुचित स्थान पर रहनी चाहिए।
6. अंतिम स्थिति में सुख पूर्वक जितने समय तक कुंभक कर सकते हैं, करें। इस अभ्यास की यथासंभव अधिकतम आवृत्तियाँ की जा सकती है।

सुपरिणाम

• यह योग और तंत्र साधना पद्धतियों का महत्त्वपूर्ण अभ्यास है। इस मुद्रा को आध्यात्मिक और शारीरिक दोनों दृष्टियों से उपादेय माना गया है।

• मूल बन्ध का मुख्य अर्थ है गुह्य प्रदेश का संकोच।

• घेरण्ड संहिता के अनुसार मूलबन्ध का अभ्यास करने से वृद्धावस्था नष्ट होती है, मरुत सिद्धि प्राप्त होती है तथा अभूतपूर्व लक्ष्य की संसिद्धि होती है

इसलिए संसार सागर से पार होने के आकांक्षियों को निर्जन वन में छिपकर मौन एवं प्रमाद रहित होकर इसका अभ्यास करना चाहिए।[21]

• शिवसंहिता में पूर्वोक्त चर्चा करते हुए यह भी कहा गया है कि इस बन्ध के द्वारा प्राण और अपान को संयुक्त करने से योनि मुद्रा शीघ्रमेव सिद्ध होती है। इस मुद्रा के सिद्ध होने पर सिद्ध पुरुष के लिए ऐसा कोई पदार्थ नहीं, जिसे वह उपलब्ध न कर सकता हो? वह तो वायु विजित हुआ आकाश में उड़ने लगता है।[22]

• हठयोग प्रदीपिका में इसके प्रभाव बतलाते हुए निर्दिष्ट किया है कि मूलबंध प्राण और अपान, नाद और बिन्दू को संयुक्त कर देता है, परस्पर मिला देता है इससे योगसिद्धि प्राप्त होती है।[23]

शारीरिक दृष्टि से अपान ऊर्ध्वगामी होकर जब वह अग्निमंडल (मणिपुर चक्र) में पहुंचता है तब अग्निशिखा दीर्घ हो जाती है। फलतः जठराग्नि तीव्र होती है।[24]

• प्रस्तुत ग्रन्थ के अनुसार उत्तेजित अग्नि के कारण प्राण और अपान अर्थात सुप्त कुंडलिनी जागृत होकर दंड से प्रहारित सर्पिणी के समान सीधी हो जाती है। तत्पश्चात कुंडलिनी ब्रह्म नाड़ी सुषुम्ना में स्थित सूक्ष्म नाड़ी में उसी प्रकार प्रविष्ट होती है जैसे सर्पिणी अपने बिल में प्रवेश करती है। इसलिए योगी को नित्य प्रति मूलबंध करना चाहिए।[25]

• योगचूड़ामणि उपनिषद् में भी तत्सम्बन्धी स्पष्ट वर्णन किया गया है।[26]

• इससे जालंधर बंध के सभी लाभ प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त श्रोणिप्रदेश में रक्त की आपूर्ति बढ़ जाती है और सभी स्नायु सक्रिय हो जाते हैं। परिणामस्वरूप इस क्षेत्र में निहित अंगों के स्वास्थ्य में वृद्धि होती है।

• यह बंध शरीर के निम्न क्षेत्र में स्थित अपान वायु को ऊर्ध्वगामी करके मूलाधार चक्र एवं कुंडलिनी जागरण में सहायक सिद्ध होता है। यह काम शक्ति को रूपान्तरित करने में भी सहायक है।

6. महाबन्ध मुद्रा

संस्कृत भाषा के महत शब्द से 'महा' शब्द निष्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है- महान अथवा बड़ा। बंध का शाब्दिक अर्थ है- बांधना, कसना या बंद करना। प्रस्तुत प्रकरण में बंध शब्द का आशय शरीर के कुछ निश्चित अंगों को बड़ी सतर्कता पूर्वक संकुचित किया जाना अथवा कसा जाना है। अत: महाबंध का तात्पर्य हुआ- जिसमें शरीर के किंचित अवयवों को संकुचित कर विशिष्ट फल देने वाली सूक्ष्म शक्तियों को जागृत किया जाता है वह महाबंध मुद्रा है।

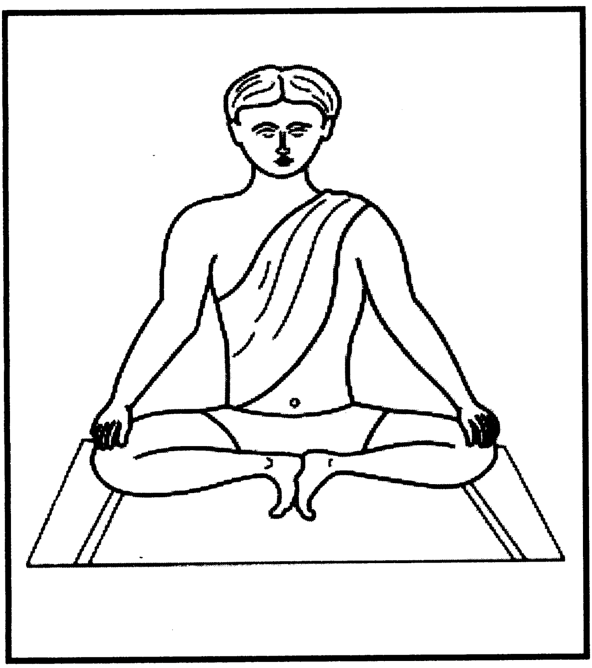

महाबंध मुद्रा-I

महाबंध शब्द से एक अर्थ यह भी लगाया जा सकता है कि जिस प्रक्रिया में जालन्धर बंध, उड्डीयान बंध एवं मूलबंध का संयुक्त अभ्यास किया जाता है वह महाबंध है। इसमें तीन बंधों का युगपद प्रयोग होता है इस कारण भी यह महाबंध शब्द से व्यवहत किया गया हो ऐसा मालूम होता है।

मूलत: इस मुद्राभ्यास के माध्यम से अप्रत्यक्ष शक्तियों को प्रकट करते हुए नानाविध सिद्धियों को प्रत्यक्ष किया जाता है।

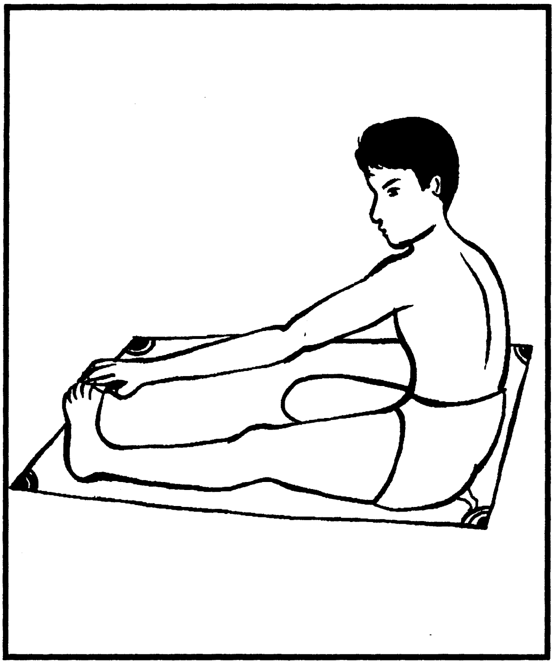

महाबंध मुद्रा-II

विधि

◆ सर्वप्रथम सुविधाजनक आसन में स्थिर हो जायें। शरीर एवं मन को शिथिल और एकाग्र करें। फिर बायें पैर की एड़ी से योनिमार्ग पर दबाव दें। फिर दाहिने पैर से प्रयत्न पूर्वक बायीं एड़ी को दबायें और शनै: शनै: गुह्यदेश का चालन करें। फिर धीरे-धीरे ही गुह्यदेश को संकुचित करें।

◆ इस वर्णित क्रिया के दौरान जालन्धर बंध अवश्य करें।[27]

◆ दोनों घुटनों को जमीन पर सटाते हुए, दोनों हथेलियों को घुटनों पर रखते हुए, आँखें बंद करते हुए शरीर को शिथिल करते हुए गहरी श्वास लेना।

◆ फिर श्वास को भीतर ही रोकते हुए सिर को सामने झुकाकर ठुड्डी को कोलरबोन के बीच सटाकर रखना।

◆ फिर दोनों भुजाओं को सीधा रखते हुए जितनी देर श्वास रोक सकें, रोकना।

◆ फिर कंधों को शिथिल करते हुए, हाथों को बाहर की ओर मोड़ते हुए एवं धीरे से सिर को ऊपर उठाते हुए श्वास बाहर छोड़ना जालंधर बंध कहलाता है।

महाबंध मुद्रा की एक अन्य विधि भी है। तदनुसार बायें पैर की एड़ी से योनि स्थान को दबायें और दाहिने पाँव को सीधा फैला दें। फिर दोनों हाथों से दायें पांव के अंगूठे को दृढ़तापूर्वक पकड़ लें।

फिर उपरोक्त जालंधर बंध लगाते हुए पूरक (श्वास लेना), कुंभक (श्वास रोकना) और रेचक (श्वास छोड़ना) करना द्वितीय महाबंध मुद्रा है।[28]

इस अभ्यास को बायें अंग से करने के पश्चात दाहिने अंग से करें। फिर पुनः पुनः बायां-दाहिना, बायां-दाहिना ऐसी पुनरावृत्ति करते रहें।

निर्देश

1. आप सुविधाजनक रूप से महाबंध मुद्रा की जितनी आवृत्तियाँ कर सकें, करें। नये अभ्यासियों को क्रमशः आवृत्तियों की संख्या बढ़ानी चाहिए। प्रारम्भ में पांच आवृत्तियाँ करें और धीरे-धीरे संख्या बढ़ाते जाये।
2. जब तक ठुड्डी या भुजाओं को जकड़न से मुक्त न कर दें, तब तक किसी भी हालत में श्वास अंदर या बाहर न करें।
3. थोड़े समय के बाद धीरे-धीरे कुंभक की लम्बाई बढ़ाते जायें।
4. यह अभ्यास प्रातःकाल अथवा शरीर के हल्कापन के समय करना उपयुक्त है।

सुपरिणाम

• महाबंध मुद्रा का अभ्यास व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक रूप से लाभ पहुँचाता है।

• शारीरिक स्तर पर यह शरीर में प्राण प्रवाह को नियंत्रित कर मानसिक शिथिलीकरण प्रदान करता है। कण्ठ (ग्रीवा) की शिरानालों पर दबाव पड़ने से हृदय की गति कम होती है इससे मन संतुलित हो सकता है।

• इस बंध से श्वास-नली बंद हो जाती है और ग्रीवा में स्थित विभिन्न अंगों पर दबाव पड़ता है। इससे विशेषतः ग्रीवा की गुहिका में स्थित थॉयराइड़ ग्रन्थि की मालिश हो जाती है। इस ग्रंथि पर संपूर्ण शरीर आश्रित है।

• इससे श्रेणि प्रदेश में रक्त की आपूर्ति बढ़ जाती है और सभी स्नायु सक्रिय हो जाते हैं। परिणामस्वरूप इस क्षेत्र में निहित अंगों के स्वास्थ्य में वृद्धि होती है।

• शरीर के निम्न प्रदेशों में निहित प्राण (जिसे अपान कहते हैं) को ऊर्ध्वगामी करके यह मूलाधार चक्र और कुंडलिनी शक्ति को जागृत करने में सहयोग करता है। यह काम शक्ति को रूपान्तरित करने में भी सहायक सिद्ध होता है।

• आध्यात्मिक एवं मानसिक स्तर पर इसके अभ्यास से अंतर्मुखता बढ़ती है, संपूर्ण स्नायु संस्थान और मस्तिष्क प्रशान्त हो जाते हैं तथा चित्त की एकाग्रता में वृद्धि होती है। इसके फलस्वरूप अनायास ध्यान की स्थिति भी उत्पन्न हो जाती है।

• प्राचीन ऋषियों ने इसे सभी मुद्राओं में श्रेष्ठ तथा जन्म-मरण का नाश करने वाला कहा है। इस मुद्रा से सभी रोगों का नाश होता है और बुढ़ापा दूर भागता है।[29]

7. महावेध मुद्रा

संस्कृत शब्द 'महा' का अर्थ है- बड़ा या महान, वेध का अर्थ है- वेधना, छेदना अथवा भेदना और मुद्रा का अर्थ है- आध्यात्मिक स्थिति। इस तरह महावेध मुद्रा के द्वारा जड़ और चेतन का पूरी तरह से भेद कर सकें, जीव द्रव्य

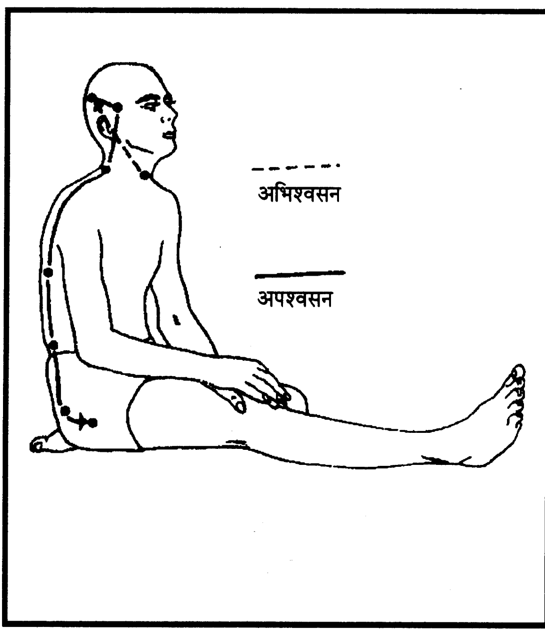

महावेध मुद्रा-1

से पौद्गलिक राग-रंगों का सर्वथा विच्छेद किया जा सकें ऐसी आध्यात्मिक स्थिति का निर्माण होता है।

यह महामुद्रा की सहयोगी क्रिया है तथा उसी का प्रत्यक्षत: अनुगमन करती है। ये दोनों क्रियाएँ सम्मिलित होकर संपूर्ण शरीर एवं मन को प्राण शक्ति से आवेष्टित कर देती है। इस चर्चा से ज्ञात होता है कि महावेध मुद्रा का उद्देश्य सूक्ष्म प्राण प्रवाह को सक्रिय करते हुए कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करना है।

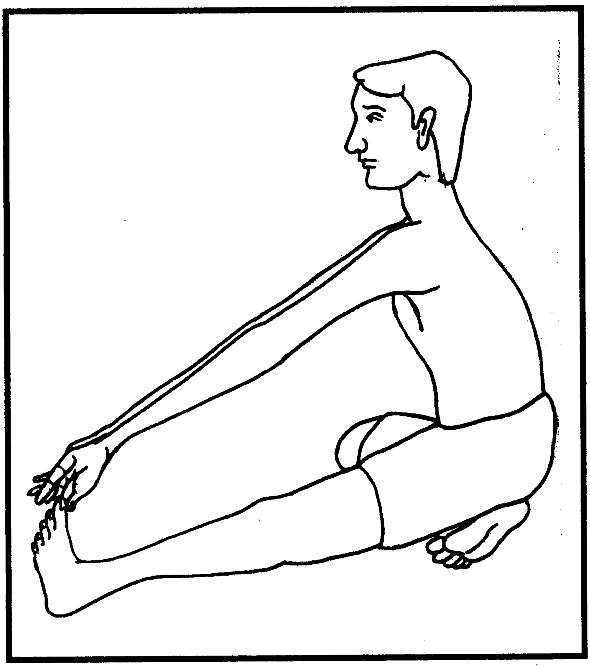

महावेध मुद्रा-2

विधि

महावेध मुद्रा के संपादन की अनेक विधियाँ है। व्यक्ति अपनी क्षमता एवं रूचि के अनुसार किसी एक विधि का चयन कर सकता है। यहाँ पाठकों की सुविधा का ख्याल रखते हुए प्रचलित विधि को दर्शाया जा रहा है–

◆ पीठ सीधी रखते हुए बैठ जायें।

◆ फिर दाहिने पैर की एड़ी को गुदाद्वार के नीचे (एड़ी से गुदाद्वार को) दबाकर रखें तथा बायें पैर को सामने फैलाते हुए रखें। (चित्र नं. 1)

◆ फिर सामने की तरफ झुककर दोनों हाथों से बायें पैर के अंगूठे को पकड़ें।

◆ अपनी दृष्टि को नासिका के अग्रभाग पर स्थिर करें। (चित्र नं. 2)

◆ इस अभ्यास के दौरान गहरा श्वास लें और धीरे-धीरे श्वास को छोड़ें।

◆ जालन्धर बन्ध, मूलबन्ध एवं उड्डीयान बन्ध लगायें। (चित्र नं. 3)

◆ फिर आरामदायक स्थिति तक श्वास को बाहर रोकते हुए क्रमशः मूलाधार, मणिपुर एवं विशुद्धि चक्र को सजगता पूर्वक देखें। प्रत्येक चक्र पर अपनी चेतना को एक या दो सैकण्ड रखने के उपरान्त दूसरे चक्र पर चेतना को ले आइये। मूलाधार, मणिपुर, विशुद्धि, मूलाधार, मणिपुर, विशुद्धि इस तरह क्षमतानुसार पुनरावृत्ति करते रहें।

◆ अब क्रमशः उड्डीयान बन्ध, मूलबन्ध और जालन्धर बन्ध को शिथिल करें।

◆ इसी के साथ नेत्रों को भी शिथिल करें।

◆ फिर धीरे-धीरे गहरी श्वास लें। इतनी प्रक्रिया महावेध मुद्रा कहलाती है।[30]

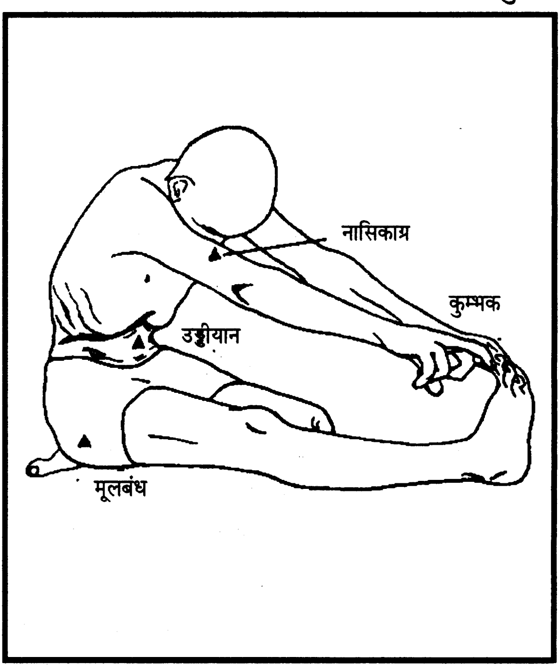

महावेध मुद्रा-3

निर्देश

1. इस मुद्रा का समुचित अभ्यास करने हेतु नियमित 12 आवृत्तियाँ करनी चाहिए। इसे पूर्ण करने में साधारणत: 10 मिनट का समय लगता है।
2. महावेध मुद्रा का अभ्यास महामुद्रा के तुरन्त बाद और माण्डुकी मुद्रा के पूर्व करना चाहिए।
3. महामुद्रा और महावेध मुद्रा दोनों ही श्रमसाध्य अभ्यास है अत: यदि आवश्यकता हो तो महामुद्रा के पश्चात कुछ विश्राम कर महावेध मुद्रा का अभ्यास करें। इस विश्राम काल में नेत्रों को बंद रखते हुए अपनी सहज श्वास के प्रति सजग रहें।

सुपरिणाम

• अभ्यासी साधकों के निर्देशानुसार महावेध मुद्रा भौतिक एवं वैयक्तिक चेतना उभय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

• महर्षि घेरण्ड इस मुद्रा का आकलन करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार पुरुष के बिना स्त्री का रूप, यौवन, लावण्य व्यर्थ है। उसी प्रकार महावेध के बिना मूलबन्ध और महाबन्ध भी निष्फल है। साथ ही प्रतिदिन महावेध के साथ महाबन्ध एवं मूलबन्ध करने वाले योगी सब योगियों में श्रेष्ठ माने जाते हैं। उन साधक पुरुषों को वृद्धावस्था घेरती नहीं और न ही उन्हें मृत्यु का भय रहता है।

• किन्हीं के मतानुसार यह अत्यन्त शक्तिशाली प्रयोग है इसके माध्यम से सहजतया आत्म स्वभाव में रमणता की जा सकती है तथा परमात्म स्वरूपी शक्ति से सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है।

• यहाँ वेध से तात्पर्य वेधना या छेदना है। एक अन्य अर्थ के अनुसार इस प्रयोग में चेतना की सजगता एवं जागरुकता के द्वारा चक्रों एवं चेतना के अवरोधक मार्गों को वेधा जाता है। जिसके परिणामस्वरूप चेतना शक्ति को सम्यक पथ का बोध होता है और वह उस ओर उन्मुख हो जाती है।

• यद्यपि महावेध मुद्रा शारीरिक अभ्यास है किन्तु इनका प्राणिक स्तर पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। इसका विशेष रूप से निम्न तीन केन्द्रों पर प्रभाव पड़ता है-

1. मूलाधार चक्र 2. मणिपुर चक्र और 3. विशुद्धि चक्र।

महावेध क्रिया द्वारा इन चक्रों में शक्ति की वृद्धि होती है। इससे मानसिक

एकाग्रता तथा ध्यानावस्था की प्राप्ति होती है।

सामान्यतया इस मुद्रा से निम्न शक्ति केन्द्रों एवं शरीर के अंगोपांग आदि प्रभावित होते हैं जिससे साधक की विशिष्ट शक्तियाँ ऊर्ध्वगामी बनती हैं-

चक्र- मूलाधार, मणिपुर एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व-** पृथ्वी, अग्नि एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि-** प्रजनन, एड्रीनल, पैन्क्रियाज, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि **केन्द्र-** शक्ति, तैजस एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग-** मेरुदण्ड, गुर्दे, पैर, पाचन संस्थान, नाड़ीतंत्र, यकृत, तिल्ली, आँते, कान, नाक, गला, स्वरयंत्र।

8. खेचरी मुद्रा

'खे' का अर्थ है आकाश और 'चर' का अर्थ है विचरना। आकाश में पक्षीगण विचरण करते हैं। इस तरह खेचरी शब्द का वाच्यार्थ पक्षी है। आपने देखा होगा जब पक्षी आकाश में उड़ता है तब मध्य में ग्रीवा तथा दोनों ओर पंख होते हैं खेचरी मुद्रा के प्रयोग में भी मुँह के भीतर की स्थिति उसी तरह की होती है। साथ ही गले के दोनों ओर केराटिड साइनस नामक दो विशेष अंग होते है। जो उड़ते हुए पक्षी के आकार में ही कण्ठदेश पर स्थित होते हैं उन पर अभ्यास काल के

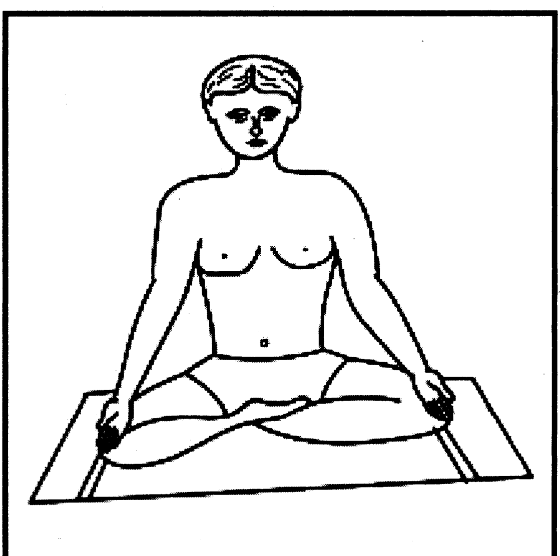

खेचरी मुद्रा

दौरान पड़ने वाले दबाव में वृद्धि हो जाती है तथा गले का दबाव भी बढ़ जाता है परिणामस्वरूप उच्च रक्त-दाब कम होकर सामान्य अवस्था में आ जाता है इस कारण वर्णित मुद्रा के प्रयोग को खेचरी मुद्रा ऐसा नाम दिया गया है।

इस मुद्रा का मुख्य प्रयोजन रोगी को निरोगता का लाभ प्रदान करते हुए प्राण-शक्ति का संग्रह एवं जड़-चेतन, शरीर-आत्मा, पुद्गल-जीव का भेद जानना है।

विधि

खेचरी मुद्रा करने की अनेक जटिल विधियाँ हैं, जिनमें जीभ की शल्य क्रिया भी करनी पड़ती है और जिसे सिद्ध करने में कुछ महिनों का समय भी लग जाता है। यहाँ खेचरी मुद्रा की अत्यन्त सरल क्रिया विधि का वर्णन कर रहे हैं-

◆ किसी भी अनुकूल आसन में बैठ जायें।

◆ फिर मुँह को बन्द कर अधिक जोर न देते हुए जिह्वा के अग्रभाग को मोड़कर तालु के पिछले हिस्से की ओर इतना ले जायें कि उसकी निचली सतह ऊपरी तालु से स्पर्श करने लगे। यही खेचरी मुद्रा की मूल विधि है।[31]

निर्देश

1. सहज रूप से जीभ के अग्रभाग को जितना पीछे की ओर तान सकते हैं, तानें।
2. ख्याल रखें, अनावश्यक जोर न लगायें।
3. इस मुद्रा के उज्जायी प्राणयाम के साथ करें।
4. इस अभ्यास को करते हुए प्रारम्भ में कुछ देर असुविधा का अनुभव हो सकता है, परन्तु नियमित अभ्यास से दीर्घ समय तक सहज रूप से कर सकेंगे।
5. गुरु निर्देशन में ही इसका पूर्ण अभ्यास करें।
6. इस अभ्यास का योग अन्य योगासनों के साथ किया जा सकता है।
7. कुछ महिनों के अभ्यास के बाद श्वास की गति धीमी करते जायें। प्रतिमिनट 5 से 8 तक होनी चाहिए।

सुपरिणाम

• प्राचीन शास्त्रों में इस मुद्रा को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना गया है। इस मुद्रा का विधियुक्त प्रयोग अनेक दृष्टियों से लाभदायी सिद्ध होता है।

• शारीरिक दृष्टि से मानव शरीर पर सूक्ष्म प्रभाव पड़ता है।

• तालु के पीछे के रन्ध्र में अनेक दाब बिन्दु एवं ग्रन्थियाँ है, ये दैहिक क्रियाओं पर नियन्त्रण रखती हैं। इन ग्रन्थियों आदि पर प्रेशर पड़ने से सक्रिय बनी रहती है।

• मोड़ी हुई जिह्वा के प्रभाव से ग्रन्थियों के रस-स्राव की क्रिया में वृद्धि होती है इससे स्वास्थ्य को अपूर्व लाभ पहुँचता है। लार की उत्पत्ति होने से भूख-प्यास का अनुभव नहीं होता।

• भूमि के नीचे अधिक अवधि तक रहने वाले साधक पुरुष प्रायः खेचरी मुद्रा में ही अभ्यस्त रहते हैं। इसके प्रभाव से इच्छित अवधि तक श्वास रोकने में समर्थ हो जाते हैं।

• गले के दोनों ओर धमनी एवं जरानाल (केरोटिड साइनस) नामक दो विशेष अंग होते हैं। इनका कार्य रक्त प्रवाह एवं उसके दबाव पर नियंत्रण रखना है। यदि रक्त-दाब किसी तरह घट जाता है तो इसका पता ये दोनों केरोटिड साइनस ही लगाते हैं तथा तत्सम्बन्धी आवश्यक संदेश मस्तिष्क केन्द्रों को भेजते हैं। मस्तिष्क पर इसकी प्रतिक्रिया तुरन्त होती है और वह हृदय की धड़कन तथा आर्टिरिओलस (नन्हें रक्त पात्र) की संकुचन दर को बढ़ा देता है। परिणामस्वरूप रक्त-दाब बढ़कर सामान्य अवस्था में आ जाता है। इसी प्रकार यदि रक्त-दाब बढ़ जाता है तो ये करोटिड उसका पता लगाते हैं और मस्तिष्क तक सूचना पहुंचाते हैं। इस परिस्थिति के निराकरण हेतु ठीक विपरीत कदम उठाया जाता है।

• खेचरी मुद्रा के दौरान गले में स्थित इन दोनों साइनस पर प्रभाव पड़ता है इसके कारण दोनों साइनस पर इस प्रकार की प्रतिक्रिया होती है।

• खेचरी मुद्रा को उज्जायी प्राणायाम पूर्वक किया जाए तो इसका प्रभाव भौतिक, मानसिक एवं बायोप्लाज्मिक स्तर पर होता है।

• इस मुद्राभ्यास में गहरे या मंद श्वास के फलस्वरूप मन और शरीर तुरन्त शान्त एवं शिथिल हो जाते हैं तथा बायोप्लाज्मिक शरीर भी संतुलित हो जाता है।

• इसके अतिरिक्त गले से निकलने वाली ध्वनि के प्रभाव स्वरूप हमारा सम्पूर्ण व्यक्तित्व सौम्य हो जाता है। यदि कोई भी व्यक्ति अन्य विचारों पर से

ध्यान हटाकर पर्याप्त समय तक उस ध्वनि के प्रति सजग रहे तो वह उसके लाभों को तुरन्त अनुभव कर सकता है।

• सामान्य तौर पर खेचरी मुद्रा का अभ्यास निराशाजनक तनावों से उत्पन्न होने वाली हर तरह की व्याधियों को दूर करता है।[32]

• आध्यात्मिक स्तर पर खेचरी मुद्रा का अभ्यस्त साधक स्थूल और सूक्ष्म, शरीर और आत्मा के मध्य भेद ज्ञान कर लेता है। वह कर्मों में लिप्त एवं काल से भी बाधित नहीं होता। इसमें चित्त भृकुटी रूपी शून्य में विचरण करता है और जिह्वा कपाल-कुहर रूपी आकाश में स्थित रहती है। इसी कारण सिद्धयोगी इसे खेचरी मुद्रा कहते हैं।

• जो योगवत स्थिर रहकर, जिह्वा को उलटाकर सोमपान करता है वह अर्धमास में ही मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेता है। स्पष्टार्थ है कि जिस योगी का शरीर प्रतिदिन सोमद्रव्य से पूर्ण रहता है उसको सर्पदंश का विष नहीं चढ़ता। जिस प्रकार अग्नि लकड़ी को और दीपक तेल या बाती को नहीं छोड़ता उसी प्रकार सोमद्रव्य से पूर्ण देही को आत्मा नहीं छोड़ती। जैन मान्यतानुसार वह सर्व कर्मों से रहित सिद्ध पर्याय को उपलब्ध करती है।

• योग विज्ञान के अनुसार प्रत्येक मनुष्य के तालु मूल में एक विवर से चन्द्ररस रूपी अमृत स्रवित होता रहता है वह नाभि प्रदेश पर पहुंचकर भस्म हो जाता है, उसका नष्ट होना मृत्यु का कारण है अत: उसे यत्नपूर्वक नाभि प्रदेश तक पहुँचने न देना खेचरी मुद्रा कहलाती है।

• इस मुद्रा प्रक्रिया में जिह्वा को इतना दीर्घ कर लेना चाहिए कि वह भृकुटि प्रदेश का स्पर्श करने लगे। उसके बाद की स्थिति में जिह्वा को मुख में उस विवर तक ले जाना चाहिए जहाँ में स्रवित अमृत को ग्रहण कर सकें। ऐसा करने से हमेशा के लिए मृत्यु भय समाप्त हो जाता है।

जिस प्रकार सृष्टि का मूल बीज प्रकृति है, देवों में श्रेष्ठ परमात्मा है और अवस्थाओं में एकमात्र मनोन्मनी अवस्था है उसी प्रकार मुद्राओं में एकमात्र खेचरी मुद्रा मानी गई है।[33]

9. विपरीतकरणी मुद्रा

यहाँ विपरीत का अर्थ है उल्टा, करणी का अर्थ है करना और मुद्रा का अर्थ है शरीर एवं मन की एक विशेष स्थिति। इस शाब्दिक अर्थ के अनुसार शरीर की वह स्थिति जिसमें चेतना की अवस्था परिवर्तित हो जाती है विपरीतकरणी मुद्रा कहलाती है।

घेरण्डसंहिता के अनुसार नाभिमूल में सूर्यनाड़ी और तालुमूल में चन्द्र नाड़ी है। सहस्त्रार में अमृतधारा का प्रवाह रहता है। सूर्यनाड़ी के अमृत के पीने से प्राणी की मृत्यु होती है परन्तु चन्द्र नाड़ी का अमृत पान करने पर मृत्यु का भय नहीं रहता। अतएव सूर्यनाड़ी को ऊपर और चन्द्र नाड़ी को नीचे की ओर करना विपरीतकरणी मुद्रा है।[34]

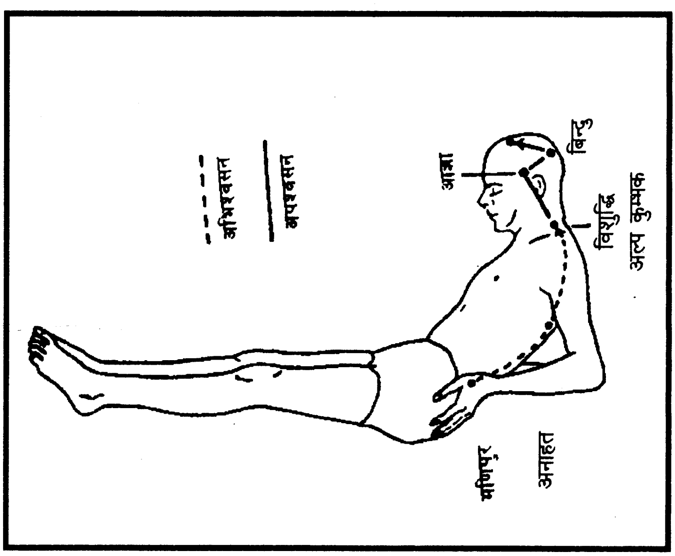

विपरीतकरणी मुद्रा

विपरीतकरणी मुद्रा एक उत्तम प्रकार की क्रिया है। इसका वर्णन योग एवं तन्त्र के अनेक परम्परागत शास्त्रों में मिलता है। हठयोग प्रदीपिका में इसका विवेचन करते हुए कहा गया है कि चन्द्रमा (बिन्दु) से जो अमृत टपकता है वह साधारणतः सूर्य (नाभिस्थल का पिछला हिस्सा मणिपुर चक्र) के द्वारा सेवन कर लिया जाता है। चन्द्रमा (बिन्दु) की स्थिति ऊपर की ओर है तथा सूर्य की स्थिति

नीचे की ओर है।[35] जैन भूगोल के अनुसार भी ज्योतिष ग्रहों में चन्द्र का स्थान ऊपर और सूर्य का स्थान उससे नीचे माना गया है। परिणामस्वरूप सूर्य की प्रचंड अग्नि के कारण बिन्दू से झरता शीतल अमृत नष्ट हो जाता है। उस अमृत के नष्ट होने से यह जीव शीघ्रमेव जरा अवस्था को प्राप्त हो जाता है। उस अमृत तत्त्व को सूर्य से बचाने के लिए शरीर को विपरीत स्थिति में रखा जाता है तब सूर्य (नाभि) ऊपर की ओर रहता है तथा चन्द्रमा (तालु-मुखभाग) नीचे की ओर हो जाता है। इस अभ्यास को ही विपरीतकरणी मुद्रा कहते हैं। अध्यात्म की भाषा में इसे निवृत्तिमार्ग (मूल स्रोत की ओर लौटना) कह सकते हैं क्योंकि इसमें सूर्य और चन्द्र का स्थान परिवर्तित होने से अवस्थागत परिवर्तन हो जाता है। सामान्यतया चन्द्रमा के अमृत का प्रवाह सूर्य की ओर होना प्रवृति मार्ग (सांसारिक सक्रियता का मार्ग) का द्योतक है। संसार के अधिकांश लोगों की यह अवस्था है परन्तु आध्यात्मिक जीवन में इस प्रक्रिया को उलट दिया जाता है। वस्तुतः इस मुद्रा का प्रयोजन प्रवृत्ति मार्ग से निवृत्ति मार्ग की ओर लौटना, स्थूल चेतना से सूक्ष्म चेतना की अनुभूति करना है।

विधि

◆ संलग्न चित्र में दर्शायी गयी मुद्रा के अनुसार शरीर को उल्टी स्थिति में करें।

◆ जमीन पर कम्बल बिछा लें।

◆ पीठ के बल लेट जायें। पैरों को सीधे तथा एक साथ रखें।

◆ हथेलियों को ऊपर की ओर रखते हुए हाथों को बगल में रखें।

◆ सम्पूर्ण शरीर को शिथिल कर दें।

◆ फिर गहरी श्वास लेते हुए दोनों पैरों को सीधे तथा एक साथ रखते हुए ऊपर उठायें। पैरों को सिर के ऊपर से उठाते जायें।

◆ तत्पश्चात भुजाओं को जमीन की ओर दबाते हुए नितम्बों को धरती से ऊपर उठाते जायें और पैरों को सिर की तरफ और सरकायें।

◆ तदनन्तर भुजाओं को मोड़कर हाथों से नितम्बों को सहारा दें। धड़ को भुजाओं के सहारे से संभाले रहें।

◆ पैरों को इस तरह उठायें कि वे लम्बवत खड़े हो सकें।

◆ नेत्रों को बन्द रखते हुए खेचरी मुद्रा का प्रयोग करें।

◆ इस मुद्रा के दरम्यान अपनी सजगता को मेरुदण्ड पर स्थित मणिपुर चक्र पर केन्द्रित करें।

यह प्रथम आवृत्ति का प्रारंभिक चरण है।

◆ श्वास लेते समय ऐसा अनुभव करने का प्रयत्न करें कि प्राण का प्रवाह मणिपुर चक्र से विशुद्धि चक्र की ओर हो रहा है।

◆ आप कल्पना करें कि प्राण का प्रवाह मधुमय अमृत धारा के रूप में मेरुदंड के मार्ग में हो रहा है।

ऐसा अनुभव करते जायें कि यह अमृत विशुद्धि चक्र में एकत्रित हो रहा है।

◆ कुछ सैकेण्ड तक श्वास को रोकें तथा ऐसा अनुभव करें कि विशुद्धि चक्र में शीतल अमृत झर रहा है।

◆ तत्पश्चात श्वास छोड़े एवं अनुभव करें कि प्राण विशुद्धि चक्र से आज्ञा एवं बिन्दू चक्र होते हुए अंततः सहस्रार चक्र में पहुँच रहा है। जब प्राण सजगता पूर्वक सहस्रार चक्र तक पहुँचते हैं प्रथम आवृत्ति समाप्त होती है।

◆ इसके बाद पुनः अपनी सजगता को शीघ्रता पूर्वक मणिपुर चक्र पर ले आयें तथा दूसरी आवृत्ति शुरु करें।[36]

संक्षेप में कहें तो सिर को भूमि पर लगाकर दोनों हाथ टेक दें और दोनों पांवों को ऊपर उठाकर कुम्भक के द्वारा श्वास को रोकना विपरीतकरणी मुद्रा कहलाती है।[37]

निर्देश

1. प्रथम दिन थोड़ी देर अभ्यास करें, धीरे-धीरे अवधि बढ़ायें। 15 मिनट से अधिक देर तक अभ्यास किया जा सकता है।
2. क्षमता के अनुपात में क्रिया की पुनरावृत्ति 21 बार कर सकते हैं। इस अभ्यास की औसतन अवधि 10 मिनट मानी जाती है। प्रथम दिन 5 आवृत्तियाँ ही करें। फिर प्रतिदिन एक-एक आवृत्ति बढ़ाते जायें।
3. इस मुद्रा के अभ्यास हेतु उज्जायी प्राणायाम का ज्ञान आवश्यक है। इस दौरान उज्जायी प्राणायाम करना चाहिए।
4. श्वास लेते समय चेतना एवं श्वसन को मणिपुर चक्र से विशुद्धि चक्र की ओर जाते हुए अनुभव करें तथा श्वास छोड़ते समय चेतना को विशुद्धि चक्र पर केन्द्रित करें। प्रत्येक आवृत्ति में यह विधि करनी चाहिए।

5. प्रारंभ में इस क्रिया की सम्पूर्ण अवधि के दौरान अंतिम स्थिति में रुकने में कठिनाई होगी, परन्तु नियमित अभ्यास से यह समस्या नहीं रहेगी। अतः किसी भी प्रकार से अपने आपको तथा अपने हाथों को व्यवस्थित रखना है।

सुपरिणाम

यह मुद्रा अनेक दृष्टियों से अत्यन्त आवश्यक और हितकारी सिद्ध होती है।

- इस मुद्राभ्यास के द्वारा भौतिक रूप से नासारन्ध्रों में चलने वाले इड़ा-पिंगला के श्वास प्रवाहों में सन्तुलन स्थापित होता है जो आध्यात्मिक जीवन में अनिवार्य है।
- ध्यानाभ्यास हेतु दोनों नासारन्ध्रों में प्रवाहों का सन्तुलित होना आवश्यक है। इससे अत्यधिक अन्तर्मुखता एवं आन्तरिक जगत के प्रति तल्लीनता बढ़ती है। इसी के साथ बाह्य जगत के विक्षेपों के बीच तलवार की धार के समान मार्ग पर चलने में मदद मिलती है। इड़ा-पिंगला का समान प्रवाह साधक को चित्त-लयता की स्थिति से बचाता है।
- विपरीतकरणी मुद्राभ्यासी का श्वास प्रवाह शीघ्र ही समान रूप से प्रवाहित होने लगता है। जब श्वास-प्रश्वास में सन्तुलन आता है तब आगे की गतिविधियाँ अधिक प्रभावपूर्ण और शक्तिशाली बन जाती है।
- हठयोग प्रदीपिका के मतानुसार जो प्रतिदिन विपरीतकरणी मुद्रा का अभ्यास करता है उसकी जठराग्नि प्रखर होती है, चयापचय की दर बढ़ जाती है। इसलिए अभ्यासी को पर्याप्त मात्रा में भोजन करना चाहिए अन्यथा जठराग्नि थोड़े ही समय में शरीर को क्षीण बना देती है।
- प्रारंभ में इस मुद्रा का अभ्यास थोड़े क्षणों के लिए करना चाहिए धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ाते हुए, छः महीने तक नियमित अभ्यास करने से शरीर की झुर्रिया एवं सफदे बाल गायब हो जाते हैं।[38]
- विपरीतकरणी मुद्रा के अभ्यास का दूसरा प्रयोजन यह है कि इससे जागरूकता बढ़ती है। शरीर के विपरीत अवस्था में रहने से मस्तिष्क में रक्त अधिक मात्रा में जाता है जो जागरूकता का हेतु बनता है।
- इस अभ्यास के फलस्वरूप व्यक्ति की स्थूल चेतना शनैः-शनैः सूक्ष्म में परिवर्तित होती है। अतः इसे गोपनीय मुद्रा कहकर सर्वोच्च मुद्रा के रूप में रखा गया है।

• यहाँ ध्यातव्य है कि शरीर में दो अवयव बहुत उपयोगी माने जाते हैं उनमें से एक नाभि के नीचे और दूसरा तालु के ऊपर होता है। उस नीचे के अवयव में जो उष्णता होती है वह तालु से निकलने वाले रस को सुखा डालती है। यदि तालु से निर्झरित अमृत रस को सुरक्षित रखा जा सके तो आयु शीघ्र नष्ट नहीं होती, विपरीतकरणी मुद्रा उस अमृत रस को संग्रहित एवं संवर्द्धित करके रखती है।

• इस मुद्राभ्यास का महत्त्वपूर्ण कारण यह भी है कि इसके सहयोग से वृद्धावस्था नहीं आती है और जन्म-मरण की परम्परा का विच्छेद होता है। साधक सब लोकों में सिद्धि सम्पन्न एवं प्रलय में भी दुःखी नहीं होता।[39]

• भौतिक स्तर पर यह मुद्रा सप्त चक्रों आदि की सुप्तशक्तियों को जागृत कर साधक के इच्छित कार्य को पूर्ण करती है। इससे संप्रभावित चक्र आदि का चार्ट निम्न प्रकार है-

चक्र– मणिपुर एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** नाड़ी तंत्र, पाचन तंत्र, स्वरतंत्र, यकृत, तिल्ली, आँते, कान, नाक, गला, मुख।

10. योनि मुद्रा

संस्कृत भाषा का योनि शब्द अनेक अर्थों का द्योतक है। संस्कृतकोष में योनि के निम्न अर्थ व्यवहृत हैं– गर्भाशय, जननेन्द्रिय, जन्मस्थान, मूला स्थान, उद्गमस्थल। यहाँ योनि से तात्पर्य मूलस्थान एवं उद्गमस्थल से है।

हर मानव शरीर में नौ अशुचि स्थान (द्वार) हैं जहाँ से प्रतिसमय अशुचि युक्त द्रव्य बहते रहते हैं उन द्वारों को अशुचि द्रव्यों का उद्गम या मूलस्थान कहा जा सकता है। इस मुद्राभ्यास में सप्त द्वारों को अवरूद्ध कर आभ्यन्तर शक्ति से तादात्म्य स्थापित किया जाता है इसलिए इसे योनि मुद्रा नाम से संबोधित किया है, योनि मुद्रा का साधना मूलक अर्थ मूल या स्रोत की प्रार्थना है अर्थात नाद के मूल स्रोत में लीन होने की विधि योनि मुद्रा है।

इसे षणमुखी मुद्रा भी कहते हैं। वस्तुतः यह मुद्रा सात द्वारों से संबंधित है। इसे षणमुखी मुद्रा कहने का कारण यह है कि इस अभ्यास में उपरोक्त सात द्वारों को बन्दकर उनके माध्यम से प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त किया जाता है क्योंकि बाह्य

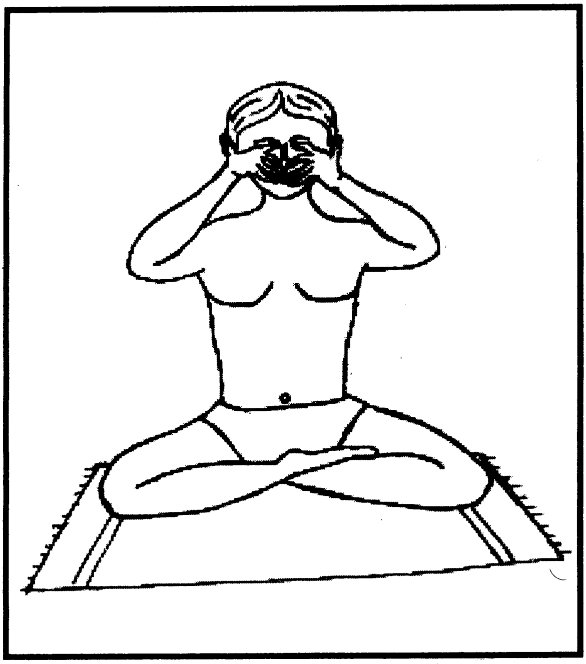

योनि मुद्रा

जगत से सम्पर्क स्थापित करने में भी ये ही द्वार मूलभूत हैं। इन द्वारों को बन्द करने से बाह्यदृष्टि अन्तर्दृष्टि का निमित्त बन जाती है। इस अभ्यास को बद्धयोनि आसन भी कहते हैं। यहाँ बद्ध का तात्पर्य सातों दरवाजों को बन्द करने से है।[40]

इस तरह कहा जा सकता है कि इस मुद्रा का अभ्यास बहिर्मुखी शक्ति प्रवाह को अन्तर्मुखी करने के प्रयोजन से किया जाता है।

विधि

◆ इस मुद्रा की सफलता के लिए सिद्धासन या सिद्धयोनि आसन में बैठें। तदनन्तर सम्पूर्ण शरीर को शिथिल कर दें। मेरुदण्ड और गर्दन एक सीध में रखें।

◆ धीरे-धीरे गहरा श्वास लें।

◆ तत्पश्चात दोनों हाथों के अंगूठों से कर्णयुगल को, दोनों हाथों की तर्जनियों से नेत्रयुगल को, मध्यमा अंगुलियों से नासारन्ध्रों को, अनामिका और कनिष्ठिका से होठों को हल्के से दबाकर बन्द कर दें।[41]

◆ श्वास को अन्दर रोककर रखें (अंतर्कुंभक करें)।

◆ हिन्दू लोग सिर पर जहाँ चोटी रखते हैं उस स्थान को बिन्दू कहते हैं। उसी स्थान पर अन्दर सिर के मध्य भाग में या दाहिने कान में आवाजों को सुनने का प्रयास करें।

प्रारंभ में अनेक आवाजें सुनाई देगी अथवा कुछ सुनाई न भी दें। उसकी चिन्ता न करें। केवल सुनते जायें। अपनी श्वास को यथासंभव अन्दर रोके रहें।

बाद में नासारन्ध्रों पर से अंगुलियों के दबाव को कम करते हुए श्वास को बाहर छोड़ दें। यह प्रथम आवृत्ति हुई।

◆ अब पुनः श्वास को अन्दर लें। नासारन्ध्रों को बन्द कर दें और अन्तर्कुंभक करें। अन्दर की आवाजों को सुनने का प्रयास करें। कुछ समय पश्चात नासारन्ध्रों को मुक्त कर दें और श्वास को बाहर छोड़ दें।[42]

◆ इस प्रकार अभ्यास को दोहराते जायें।

निर्देश

1. सम्पूर्ण अभ्यास काल में अन्तर्कुंभक करते समय आपकी सजगता आंतरिक नाद पर ही रहे।
2. प्रारम्भ में शायद आवाजों का कोलाहल सुनाई दे सकता है, लेकिन अभ्यास करते-करते एक विशेष प्रकार की आवाज सुनाई देने लगेगी।
3. जब आपको कोई स्पष्ट आवाज सुनाई दे तो उसे सजगता पूर्वक सुनते जायें।

   धीरे-धीरे वह आवाज अधिक स्पष्ट होती जायेगी।

   उस ध्वनि को ध्यान से सुनते जायें।
4. यदि आपकी संवेदनशीलता अधिक विकसित है तो स्पष्ट आवाज के पीछे पुनः एक नई मन्द आवाज उभरने लगेगी। इस अवस्था में प्रथम आवाज को छोड़कर अपनी सजगता को दूसरी मन्द आवाज पर केन्द्रित करें। इस प्रकार अभ्यास करते जायें।

   एक आवाज को सुनना, कुछ समय पश्चात उसको छोड़कर दूसरी सूक्ष्मतर आवाज को सुनना।

   आप जितना सूक्ष्म आवाजों को सुनते जायेंगे उतनी ही गहराई से अपने अस्तित्व की खोज करने में सफल होंगे।

5. इस अभ्यास काल में पूरे समय पीठ सीधी रखनी चाहिए। यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यदि पीठ सीधी नहीं रहेगी तो आप बिन्दू भेदन की संवेदनाओं का अनुभव नहीं कर पायेंगे।
6. इस अभ्यास में वज्रोली मुद्रा का प्रयोग अवश्य करें, क्योंकि उसके प्रभाव से इससे अनुभव की जाने वाली संवेदनाएँ बढ़ जाती है। इसी के साथ वज्रनाड़ी का संकुचन गुदा द्वार की मांसपेशियों के संकुचन बिना ही होने लगेगा। इससे उत्पन्न संवेदनाएँ उस विद्युत प्रवाह के समान होगी जो वज्रनाड़ी में मस्तिष्क की ओर जाती है।
7. अपनी सजगता को बिन्दू भेदन के ठीक केन्द्र बिन्दू पर केन्द्रित करने का प्रयत्न करें। इसकी संवेदना बिजली के झटके के समान होती है।
8. सम्पूर्ण अभ्यास काल में नासारन्ध्रों पर रखी हुई अंगुलियों को श्वास लेते तथा छोड़ते समय हटा लेना चाहिए।

सुपरिणाम

• योनि मुद्रा आत्माभिमुखी साधकों के लिए अत्यावश्यक एवं गोपनीय अभ्यास है।

• यह प्रक्रिया नाद योग की है जिसमें अभ्यासी साधक बिन्दू से उत्पन्न होने वाली विभिन्न सूक्ष्म ध्वनियों का अनुभव प्राप्त करता है। योनि मुद्रा (नाद योग) के अभ्यास के प्रारंभ में अभ्यासी को अनेक प्रकार की ध्वनियाँ सुनाई देती हैं; लेकिन अभ्यास की उच्च अवस्था में ये उत्तरोत्तर सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होती जाती है।[43] जिससे अन्त में व्यक्ति आन्तरिक नाद सुन सकता है वही आत्मानुभूति अथवा आत्मसुख का आस्वाद होता है।

• जब मधुमक्खी फूलों में से मधु एकत्र करती है तब वह फूलों की सुगंध या दुर्गंध का विचार नहीं करती। उसी प्रकार नाद में लीन मन बाह्य बाधाओं से, विचारों से प्रभावित नहीं होता।[44] इससे समता योग का विकास होता है। गहराई से अनुभव कर देखें तो पायेंगे कि मन जब नाद पर केन्द्रित हो जाता है तब वह पंखविहीन पक्षी के समान निष्क्रिय-निश्चल हो जाता है, इसे समाधि अवस्था का एक प्रकार कह सकते हैं।[45]

• प्राचीन ग्रन्थों में नाद को चार भागों में विभाजित किया गया है। उनमें अन्तिम नाद 'परानाद' का स्पर्श करना ही योनि मुद्रा की सिद्धि है। परानाद

भावातीत नाद है और नाद का मूल स्रोत है। इसे परम चेतना की अवस्था में ही सुना जा सकता है। इस नाद की तरंगें इतनी तीव्र होती है कि उसका वर्णन ही नहीं किया जा सकता। यह निःशब्द नाद है तथा समाधि अवस्था से संबंधित है। इसे अनहद नाद भी कह सकते हैं। इस स्थिति तक पहुँचना परम चेतना की अवस्था कहलाती है। योनि मुद्रा के द्वारा निःसन्देह इस अवस्था का साक्षात्कार किया जा सकता है।

• इस अभ्यास की मदद से जब मन नाद में लीन होता है तब ध्यानावस्था की प्राप्ति भी होती है। इससे व्यक्ति अपने अन्तराकाश में ऊँची उड़ान भर सकता है। इस तरह ध्यानावस्था के जो मूलभूत लाभ हैं, वे सभी नादयोग-साधना द्वारा प्राप्त किये जा सकते हैं।

• अनुभवसिद्ध योगी पुरुषों ने इसका महत्त्व दर्शित करते हुए इतना तक कहा है कि इसका साधक ब्रह्म हत्या, भ्रूणहत्या, सुरापान आदि पापों से मुक्त हो जाता है। संसार के सभी महापाप-उपपाप मुद्रा सिद्धि से मिट जाते हैं इसलिए मोक्षार्थियों को इसका अभ्यास करना चाहिए।[46]

• सामान्य स्तर पर यह मुद्रा मूलाधार चक्र आदि विशिष्ट स्थानों का भेदन कर साधक को स्वयं में असीम शक्ति का अहसास करवाती है। इस मुद्रा से प्रभावित शक्ति केन्द्र आदि इस प्रकार हैं-

चक्र– मूलाधार एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, पीयूष एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** नाक, कान, गला, मुख, स्वरयंत्र, हृदय, फेफड़ें, भुजाएं, रक्त संचरण तंत्र आदि।

11. वज्रोली मुद्रा

वज्रोली शब्द की व्युत्पत्ति वज्र से हुई है जिसके अनेक अर्थ हैं। यहाँ वज्रोली शब्द से तात्पर्य वज्र नामक नाड़ी से है। शरीर के अधोभाग में वज्रनामक नाड़ी है जो जननेन्द्रिय को मस्तिष्क से जोड़ती है तथा प्रजनन अंगों में प्राण-शक्ति का प्रवाह करती है। वज्र नाड़ी के सहयोग द्वारा जिस मार्ग से जननेन्द्रिय एवं मस्तिष्क का सम्बन्ध जुड़ता है वह चेतना का भी एक मार्ग है जिसका सम्बन्ध सुषुम्ना मार्ग से है। यह मार्ग सीधा आत्मचेतना से सम्बन्धित है। इस परिचय से स्पष्ट होता है कि वज्रोली मुद्रा चेतना प्रधान एवं अध्यात्म प्रधान मुद्रा है।

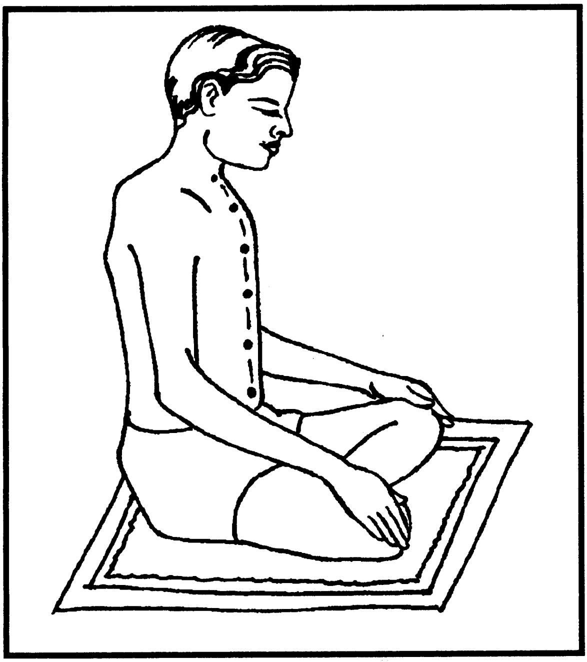

वज्रोली मुद्रा

इस मुद्रा का मुख्य उद्देश्य रेतस को ओजस में परिवर्तित करना है इस प्रक्रिया को ऊर्ध्वरेता कहा जाता है। प्राण-ओजस एवं रेतस का सार तत्त्व है। वज्रोली मुद्रा स्थूल रेतस को ओजस में परिशुद्ध करने में सहायता करती है।

विधि

वज्रोली मुद्रा के दो प्रकार हैं एक का सम्बन्ध मैथुन से है और दूसरे का सहज राजयोग से।

प्रथम प्रकार— आरामदायक स्थिति में बैठकर दोनों हाथों को दृढ़तापूर्वक भूमि पर टेकना तथा दोनों पाँवों को एवं शिर को आकाश में उठा देना वज्रोली मुद्रा का प्रथम प्रकार है।[47] यह प्रकार कम प्रचलित है।

द्वितीय प्रकार— किसी भी आरामदायक स्थिति में बैठ जायें, फिर दोनों हाथों को दोनों घुटनों पर रख दें तथा नेत्रों को बन्द करते हुए सम्पूर्ण शरीर को शिथिल करें।

◆ फिर मूत्र प्रणाली का संकोचन करते हुए प्रजनन अंगों को और पेट के निम्न भाग पर तनाव लाते हुए ऊपर की ओर खींचें।

◆ यह खिंचाव ठीक उसी प्रकार से हो जैसे कि मूत्र-त्याग क्रिया को कुछ समय तक रोकने के लिए किया जाता है।

◆ पुरुषों को शुक्र नाड़ी और महिलाओं को योनिमार्ग का संकुचन करना चाहिए। यही वज्रोली मुद्रा की सरल विधि है।[48]

निर्देश

1. वज्रोली मुद्रा का अभ्यास सुयोग्य गुरु अथवा अनुभवी साधक के निर्देशन में ही करें, अन्यथा स्थायी चोट पहुँचने की संभावना रहती है।
2. एक विधि के अनुसार मूत्र नलिका में 12 इंच लम्बी चाँदी की नली का प्रवेश करवाया जाता है। इस नलिका से पानी ऊपर की ओर खींचते हैं, इस क्रिया में पूर्णतया प्राप्ति के उपरांत इसी नली से मधु और पारा ऊपर खींचा जाता है।

   दीर्घ अवधि के अभ्यास के उपरान्त नलिका की मदद के बिना भी उपरोक्त क्रिया सम्पन्न की जा सकती है।[49]
3. इस मुद्राभ्यास में चेतना को स्वाधिष्ठान चक्र (मेरुदंड का अन्तिम छोर) पर केन्द्रित करें।

सुपरिणाम

अध्यात्म शक्ति का सम्यक नियोजन करने वाली वज्रोली मुद्रा के निम्न लाभ बतलाये गये हैं-

● प्राचीन ऋषियों ने इसे शक्ति संचार करने वाली और जीवन प्राप्त कराने वाली कहा है इससे माना जा सकता है कि यह मुद्रा शक्तिवाहिनी एवं जीवनदायिनी है।

● योगतत्त्वोपनिषद के अनुसार यह योग मुद्रा योगी पुरुषों के लिए हितकारिणी, सिद्धिदायिनी एवं मुक्ति प्रदायिनी भी कही गई है। इसके प्रभाव से बिन्दू (सहस्रारचक्र तालु का ऊर्ध्व भाग) की सिद्धि होने पर साधक ऊर्ध्वरेतस्तत्त्व में समर्थ हो जाता है और जब बिन्दूपात पर विजय प्राप्त कर ली जाती है तब संसार सृष्टि में ऐसा कोई भी कार्य नहीं जो सिद्ध नहीं हो सकता।[50]

● महर्षि घेरण्ड तो इस मुद्रा का मूल्य यहाँ तक बतलाते हैं कि यदि भोगी

पुरुष भी मुद्रा की साधना कर लें तो उन्हें भी सकल सिद्धियाँ वरदान के रूप में प्राप्त हो सकती है। इससे स्पष्ट है कि वज्रोली मुद्रा से योगी ही नहीं भोगी गृहस्थ भी लाभ उठा सकते हैं।

• इस मुद्रा का नियमित अभ्यास करने से शरीर के सभी अवयव दृढ़ होते हैं। शरीर के वजन में वृद्धि होकर पुष्टि और कान्ति की प्राप्ति होती है।[51]

• इस मुद्राभ्यास के परिणामस्वरूप मनुष्य का मन इतना दृढ़ हो जाता है कि वह शुक्रपात के लिए तैयार ही नहीं होता प्रत्युत वह ऊर्ध्वरेता बन जाता है। इससे साधक पुरुष के वीर्य का संरक्षण होता है। ब्रह्मचर्य पालन के लिए भी सुदृढ़ भूमिका निर्मित होती है। बाह्य स्तर पर यह मुद्रा अनाहत चक्र आदि का विशोधन कर तत्सम्बन्धी शक्तियों को अनावृत्त करती है जिससे इस मुद्रा का उद्देश्य शीघ्र फलीभूत होता है। इस मुद्रा से प्रभावित चक्र आदि का चार्ट निम्न प्रकार हैं-

चक्र– स्वाधिष्ठान एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** जल एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र–** स्वास्थ्य एवं आनंद केन्द्र।

सुस्पष्ट है कि वीर्य और रज की रक्षा के उद्देश्य से वर्णित यह मुद्रा योगी और भोगी दोनों के लिए उपयोगी है।

12 शक्तिचालिनी मुद्रा

इस मुद्रा के नाम से ही यह स्पष्ट होता है कि यह मुद्रा शक्ति को संचालित/जागृत करने के प्रयोजन से की जाती है। शक्ति का अर्थ है- ऊर्जा, प्राण या कुंडलिनी और चालिनी का अर्थ है- चलाना या घुमाना। इस परिभाषा के अनुसार इसे प्राण संचालन या कुंडलिनी को जगाने वाली क्रिया भी कहते हैं।

योग विज्ञान के अनुसार आत्मा की प्रमुख शक्ति शरीर के अधोभाग में मूलाधार चक्र में है। इसी मूलाधार चक्र में प्राकृतिक कुण्डलिनी शक्ति साढ़े तीन लपेटे लगाये हुए सर्पिणी के रूप में सो रही है। जब तक कुण्डलिनी सोती रहती है तब तक मनुष्य की शक्तियाँ जागृत नहीं होती। कुण्डलिनी के जागते ही उसका अंग-अंग क्रियाशील हो उठता है। जिस प्रकार कुंजी से ताला खुलने पर ही किवाड़ खुलता है वैसे ही कुण्डलिनी के प्रकट होने पर ही ब्रह्मरन्ध्र खुल सकता है उसी के जागरणार्थ इस मुद्रा का प्रयोग किया जाता है।

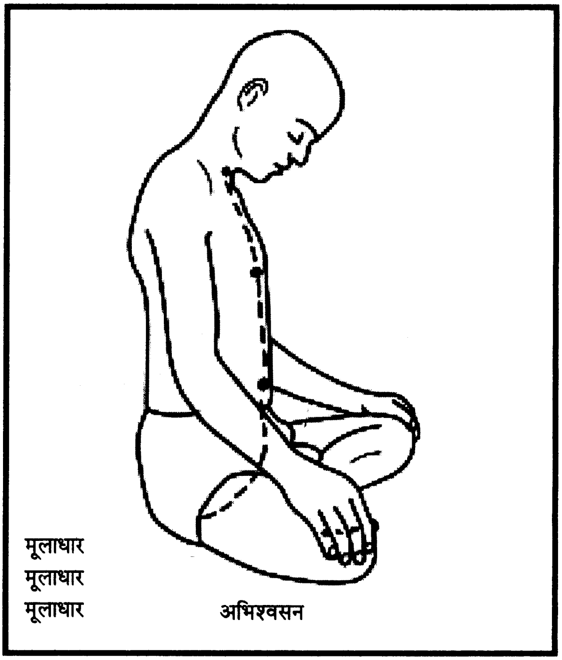

शक्तिचालिनी मुद्रा-1

विधि

◆ घेरण्ड संहिता के अनुसार इस मुद्रा के सम्यक परिणाम की प्राप्ति हेतु शरीर पर भस्म रमाकर सिद्धासन में बैठ जायें।

◆ फिर एक बिलांद लम्बी और चार-पाँच सेंटीमीटर चौड़ी कोमल श्वेत वस्त्र की डोरी से, नाभि के अग्रभाग पर कमर में बांध लें। इसके सिवाय शरीर पर अन्य वस्त्र न रहें।

◆ तदनन्तर नासिका-छिद्र द्वारा प्राण को भीतर खींचे और फिर अपान वायु को ऊपर की ओर प्रेरित कर उड्डीयान बन्ध द्वारा दोनों को मिलायें।

◆ जब तक सुषुम्ना द्वार से गमन करती हुई वायु प्रकट न हो, तब तक अश्विनी मुद्रा के द्वारा गुह्यदेश को संकुचित करके रखें। इस प्रकार वायु के रुकने से कुम्भक द्वारा सर्परूपिणी कुण्डलिनी जागृत होकर मार्ग में ऊपर की ओर खड़ी हो जाती है इसे शक्तिचालिनी मुद्रा कहते हैं।[52]

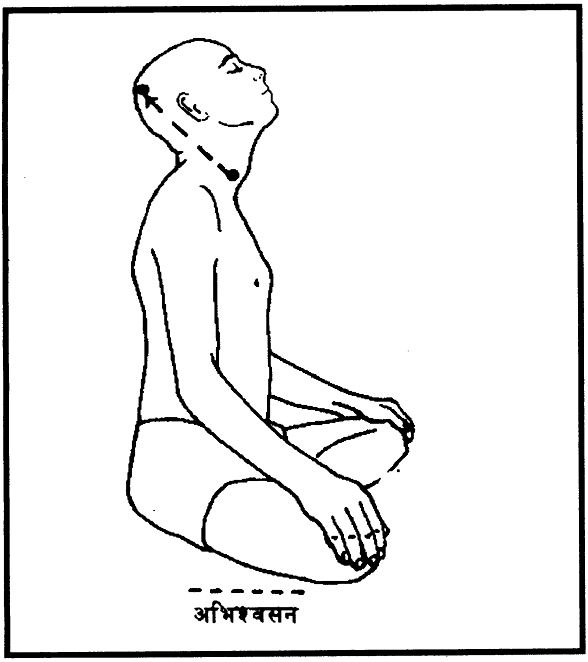

शक्तिचालिनी मुद्रा-2

किन्हीं मान्यतानुसार शक्तिचालिनी मुद्राभ्यास की निम्न विधि है।[53]–

◆ आरामदायक सिद्धासन या सिद्धयोनि आसन में बैठ जायें।

◆ अपनी पीठ सीधी रखें। सम्पूर्ण अभ्यास काल में आँखें बंद रखें। खेचरी मुद्रा का प्रयोग करें।

◆ गहरी श्वास छोड़ें। सिर को थोड़ा आगे झुकायें अपनी चेतना को मूलाधार चक्र पर ले जायें। मानसिक रूप से मूलाधार-3 मंत्र का उच्चारण करें। तत्पश्चात उज्जायी प्राणायाम करते हुए सजगता का सामने की ओर से आरोहण करें। आरोहण करते समय क्रमशः स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत एवं विशुद्धि चक्र स्थानों के प्रति सजग रहें। (चित्र नं. 1)

◆ जैसे ही आपकी सजगता विशुद्धि चक्र से बिन्दू पर पहुँचें, मस्तक को थोड़ा ऊपर उठायें (चित्र नं. 2)

◆ बिन्दू पर पहुँचते ही गहरा श्वास लें और कुंभक (श्वास रोकने की क्रिया) करें।

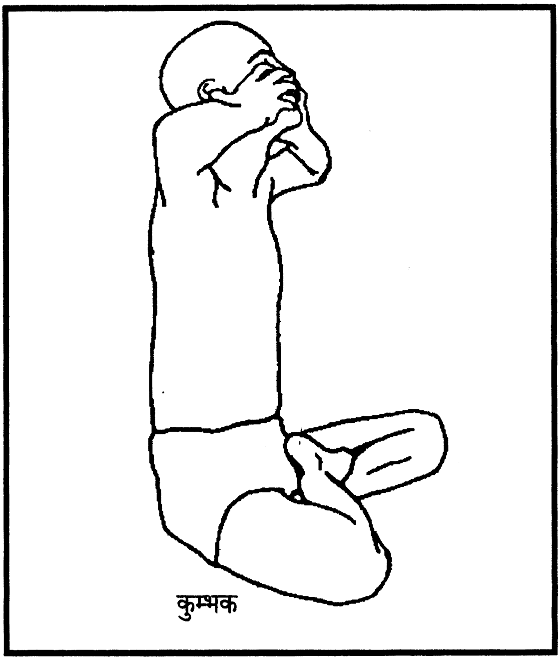

शक्तिचालिनी मुद्रा-3

◆ तत्पश्चात योनि मुद्रा का अभ्यास करें। इसमें आँखों, कानों, नासिका और होठों को अपनी अंगुलियों एवं अंगूठों से बन्द कर दें। (चित्र नं. 3)

◆ अपनी सजगता को अवरोहण (मेरूदंडीय मार्ग) एवं आरोहण (सामने के मार्ग) में लगातार वृत्त के रूप में घूमने दें।

◆ इसी के साथ एक पतले एवं हरे सर्प को अपनी सजगता के साथ उस मार्ग में घूमता हुआ देखने का प्रयास करें।

◆ श्वास रोके रहें। साँप मेरुदंडीय मार्ग में बिन्दू से मूलाधार तक नीचे एवं सामने के मार्ग में मूलाधार से बिन्दू तक ऊपर जाता है।

इस सर्प की गति अपनी सजगता की गति से मिली हुई होनी चाहिए।

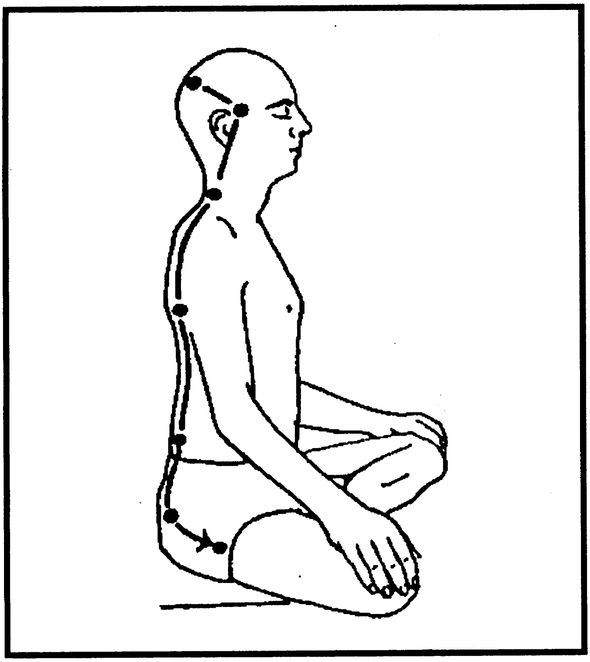

शक्तिचालिनी मुद्रा-4

◆ तदनन्तर उज्जायी प्राणायाम से रेचक करते हुये अवरोहण मार्ग में क्रमशः आज्ञा, विशुद्धि, अनाहत, मणिपुर, स्वाधिष्ठान एवं मूलाधार चक्र-स्थानों के प्रति सजग होते जायें। (चित्र नं. 4)

◆ जब सजगता मूलाधार चक्र पर पहुँच जायें तो रेचक क्रिया पूर्ण कर लें।

◆ तत्पश्चात सिर को थोड़ा आगे झुकायें। इस क्रिया की यह प्रथम आवृत्ति है। इसके तुरन्त बाद द्वितीय आवृत्ति शुरु करें। इसकी कुल पाँच आवृत्तियाँ करनी चाहिए।

निर्देश

1. महर्षि घेरण्ड के अनुसार कुण्डलिनी शक्ति के जागरण में सहायक इस क्रिया को किसी के सामने न करके एकान्त में करना चाहिए जिससे कि उसकी साधना गुप्त रह सके।[54]
2. इस मुद्रा के दौरान प्राण वायु और अपान वायु का मिलन कराया जाता है जो कि अत्यन्त दुष्कर कार्य है। इस क्रिया में किसी तरह की गड़बड़ी

न हो अतः किसी अनुभवी सद्गुरु के उपदेशानुसार उन्हीं की देख-रेख में करनी चाहिए।

3. अश्विनी मुद्रा के अभ्यास के उपरान्त भी कुछ समय के लिए प्राण वायु एवं अपान वायु को भीतर रोके रखें। उसके बाद ही कुण्डलिनी जागरण की क्रिया में प्रवृत्त होना चाहिए।
4. महर्षि घेरण्ड के अनुसार शक्तिचालिनी मुद्रा का अभ्यास करने के पश्चात ही योनि मुद्रा का अभ्यास करना चाहिए। उसके बिना योनि मुद्रा सिद्ध नहीं होती।[55]
5. प्रस्तुत मुद्रा का अभ्यास एकान्त, शान्त एवं स्थिर चित्तपूर्वक प्रातःकाल एवं सन्ध्या काल में करना अधिक उपयुक्त है।

इसकी सिद्धि के लिए नियमित 15 मिनट का प्रयोग अवश्य करना चाहिए।

सुपरिणाम

वैदिक परम्परा के प्राचीन ग्रन्थों में इसे प्रयत्न पूर्वक गोपनीय रखते हुए प्रतिदिन अभ्यास करने का निर्देश दिया गया है। इस कथन से यह मुद्रा महत्त्वपूर्ण प्रतीत होती है।

• इस क्रिया के अभ्यास काल में मुख्य रूप से कुण्डलिनी शक्ति को अनावृत्त एवं ऊर्ध्वाभिमुखी करने का प्रयत्न किया जाता है। यह आत्मा की मूल शक्ति है अतः इसे अध्यात्म श्रेणि की मुद्रा कह सकते हैं। जहाँ अध्यात्म शक्ति का विकास होता है वहाँ अन्य शक्तियाँ एवं सिद्धियाँ स्वतः सफलता के द्वार खटखटाने लगती हैं।

• इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए अनुभवी पुरुषों ने कहा है कि अभ्यासी साधक को विग्रह सिद्धि सहित सर्व सिद्धियाँ प्राप्त होती है और सभी रोगों का नाश होता है।[56]

• इस मुद्रा के माध्यम से प्राण और अपान वायु को मिलाया जाता है। इन द्विवायु के संयुक्त होने से साधक ऊर्ध्वरेता बनता है।

• हठयोग प्रदीपिका के अनुसार कुण्डलिनी शक्ति सर्पाकार है और कुंडली मारे हुये बैठी है। यह जब ऊपर की ओर चलती है तब आत्मज्ञान की प्राप्ति

होती है इसमें कोई संदेह नहीं। यह संदर्भ शक्तिचालिनी द्वारा कुण्डलिनी जागृत होने के महत्त्व को दर्शाता है।[57]

• इसी ग्रन्थ में यह भी निरूपित किया गया है कि कुण्डलिनी गंगा और यमुना (इड़ा और पिंगला) के मध्य में रहती है वह जब ऊपर उठती है तब व्यक्ति भगवान विष्णु के पद (परमानन्द) को प्राप्त करता है।[58]

• प्राचीन ग्रन्थों में कुंडलिनी शक्ति को कालग्रासिनी कहा गया है क्योंकि जब कुंडलिनी सुषुम्ना के मार्ग में आगे बढ़ती है तब व्यक्ति कालातीत जगत में प्रवेश करता है।

• हठयोग प्रदीपिका में बताया गया है कि साधक सूर्य (पिंगला) और चंद्र (इड़ा) नाड़ी को नियंत्रित रखे, क्योंकि वे दिन और रात्रि के रूपों में कालाधीन है। इसका रहस्य यह है कि सुषुम्ना (कुंडलिनी का मार्ग) इस काल का भक्षण करती है।[59]

• शक्तिचालिनी मुद्राभ्यास से खेचरी मुद्रा, योनि मुद्रा, उड्डीयान बंध से होने वाले लाभ भी प्राप्त होते हैं।

• यदि इस मुद्रा का ऐतिहासिक पक्ष उजागर किया जाए तो ज्ञात होता है कि इसका विवरण अनेक योग शास्त्रों में विस्तार से उपलब्ध है। तुलनात्मक दृष्टि से योगचूड़ामणि उपनिषद् (श्लोक 107-108), घेरण्ड संहिता (अध्याय 3/44-50) और हठयोग प्रदीपिका (अध्याय 3/104-120) में इस मुद्रा का नाम समान होने पर भी उसके स्वरूप वर्णन में किंचित भिन्नता है।

13. ताड़ागी मुद्रा

तड़ाग शब्द तालाब का अर्थवाची है। जिस प्रकार तालाब स्वच्छ जल से सदैव भरपूर रहता है ग्रीष्म काल में भी जल्दी से सूखता नहीं, आँधी-तूफान-झंझावात जैसी विकट स्थितियों में भी विचलित नहीं होता उसी प्रकार हमारी चेतना भी प्रतिसमय अपने स्वभाव में रमणशील रहें। विषम स्थितियों में भी अपने स्वाभाविक धर्म को छोड़े नहीं । 'सुख में इतराये नहीं दुःख में घबराये नहीं।' इस तरह की भूमिका का निर्माण करने के प्रयोजन से ताड़ागी मुद्रा का अभ्यास किया जाता है। तड़ाग (तालाब) के समान अपने शरीर को वायु से परिपूरित करने वाला ताड़ागी कहा जाता है।

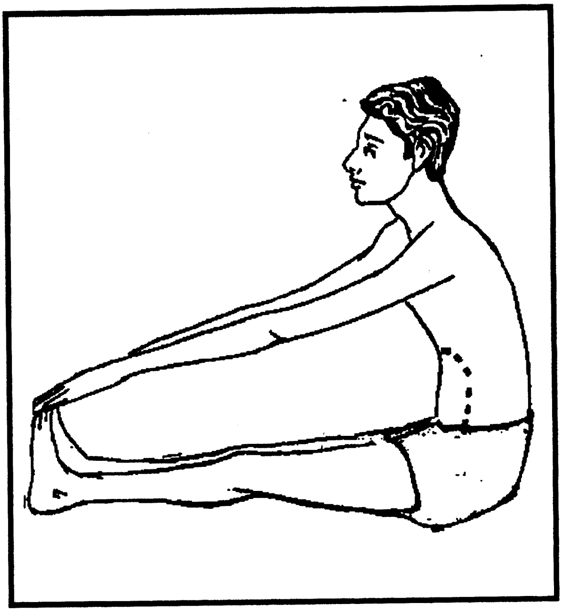

ताड़ागी मुद्रा

विधि

◆ इस मुद्राभ्यास के लिए पश्चिमोत्तानासन में बैठें।

◆ दोनों पाँवों को कुछ दूर-दूर रखें, धड़ सामने झुकाकर हाथों से पैरों के अंगूठें पकड़ने का प्रयत्न करें। यदि संभव न हो तो टखनों को पकड़ें।

◆ फिर माथे से घुटनों को स्पर्श करने का प्रयत्न करें।

◆ फिर दीर्घ पूरक (लम्बी-गहरी श्वॉस लेते) करते हुए उदर के स्नायुओं का बाहर की ओर अधिक से अधिक विस्तार करें।

◆ फिर क्षमतानुसार अंतर्कुम्भक (दाहिने नथूने को बन्द करते हुए बायें नथूने से श्वास लेना। फिर दोनों नथूनों को बन्द कर पांच की गिनती तक श्वास रोकना। फिर दाहिने नथुने से श्वास छोड़ना। फिर बायें नथुने को बन्द करते हुए दाहिने नथूने से श्वास लेना पुन: दोनों नथूनों को बंद कर पांच गिनती तक श्वास रोकना। फिर बायें नथूने से श्वास को बाहर छोड़ना- इस तरह अंतर्कुम्भक) करें।

◆ अंगूठों को पकड़ी हुई अवस्था में श्वास क्रिया सामान्य रखें।

◆ दीर्घ पूरक के साथ उपरोक्त क्रिया की यथासाध्य पुनरावृत्ति करना ताड़ागी मुद्रा कहलाती है।[60]

निर्देश

1. इस मुद्रा का अभ्यास सामान्य रूप से 10 बार करें।
2. अभ्यास के दौरान घुटने मुड़े नहीं।
3. किसी भी हालत में शरीर पर जोर न डालें।
4. आगे झुकते समय श्वास बाहर छोड़ें।
5. दीर्घ पूरक करने के बाद जितनी देर भरे हुए श्वास को रोक सकें, रोकें।
6. इस अभ्यास काल में मणिपुर चक्र (नाभिस्थल के पीछे का हिस्सा) पर चित्त को केन्द्रित करें।

सुपरिणाम

• यह मुद्रा शरीर एवं अध्यात्म विकास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण मानी गई है। शारीरिक स्तर पर देखा जाए तो इस मुद्रा के प्रभाव से उदरस्थ एवं जठर सम्बन्धी रोगों का निवारण होता है। पाचन क्रिया में सुधार होता है। अंतरंग प्रदेश में स्थित अनेक नाड़ियाँ प्रभावित होकर अपना कार्य समुचित रूप से करने लगती है। परिणामत: सम्पूर्ण शरीर की कार्यक्षमता बढ़ जाती है। कटि प्रदेश के अंगों पर दबाव पड़ने से स्त्रियों के प्रजनन सम्बन्धी रोगों को दूर करने में विशेष रूप से लाभ पहुँचाती है।

• घेरण्ड संहिता के अनुसार यह मुद्रा जन्म, जरा एवं मरण को नष्ट कर शाश्वत सुख का उपभोक्ता बनाती है।[61]

• आधुनिक चिकित्सा पद्धति के अनुसार इस मुद्राभ्यास से निम्न शक्ति केन्द्र प्रभावित होते हैं जिससे नानाविध रोगों का सहज निदान हो जाता है-

चक्र– मणिपुर एवं मूलाधार चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं पृथ्वी तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस, शक्ति एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन संस्थान, नाड़ीतंत्र, यकृत, तिल्ली, आँते, मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव।

14. मांडुकी मुद्रा

मांडुकी का अर्थ है मेंढ़क और मुद्रा का अर्थ है सूक्ष्म व्यवहार। इस तरह मांडुकी का शाब्दिक अर्थ होता है मेंढ़क का सूक्ष्म व्यवहार।

इस मुद्रा चित्र में बैठने की जो स्थिति दर्शायी गयी है वह मेंढ़क के बैठने के समान प्रतीत होती है। इसी अवस्था को मांडुकी मुद्रा के नाम से संबोधित करते हैं।

मांडुकी शब्द का अर्थ गठन निम्न रीति से भी संभव है–

मण्ड् धातु + उकण् प्रत्यय से मण्डूक शब्द की उत्पत्ति हुई है। स्त्रीलिंग में 'आ' प्रत्यय जुड़कर माण्डुकी शब्द बनता है।

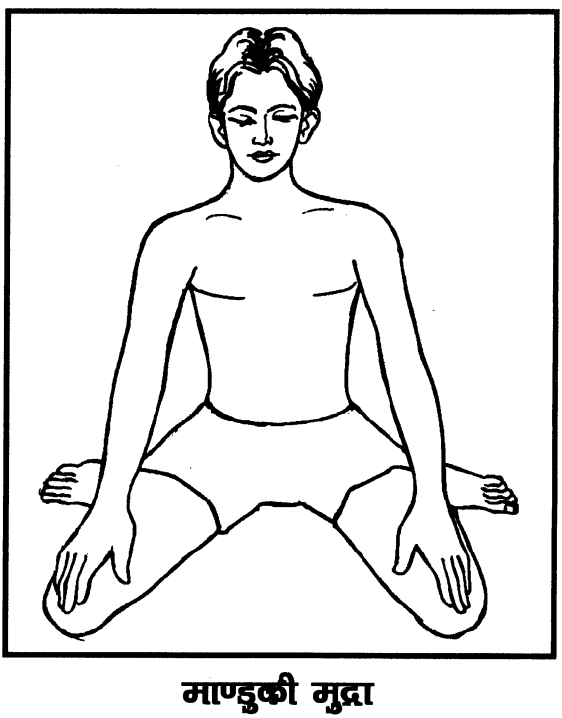

माण्डुकी मुद्रा

मण्डूक के अनेक अर्थ हैं- वर्षाकाल में टरटराने वाला मेंढ़क, एक ताल, एक प्रकार का नृत्य।[62] मण्डूकी शब्द मेंढ़की अर्थ में व्यवहृत है। यहाँ उपरोक्त एक भी अर्थ युक्ति संगत प्रतीत नहीं होता है तब संस्कृत-हिन्दी कोश में

'मण्डूक' के साथ 'योग' शब्द जोड़कर भाव प्रधान अर्थ किया गया है। तदनुसार जिसमें साधक मेंढ़क की भाँति निश्चल होकर समाधिस्थ होता है वह मण्डूक योग कहलाता है।[63]

इस अर्थ के अनुसार कहा जा सकता है कि मांडुकी मुद्रा का अभ्यास समाधि भाव की अभिवृद्धि एवं निर्विकल्प स्थिति की अनुभूति करने के प्रयोजन से किया जाता है।

विधि

◆ इस मुद्रा के लिए विशेष उपयोगी भद्रासन में बैठ जायें। फिर मुख को बन्द करके तालु स्थान पर जिह्वा को घुमाते हुए तथा जिह्वा द्वारा सहस्रार चक्र से टपकते हुए सुधा रस का धीरे-धीरे पान करना माण्डुकी मुद्रा है।[64]

◆ दूसरी मान्यतानुसार भद्रासन में स्थिर होकर शनैः शनैः पूरक और रेचक करते हुए दृष्टि को नासिका के अग्रभाग पर स्थिर करने का अभ्यास करना एवं हर प्रकार की गन्ध पर चेतना का ध्यान केन्द्रित करना माण्डुकी मुद्रा है।[65]

निर्देश

1. इस मुद्रा का अभ्यास सहज रूप से जितने समय तक कर सकें, करें।
2. नेत्रों पर तनाव न आने दें।
3. कुछ महिनों के बाद अभ्यास की परिपूर्णता हेतु समय में वृद्धि करें।
4. इस अभ्यास में श्वास की गति गहरी होनी चाहिये।

सुपरिणाम

इस मुद्रा का सम्यक अभ्यास किया जाए तो कई तरह के अच्छे परिणाम हासिल होते हैं-

• शारीरिक दृष्टि से बली-पलित रोग, शरीर पर पड़ने वाली झुर्रिया एवं बालों का सफेद होना दूर होता है तथा स्थायी यौवन की प्राप्ति होती है।[66]

• अध्यात्म दृष्टि से जिह्वा पर अमृत रस का उत्पादन होता है, जो अभ्यास साधित है। यह अमृत साधक के स्वास्थ्य के लिए भी अत्यन्त हितकर और शरीर को बल प्रदान करने वाला होता है।

• यह मुद्रा मूलाधार एवं आज्ञा चक्र को जाग्रत करने के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। मूलाधार आत्म शक्ति को प्रगट करने का प्रथम सोपान

है इससे शक्ति एवं दर्शन केन्द्र भी जागृत होते हैं। प्रजनन एवं पीयूष ग्रन्थियाँ तथा अग्नि एवं पृथ्वी तत्त्व संतुलित रहते हैं।

• आत्मानुभूति की उच्च अवस्था में दिव्य शक्ति को ग्रहण करने के लिए भी यह मुद्रा उपयोगी है।

• मानसिक पहलू से विचार करें तो नासिका के अग्रभाग पर अपनी दृष्टि स्थिर करने से मन के विक्षेप एवं द्वंद शांत होते हैं। इसके साथ ही इड़ा और पिंगला नाड़ियों में संतुलन की स्थिति आने से अंतर्मुखी एवं बहिर्मुखी क्रियाओं में भी संतुलन आता है।

• चीन के धर्मग्रन्थों में कहा गया है कि जिस व्यक्ति की दृष्टि नासिका के अग्रभाग पर स्थिर नहीं होती, तो समझिये उसकी आँखें बहुत ज्यादा खुली हुई है और वह व्यक्ति उन्हें बाह्य जगत की ओर ले जाने की गलती कर रहा है। परिणामस्वरूप वह बाह्य घटनाओं में आसानी से उलझ जाता है। इसके विपरीत जब आँखें बहुत ज्यादा बंद होती हैं तो व्यक्ति उन्हें आंतरिक जगत की ओर उन्मुख होने देने की गलती करता है तथा परिणामस्वरूप आसानी से दिवा-स्वप्नों में खो जाता है। जब पलकें सही रूप से आधी बंद की जाती है और नासिका का अग्रभाग दिखाई पड़ता है तो वही उपयुक्त तरीका है।[67]

• नासिकाग्र दृष्टि करने के पीछे एक बहुत बड़ा महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि इससे इड़ा और पिंगला नाड़ियाँ संतुलित होने से सुषुम्ना नाड़ी भी जागृति की ओर उन्मुख होती है। यदि इस अभ्यास में दक्षता प्राप्त कर ली जाये तो सीधे ध्यान का मार्ग खुल जाता है। माण्डुकी मुद्रा में नासिकाग्र दृष्टि के अभ्यास का यही महत्त्व है।

• साधना की दृष्टि से इस मुद्राभ्यास काल में गन्ध के प्रति चेतना को स्थिर रखने की जो बात पूर्व में कही गई है और इसी के साथ मूलाधार चक्र जागृत होता है ऐसा कहा गया है। इसके पीछे मूल तथ्य यह है कि मूलाधार चक्र एवं गंध शक्ति में परस्पर निकट एवं निश्चित सम्बन्ध है।

15. शाम्भवी मुद्रा (प्रथम प्रकार)

शाम्भवी का अर्थ है - शंभु (शिव) की पत्नी, शक्ति, तेजोबल, मनोबल आदि। पौराणिक ग्रन्थों में इस मुद्रा के अनेक प्रतीकात्मक अर्थ भी उल्लिखित हैं। इतर परम्पराओं के अनुसार ऐसा कहा जाता है कि शंभु ने शाम्भवी को इस मुद्रा की दीक्षा देते हुए कहा था कि आत्म सजगता को विकसित करने के लिए इस मुद्रा का निष्ठापूर्वक अभ्यास करना। इस मुद्रा का दूसरा नाम 'भ्रूमध्यदृष्टि मुद्रा' भी है, क्योंकि दोनों भौंहों के मध्य दृष्टि को केन्द्रित करते हुए यह मुद्रा की जाती है। जैन परम्परानुसार ध्यान की विभिन्न पद्धतियों में से यह एक है। सामान्यतः इस मुद्रा का उद्देश्य शंभु (परमचेतना- आत्मसत्ता) का साक्षात्कार करना है।

विधि

◆ किसी सुखद आसन में बैठ जायें। फिर ज्ञानमुद्रा अथवा चिन्मुद्रा में दोनों हथेलियों को घुटनों पर रखते हुए थोड़ी देर के लिए आंख बंद कर लें और

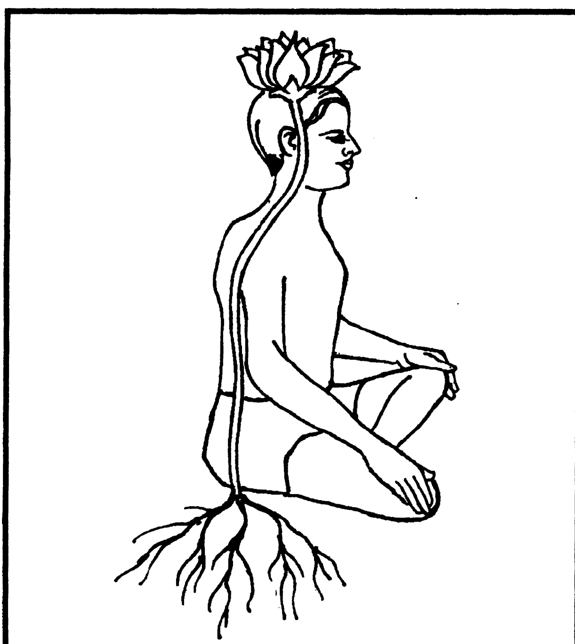

शाम्भवी मुद्रा-1

शरीर को शिथिल कर दें।

◆ तत्पश्चात खुली आँखों को भ्रूमध्य पर केन्द्रित करने का प्रयास सिद्ध हो जाने पर परमात्मा का दर्शन करना शाम्भवी मुद्रा है।[68]

निर्देश

1. हमारी दृष्टि भ्रूमध्य पर केन्द्रित हो सके, उसके लिए प्रारम्भ में अधिक से अधिक ऊपर देखने का प्रयत्न करें। निःसंदेह भ्रूमध्य पर दृष्टि को केन्द्रित करना कठिन कार्य है क्योंकि सामान्यतः हम ऐसा नहीं करते हैं और न ही यह भाग दृष्टि सीमा के अन्तर्गत आता है तथापि अपनी आँखों को यथासंभव भ्रूमध्य की दिशा में अंदर तथा ऊपर की ओर केन्द्रित करें। इस प्रकार दोनों आँखों का भ्रूमध्य की ओर अधिकाधिक अभिमुख होना जरूरी है।
2. मस्तक को स्थिर रखें।
3. विचारों को रोकने का ख्याल रहे।
4. यदि आप उपरोक्त प्रक्रिया को ठीक रीति से सम्पन्न करते हैं तो भौंहों का द्विवक्रीय प्रतिबिम्ब एक-दूसरे से मिलता-जुलता दृष्टिगोचर होगा। ये दोनों नासिका के ऊपरी भाग पर अंग्रेजी के 'वी' अक्षर की भाँति एक-दूसरे से मिलते दिखलाई पड़ेंगे।
   अभ्यासी साधक को इस मिलन-बिन्दू के प्रति सजग रहना है क्योंकि लगभग यही भ्रूमध्य का मध्य भाग है।
   यदि आपको यह बिन्दू दिखाई नहीं पड़ता तो समझिये कि आपकी आँखें ठीक से भ्रूमध्य की ओर अभिमुख नहीं है। बिन्दू के लिए आँखों पर अनावश्यक जोर न लगायें। सहज तरीके से जितनी देर अभ्यास कर सकें, करें।
5. अभ्यास करते वक्त कुछ सैकिण्डों में ही तनाव का अनुभव हो तो आँखों को थोड़ी देर के लिए शिथिल छोड़ दें तत्पश्चात पुनः अभ्यास प्रारंभ करें। इस तरह धीरे-धीरे भ्रूमध्य दृष्टि की अवधि को बढ़ायें।
6. जब आप लगभग एक मिनट तक सहज रूप से दृष्टि को भ्रूमध्य पर टिकाये रखने की क्षमता प्राप्त कर लें तब अपने स्वरूप का चिंतन करें।
7. जब खुली आँखों से शाम्भवी मुद्रा करने में निष्णात हो जायें, तब इसी

अभ्यास को बंद आँखों से करें। इस तरह शाम्भवी मुद्रा का प्रयोग द्विविध रूपों में किया जाता है 1. बहिरंग और 2. अंतरंग। अंतरंग शाम्भवी मुद्रा अधिक प्रभावपूर्ण एवं लाभदायी है क्योंकि आँखों के बन्द होने के कारण ज्ञान चेतना के बहिर्गमन की संभावना कम हो जाती है। फलस्वरूप आत्म निरीक्षण की प्रक्रिया का अभ्यास निरन्तर प्रवर्धमान रहता है।

8. प्रारम्भ में जितनी देर संभव हो सके उतना अभ्यास करें। अभ्यास करते हुए धीरे-धीरे समय सीमा बढ़ायें।

सुपरिणाम

• भौतिक स्तर पर यह मुद्रा शारीरिक आरोग्यता प्रदान कर आँखों के स्नायुओं को मजबूत करती है।

• मानसिक स्तर पर मन की शान्ति में अभिवृद्धि होती है तथा चिन्ता एवं तनाव का निवारण होता है।

• आध्यात्मिक विकास के लिए यह एक शक्तिशाली क्रिया है। इस क्रियाभ्यास से आज्ञा चक्र (भ्रूमध्य भाग) जागृत होता है।

• घेरण्ड संहिता के अनुसार जो साधक निष्ठापूर्वक शाम्भवी मुद्रा का अभ्यास करता है वह शिव (परमात्म) स्वरूपी हो जाता है तथा देवेन्द्रों- नरेन्द्रों से पूजित, ब्रह्मा-विष्णु-महेश की शक्तियों से सम्पन्न निराकार स्वरूप का साक्षात्कार कर लेता है। महर्षि घेरण्ड के मत से शाम्भवी मुद्रा का ज्ञाता पुरुष साक्षात ब्रह्मरूप ही होता है।[69]

• इस मुद्रा के दीर्घाभ्यास द्वारा वैयक्तिक अहंकार से छुटकारा पाया जा सकता है।

• इस मुद्रा के सम्यक प्रयोग द्वारा चैतसिक सजगता को इतना व्यापक बनाया जा सकता है कि वह हर वस्तु में निहित विशिष्टता एवं उसके सार तत्त्व को समझ सकें, पहचान सकें, अनुभूत कर सकें। इसके अतिरिक्त यह भी ज्ञान हो जाता है कि हमारा वास्तविक स्वरूप मात्रा इतना ही नहीं, जितना हम समझ रहे हैं।

• इस अभ्यास से मन और प्राण संयमित होते हैं।

• वेदशास्त्र में इस मुद्रा को कुलवधु के समान गोपनीय माना गया है। इसे वेद पुराण आदि शास्त्रों के समान प्रकाशित करने को अनुचित कहा है।[70]

• आधुनिक चिकित्सा की दृष्टि से यह मुद्रा ऐसे शक्ति केन्द्रों का शोधन करती है कि जिससे साधक के बाह्य एवं अन्तरंग दोनों प्रकार के रोग उपशान्त हो जाते हैं। इस मुद्रा से प्रभावित सप्त चक्रों आदि का चार्ट निम्न है-

चक्र- आज्ञा एवं अनाहत चक्र **तत्त्व-** वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि-** पीयूष एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र-** दर्शन एवं आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग-** निचला मस्तिष्क, स्नायु तंत्र, हृदय, फेफड़ें, छाती, भुजाएं तथा रक्त संचरण तंत्र।

शाम्भवी मुद्रा (द्वितीय प्रकार)

इस मुद्रा के स्वरूप से स्पष्ट होता है कि यह मुद्रा लगभग शाम्भवी मुद्रा के समान ही प्रयुक्त की जाती है।

शाम्भवी के प्रथम प्रकार में दृष्टि को भ्रूमध्य पर स्थिर करने का निर्देश है जबकि इस द्वितीय प्रकार में दृष्टि को नासिका के अग्रभाग पर केन्द्रित करने का सूचन है।

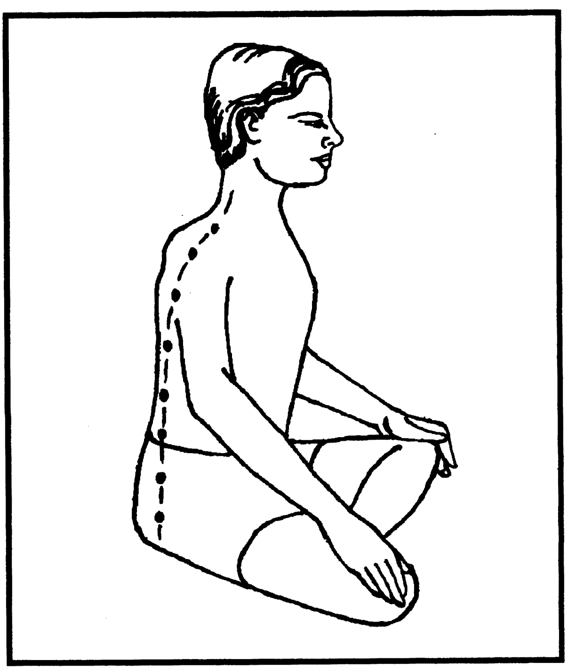

शाम्भवी मुद्रा-2

विधि

◆ किसी भी ध्यान के एक आसन में बैठ जायें। मेरुदण्ड सीधा एवं मुख सामने रहे। फिर शाम्भवी मुद्रा की तरह शरीर की संरचना कर नासिका के अग्रभाग (अंतिम सिरा) पर दृष्टि को स्थिर करना द्वितीय शाम्भवी मुद्रा है।

निर्देश

1. इस मुद्राभ्यास में प्रतिबार कुछ देर के लिए अंतरंग या बहिरंग कुम्भक करें।
2. नेत्रों पर तनाव न पड़ने दें।
3. कुछ हफ्तों या महिनों के अभ्यास के उपरांत समय में वृद्धि करें।

सुपरिणाम

• इस मुद्रा का नियमित अभ्यास करने से एकाग्रता एवं आत्मस्थिरता में वृद्धि होती है।

• मूलाधार चक्र के जागृत होने से कुण्डलिनी शक्ति का ऊर्ध्वारोहण होता है। अभ्यासी साधक अंतर्मुखी एवं अध्यात्मचिन्तन की ओर अग्रसर होता है। आधुनिक उपचार की अपेक्षा इस मुद्राभ्यास से निम्न शक्ति केन्द्र प्रभावित होते हैं इससे साधक का भाव जगत उत्तरोत्तर विशुद्ध होता है।

चक्र– मणिपुर, आज्ञा एवं सहस्त्रार चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज, पीयूष एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस, दर्शन एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन संस्थान,नाड़ी तंत्र, स्नायु तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, मस्तिष्क, आँख आदि।

16. पंच धारणा मुद्रा

यहाँ धारणा का अर्थ है ध्यान अथवा संकल्प पूर्वक ग्रहण करने एवं देखने की शक्ति। पंचधारणा का तात्पर्य है- पृथ्वी, जल, अग्नि,वायु और आकाश तत्त्वों का यथार्थ ज्ञान।

वैदिक शास्त्रों के अनुसार पंच धारणा एक उत्कृष्ट कोटि का साधनात्मक प्रयोग है। इस साधना के फलस्वरूप मनुष्य को सशरीर स्वर्ग में आने-जाने की सामर्थ्यता प्राप्त होती है। इससे मन की गति के समान काययोग को गति (चाल) प्राप्त हो सकती है और आकाश में भी बिना आधार के गमनागमन क्रिया की जा सकती है।

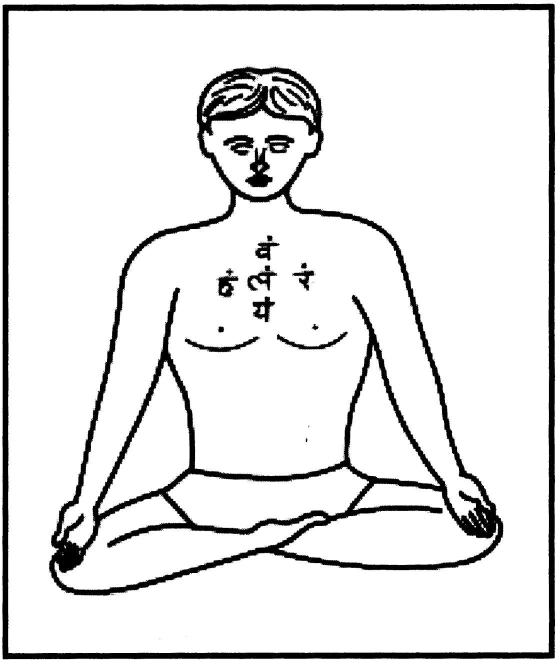

पंच धारणा मुद्रा

योग तत्त्वोपनिषद् में कहा गया है कि जिसका चित्त जिस वायु के साथ सुषुम्ना में प्रवेश करता है उसके लिए पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पंच महाभूत रूपी देवताओं की पाँच प्रकार की धारणा हो जाती है।

इस प्रकार यह मुद्रा पृथ्वी आदि पंच महाभूत जन्य देवताओं को तुष्ट करने एवं तत्सम्बन्धी शक्तियों को प्रगट करने के प्रयोजन से की जाती है।

विधि

पार्थिवी धारणा

◆ आरामदायक आसन में बैठ जायें।

◆ फिर हरित वर्ण के समान (पृथ्वी तत्त्वीय) बीज मन्त्र 'लं' को चौकर आकार में और ब्रह्मदेवता को योगबल से हृदय में धारण करें तथा पांच घड़ी (दो घंटा) पर्यन्त कुंभक (श्वास का निरोध) करें।

◆ फिर रेचक करते हुए सामान्य अवस्था में लौट आना पार्थिवी धारणा मुद्रा है।[71]

आम्भसी धारणा

◆ सुविधाजनक आसन में बैठ जायें।

◆ फिर अर्धचन्द्र या कुन्द के समान (जल तत्त्वीय) श्वेतवर्णी वकार बीज को और विष्णुदेवता को योगबल से हृदय में प्रकट करें तथा एकाग्र चित्त से पाँच घड़ी (दो घंटा) पर्यन्त कुंभक करें।

◆ कुंभक की स्थिति में बीज मन्त्र एवं देवता के स्मरण पूर्वक उन्हें सिद्ध करें।

◆ तत्पश्चात मन्द गति से रेचक करते हुए पूर्व अवस्था में लौट आना आम्भसी धारणा मुद्रा है।[72]

आग्नेयी धारणा

◆ मनोनुकूल अवस्था में बैठ जायें। ◆ तत्पश्चात इन्द्रगोप कीट के समान लालवर्णी (आग्नेय तत्त्वीय) रकार बीज को त्रिकोण आकृति में और रूद्र देवता को योगबल से हृदय में आविर्भूत करें तथा एकाग्रचित्त पूर्वक पांच घड़ी पर्यन्त श्वास को भीतर में रोककर रखें। ◆ तदनन्तर निरुद्ध श्वास को छोड़ते हुए अपनी मूल अवस्था में प्रत्यावर्तित होना आग्नेयी धारणा मुद्रा है।[73]

वायवी धारणा

◆ ध्यान के किसी भी साधित आसन में बैठ जायें। ◆ तत्पश्चात अंजन और धुएँ के समान श्यामवर्णी (वायु तत्त्वीय) यकार बीज का और ईश्वर देवता का स्मरण करें। फिर योगबल से स्वयं के हृदय में अवधारित करें। ◆ फिर इस तत्त्व को सिद्ध करने के लिए पाँच घड़ी तक स्थिर चित्त से कुम्भक करें। उसके बाद रेचक क्रिया द्वारा सामान्य स्थिति में आ जाना वायवी धारणा मुद्रा है।[74]

आकाशी धारणा

◆ किसी भी अभ्यास साध्य सर्वोत्तम आसन में स्थिर हो जायें। ◆ फिर समुद्र के शुद्धजल की भाँति शुभ्रवर्णी (आकाश तत्त्वीय) हकार बीज को और सदाशिव देवता को हृदय पटल पर संस्थित करें। फिर इस धारणा का शुभ फल पाने के लिए पाँच घड़ी तक कुंभक करना तथा तत्त्व देवता का निश्चल होकर ध्यान करना आकाशी धारणा मुद्रा है।[75]

निर्देश

1. इस मुद्राभ्यास के लिए प्रात:काल एवं सन्ध्या काल उपयुक्त प्रतीत होता है क्योंकि यह कष्ट साध्य प्रक्रिया है। श्वास रोकने के लिए शरीर में हल्कापन आवश्यक है और वह दोनों सन्ध्याओं में संभव हो सकता है।

2. यह अभ्यास दीर्घावधि की अपेक्षा रखता है अतः साधक को धीर, वीर, साहसी, आशावादी वगैरह गुणों से युक्त होना चाहिए।
3. यदि अनुकूलता हो तो इसे एकान्त स्थान पर निःशब्द वातावरण में प्रयुक्त करें।
4. ध्यान साधना में निपुणता प्राप्त करने वाले अथवा अभ्यस्त व्यक्ति ही इस मुद्रा को सरलता पूर्वक कर सकते है क्योंकि एकाएक चित्त की एकाग्रता बढ़ाना एवं लम्बी अवधि तक श्वास को रोक पाना संभव नहीं हो पाता।
5. उत्कृष्ट कोटि के साधक पुरुष ही पंचधारणा जैसी कठिन मुद्राओं का प्रयोग करते है तथा अपनी साधना में निखार लाते हुए अति शीघ्र ही साध्य को वर लेते हैं। यह साध्य सिद्धि का अनन्तर कारण है। जो कोई निकट समय में ही सर्व कर्मों से मुक्त होना चाहते हों, वे निश्चित ही इस अभ्यास को श्रद्धा सुविधि युक्त करें।

सुपरिणाम

• घेरण्ड संहिता के अनुसार पृथ्वी धारणा को सिद्ध करने वाला साधक पृथ्वी को विजय करने वाला होता है अर्थात पृथ्वी से सम्बन्धित किसी वस्तु से उसको मृत्युभय नहीं होता। किसी तरह का उपद्रव हो या मारणांतिक कष्ट, उस व्यक्ति के मनोदैहिक जीवन को हानि नहीं पहुँचाता। इस मुद्रा के फलस्वरूप वह मृत्युंजयी होकर पृथ्वी पर विचरण करता है।

• आम्भसी धारणा के अभ्यास से दुःसह ताप और पाप नष्ट होता है। साथ ही इस मुद्रा का ज्ञाता पुरुष भीषण गहरे जल में गिर कर भी मृत्यु को प्राप्त नहीं होता, वह जल तत्त्वजयी हो जाता है। वस्तुतः यह मुद्रा गुप्त रखने योग्य है जो कोई इसे प्रकट कर लेता है उसकी सिद्धि नष्ट हो जाती है।

• आग्नेयी धारणा के अभ्यासी व्यक्ति को किसी तरह का काल भय नहीं रहता और अग्नि से किसी प्रकार की हानि नहीं होती। यदि साधक अत्यन्त प्रज्वलित अग्नि में भी जा पड़े तो इस मुद्रा के प्रभाव से मर नहीं सकता है।

• वायवी धारणा नाम की मुद्रा के अभ्यास से साधक को आकाश-गमन की शक्ति प्राप्त होती है और वायु से उसकी मृत्यु नहीं हो सकती। इस तरह यह मुद्रा जरा-मृत्यु को नष्ट करने वाली और आकाश में उड़ने का सामर्थ्य प्राप्त करवाती है।

• यह मुद्रा इतनी प्रभावी है कि यदि किसी अभक्त या छल पुरुष के सामने इसका उल्लेख कर दिया जाये तो संप्राप्त सिद्धि नष्ट हो जाती है।

• वैदिक शास्त्रों में आकाशी धारणा मुद्रा का लाभ बताते हुए निर्दिष्ट किया गया है कि जो योगी पुरुष आकाशी धारणा को जानता है वह अकाल मरण को प्राप्त नहीं होता और उसे प्रलयकाल में भी खेद नहीं होता।

• इस धारणाभ्यास का सर्वाधिक मूल्य यह भी कहा जा सकता है कि इससे जन्म-मरण की अत्यन्त दुःखदायी परम्परा का विच्छेद होकर साधक के लिए मोक्ष द्वार के किवाड़ खुल जाते हैं।

इस मुद्रा के प्रभाव से कुंभक प्राणायाम के भी सभी लाभ प्राप्त होते हैं।

17. अश्विनी मुद्रा

अश्विनी शब्द का तात्पर्य है घोड़ा। घोड़े की मुद्रा अश्विनी मुद्रा कही जाती है। यह परिभाषा सुनने-पढ़ने में विचित्र लगती है लेकिन यदि हम समझ पूर्वक कल्पना करें तो इसका कारण स्पष्ट हो सकता है। कदाच किसी ने घोड़े

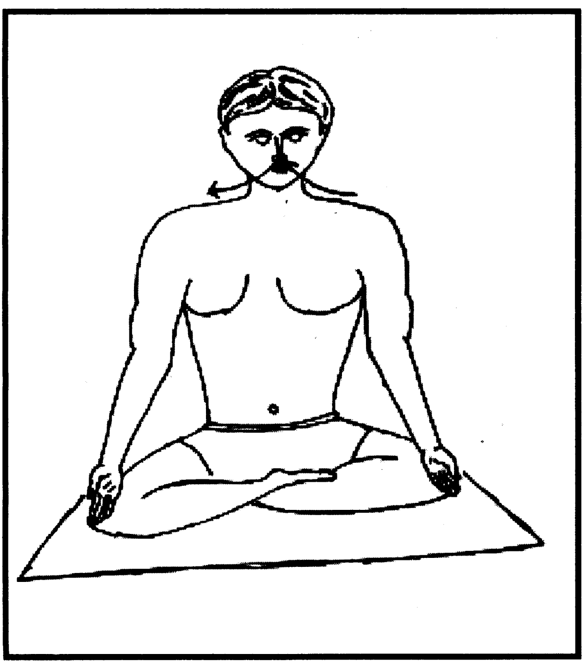

अश्विनी मुद्रा

के गुदाद्वार को ध्यान से देखा हो तो उसे मालूम होगा कि घोड़ा प्रायः अश्विनी मुद्रा का अभ्यास करता रहता है अर्थात वह अपने गुदाद्वार की पेशियों को एक लय में प्रसारित एवं संकुचित करता रहता है। प्रस्तुत मुद्रा के अभ्यास में भी गुदाद्वार का बार-बार संकोचन और प्रसारण किया जाता है इसलिए इस मुद्रा को अश्विनी मुद्रा कहते हैं। इस मुद्रा का प्रयोग चेतन तत्त्व की मूल शक्ति कुण्डलिनी को जागृत करने एवं गुह्य सम्बन्धी रोगों से मुक्ति पाने के प्रयोजन से किया जाता है।

विधि

इस मुद्राभ्यास की दो विधियाँ निम्नलिखित हैं-

प्रथम विधि- त्वरित संकुचन

◆ ध्यान के किसी भी आसन में सुविधापूर्वक बैठ जायें।

◆ शरीर को शिथिल करें।

◆ नेत्रों को बन्द कर लें।

◆ सहज रूप से श्वास-प्रश्वास करें।

◆ फिर गुदाद्वार की मांसपेशियों को शीघ्रता से संकुचित एवं प्रसारित करें यही अश्विनी मुद्रा कहलाती है।[76]

◆ संकोच- विस्तार की आवृत्ति क्षमतानुसार कितनी भी बार कर सकते हैं।

द्वितीय विधि- धीरे-धीरे संकोचन करना और रोकना।

◆ किसी भी आसन में सुविधापूर्वक बैठ जायें।

◆ श्वास लेते हुए गुदा द्वार को संकुचित करें।

◆ स्नायुओं का संकुचन बनाये रखते हुए ही अंतरंग कुम्भक (श्वास को रोके रखना) करें।

◆ फिर श्वास को बाहर करते हुए पेशियों को प्रसारित करें।

यह एक आवृत्ति हुई। आप जितनी आवृत्तियाँ दोहरा सकते हैं दोहरायें। यह अश्विनी मुद्रा का दूसरा प्रकार जानना चाहिए।

निर्देश

1. किसी भी आसन में अश्विनी मुद्रा का अभ्यास किया जा सकता है।
2. मुद्रा प्रयोग करते समय प्रयत्न करें कि संकुचन केवल गुदा द्वार का हो। यद्यपि अन्य पेशियाँ भी सक्रिय हो ही जाती है।

3. पेशियों के संकोच एवं प्रसार को लयबद्ध ढंग से होने दें।
4. गुदा द्वार की पेशियों के साथ किसी तरह की जोर-जबर्दस्ती न करें।
5. उपलब्ध समय के अनुसार अधिकतम अभ्यास करने का प्रयत्न करें।
6. प्रारम्भ में केवल गुदा द्वार की पेशियों को ही संकुचित करने में काफी कठिनता का अनुभव हो सकता है लेकिन नियमित अभ्यास से यह क्रिया सरल होती जायेगी।
7. दोनों विधियों में से किसी भी एक विधि का प्रयोग करें।

सुपरिणाम

• अश्विनी मुद्रा का प्रयोग शरीर एवं आत्मा उभयदृष्टि से अनुकरणीय है।

• इस अभ्यास में दक्ष व्यक्ति अपनी प्राण शक्ति के ह्रास को रोकने में समर्थ होता है फलतः शक्ति का सहस्त्रगुणित संचय करता है।

• यह अभ्यास कुंडलिनी शक्ति को जागृत करता है। जिस शक्ति का प्रवाह ऊपर की ओर होता है उससे अमूल्य उद्देश्यों की पूर्ति होती है।

• इस मुद्रा के द्वारा गुदा सम्बन्धी सर्व रोग दूर हो सकते हैं, शारीरिक बल में वृद्धि होती है तथा अकाल मृत्यु का निवारण होता है अर्थात अभ्यासी साधक दीर्घजीवी होता है।

• अनेक लोगों की गुदाद्वार पेशियाँ कमजोर होने से उन्हें कब्ज एवं बवासीर जैसी व्यापक व्याधियाँ घेरे रहती हैं। अश्विनी मुद्रा आँतों की क्रमाकुंचन गति को उत्तेजित कर कब्ज निवारण में काफी सहयोग करती है। उससे सामान्य स्वास्थ्य में भी सुधार आता है।

• गुदाद्वार के पास रक्त के जमाव को बवासीर का लक्षण माना जाता है। प्रस्तुत मुद्रा इस संग्रहीत रक्त को निचोड़ कर गुदाद्वार के पास से हटा देती है अतः बवासीर रोगी को इस मुद्रा का प्रतिदिन प्रयोग करना चाहिए।[77]

योग साधना का अभिन्न अंग मूलबंध है। मूलबंध को साधने के लिए गुदाद्वार तथा पेरिनियम क्षेत्र के प्रति पर्याप्त संवेदनशील होना जरूरी है। इस संवेदनशीलता के विकास हेतु अश्विनी मुद्रा का प्रयोग उत्तम कोटि का सिद्ध होता है।

18. पाशिनी मुद्रा

संस्कृत व्याकरण के अनुसार पश् धातु और णित + ल्युट् + इनि प्रत्यय से पाशिनी शब्द की उत्पत्ति हुई है। पाश शब्द अनेकार्थक है किन्तु यहाँ डोरी अथवा बांधना अर्थ ग्रहण किया गया है।

जिस प्रकार किसी वस्तु को डोरी से बांध दिया जाये तो वह सुरक्षित रहती है बिखरती नहीं, उसी प्रकार इस मुद्रा में दोनों पाँवों को कण्ठ के पीछे की ओर ले जाकर हाथों से बांध दिया जाता है। जिससे शारीरिक शक्ति संग्रहीत होकर उसे बलवान बनाती है तथा आध्यात्मिक शक्ति असत्कर्म से सत्कर्म की ओर प्रवृत्त होकर जीवद्रव्य के ज्ञान आदि गुणों की सुरक्षा करती है। पाशिनी मुद्रा का उद्देश्य अर्जित शक्तियों का संग्रह और सुषुप्त शक्तियों को जागृत करना है।

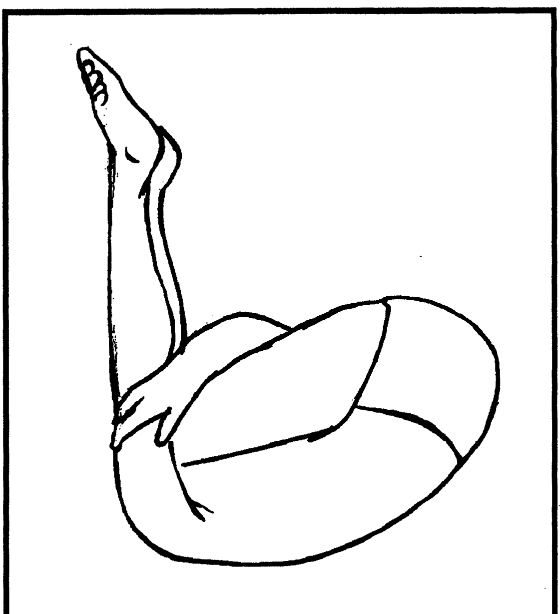

पाशिनी मुद्रा

विधि

◆ सर्वप्रथम पीठ के बल लेट जाईये। हाथों की मुट्ठियाँ नितम्बों के नीचे रखें। ◆ फिर दोनों पाँवों को उठाते हुए अपने से आधा मीटर दूर रखें। ◆ फिर इन्हें घुटनों से मोड़िये। ◆ तदनन्तर जांघों को छाती के इतने समीप लायें कि

घुटनों का स्पर्श कर्णपटलों, कन्धों एवं भूमि से हो। ◆ तत्पश्चात पैरों एवं सिर के चारों ओर हाथों को मजबूती से लपेटते हुए दोनों पाँवों को कण्ठ के पीछे की ओर ले जायें तथा उन्हें परस्पर मिलाकर हाथों से बांध दें इसे पाशिनी मुद्रा कहते हैं।[78] पैरों को उठाते समय धीरे-धीरे गहरा श्वास लें।

◆ पाशिनी जैसी मुद्रा बन जाये, तब चेतना को मणिपुर चक्र (नाभि के पिछले भाग) पर केन्द्रित करें।

शरीर को अधिकाधिक शिथिल करने का प्रयास करें। संभावित क्षमतानुसार वर्णित स्थिति में रहें।

◆ थोड़ी देर पश्चात श्वास को बहार की ओर छोड़ते हुए, अपने अंगों को पूर्व अवस्था में ले आयें। यह एक आवृत्ति हुई।

निर्देश

1. इस अभ्यास के दरम्यान पूरे समय शरीर को शिथिल रखें।
2. पाशिनी मुद्रा के मूल स्वरूप में अंतर्कुम्भक की अवधि बढ़ाते जायें।
3. पीठ की मांसपेशियों को अधिक श्रम न हो, उस अवस्था तक 8 या 10 बार पुनरावृत्ति करें।

सुपरिणाम

पाशिनी मुद्रा का मूल्य कई दृष्टियों से है। • महर्षि घेरण्ड के मतानुसार यह प्रक्रिया शरीर को बलवान बनाती हैं। जो इसके अभ्यास में सफल हो जाता है वह अद्‌भुत एवं दुरुह कार्यों को करने में भी घबराता नहीं। क्योंकि इस मुद्राभ्यास से अपूर्व शक्ति का जागरण और संचार होता है। इसकी मदद से शारीरिक और मानसिक सभी दोष दूर हो जाते हैं। अत: सिद्धि फल के आकांक्षी योगी पुरुषों को प्रयत्न पूर्वक इसका अभ्यास करना चाहिए।[79]

• शरीरविज्ञों के अनुसार इस मुद्राभ्यास से नाड़ी संस्थान में संतुलन एवं स्थिरता आती है।

• मेरुदण्ड एवं उसके चारों ओर की नाड़ियाँ क्रियाशील बनती है। पृष्ठ एवं उदरस्थ अंगों का समुचित व्यायाम हो जाता है। प्रजनन अंगों में शक्तिवर्धन होता है। उदर प्रदेश के अंगों, विशेषकर वृक्क, यकृत एवं क्लोम के कार्यों को व्यवस्थित करता है एवं उदरस्थ माँसपेशियों को शक्तिशाली बनाता है। अजीर्णादि रोगों को दूरकर पाचन-शक्ति बढ़ाता है। संग्रहीत चर्बी की मात्रा को

न्यून करता है। बवासीर एवं मधुमेह जैसी बीमारी का उपचार करता है। मेरुदण्ड के अंदर तथा बाहर के स्नायुओं को स्वस्थ रखता है इसके फलस्वरूप शरीर के सभी अंगों की क्षमता बढ़ती है। इससे चुल्लिका (थाइरॉइड) और उप चुल्लिका (पैरा थाइरॉइड) ग्रंथियाँ यथोचित रूप से कार्यशील होती हैं। इस मुद्राभ्यास के द्वारा यकृत, प्लीहा, गुर्दा, क्लोमग्रंथि एवं एड्रिनल ग्रंथि को पुनर्जीवित किया जा सकता है जिससे पीठ दर्द, गर्दन दर्द, सिर दर्द को दूर करने में भी मदद मिलती है।

• इन शारीरिक लाभों के अतिरिक्त एकाग्रता पूर्वक अभ्यास करने से प्रत्याहार की स्थिति प्राप्त होती है जो ध्यान की तैयारी का पूर्वाभास है।

• अनुभवी सन्त साधकों के अनुसार यह मुद्रा ऐसे शक्ति केन्द्रों पर दबाव डालती है जिनके सक्रिय होने से उपर्युक्त सर्व प्रकार के परिणाम हासिल होते हैं। उन चक्र आदि के नाम इस प्रकार हैं–

चक्र– मणिपुर, विशुद्धि एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** अग्नि, वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज, थायरॉइड, पेराथाइरॉइड एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस, विशुद्धि एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन संस्थान, नाड़ी तंत्र, स्नायु तंत्र, स्वर तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, कान, नाक, गला, मुँह, निचला मस्तिष्क।

19. काकी मुद्रा

काकी शब्द का अर्थ कौआ होता है। इस अभ्यास में श्वास लेते समय मुँह की रचना कौवे की चोंच के समान बनाई जाती है इसलिए इसे काकी मुद्रा के नाम से संबोधित किया गया है।

यह मुद्रा मनोदैहिक रोगों की उपशान्ति एवं दीर्घ आयु की प्राप्ति के प्रयोजन से की जाती है।

विधि

◆ किसी भी आरामदायक आसन में बैठ जायें।

◆ फिर दोनों हाथों को गोद में अथवा घुटनों पर रखें।

◆ फिर होठों को कौए की चोंच के समान करके मुँह से धीरे-धीरे गहरी श्वास भीतर की ओर खींचें। उसके पश्चात दोनों होठों को बन्द कर दें।

◆ फिर दोनों नासारन्ध्रों द्वारा श्वास को बाहर छोड़ना काकी मुद्रा है।[80]

काकी मुद्रा

निर्देश

1. पूरक (श्वास लेने) एवं रेचक (श्वास छोड़ने) की क्रिया को जितनी देर सम्भव हो, दोहराते रहें।
2. पूरक करते समय होठों को परस्पर इस तरह मिलायें कि उनके मध्य में एक छोटी गोल जगह बन जायें, जिसमें से श्वास अंदर ली जा सकें।
3. पूरक करते समय जीभ को शिथिल रखें।
4. ध्यान रहें, सम्पूर्ण अभ्यास काल में आँखें खुली रहने दें।
5. इस दरम्यान नासिकाग्र दृष्टि का अभ्यास भी सतत करते रहें।
6. यह अभ्यास इच्छानुकूल अवधि तक किसी भी समय कर सकते है।[81]

सुपरिणाम

• यह तत्त्वों को संतुलित करने वाली महत्त्वपूर्ण मुद्रा है।

• शारीरिक स्तर पर इस मुद्रा पूर्वक नियमित पन्द्रह-बीस मिनट तक श्वास लेते हुए वायु सेवन करने से सभी प्रकार के रोगों का नाश होता है। इसी श्वास को नाभि तक जल्दी-जल्दी लेने से फेफड़ें स्वच्छ रहते हैं और फेफड़ों

से संबंधित सभी प्रकार की बीमारियों से छुटकारा मिलता है।

• मुँह से भीतर जाने वाले वायु-प्रवाह का सम्पर्क मुँह की दीवारों से होता है। यह अभ्यास अनेक बीमारियों को रोकने या दूर करने में मदद करता है।

• कौवे की आयु बहुत लम्बी होती है तथा वह अन्य पक्षियों की अपेक्षा प्रायः अधिक स्वस्थ रहता है अतः इस मुद्रा के विषय में कहा जाता है कि इसके सतत अभ्यास से रोग मुक्ति और दीर्घायु प्राप्त होती है।

• योग के अधिकतर अभ्यास शरीर में ताप का निर्माण करते हैं लेकिन काकी मुद्रा शरीर को शीतलता प्रदान करती है। यह अभ्यास मन को भी शांत करता है, मानसिक तनाव का शमन करता है। इससे उच्च रक्त चाप इत्यादि मनोदैहिक रोगों का भी निराकरण हो जाता है तथा पाचन शक्ति का विकास होता है।

• महर्षि घेरण्ड के अनुसार देह आरोग्यता के लिए योगी पुरुषों को यह मुद्रा अवश्य करनी चाहिए। इस मुद्रा को गुप्त रखने का भी उल्लेख किया गया है।[82]

• विदेही साधकों के अनुसार इस मुद्राभ्यास से सूक्ष्म शरीरगत शक्ति स्थानों के द्वार खुलते हैं जिसके परिणामस्वरूप विशिष्ट चक्र आदि प्रभावित होकर तज्जनित रोगों का निवारण करते हैं। संप्रभावित शक्ति केन्द्रों का चार्ट इस प्रकार है–

चक्र– मणिपुर, स्वाधिष्ठान एवं मूलाधार चक्र **तत्त्व–** अग्नि, जल एवं पृथ्वी तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस, स्वास्थ्य एवं शक्ति केन्द्र।

20. मातंगिनी मुद्रा

संस्कृत भाषा में हाथी को मातंग और हथिनी को मातंगिनी कहते हैं। सृष्टि जगत में हाथी को सर्वाधिक बलशाली माना गया है। जब हाथी होश में होता है उसकी शक्ति हजार गुणा बढ़ जाती है उसी तरह जब साधक विभाव से स्वभाव, राग से विराग, बहिर्मुख से अन्तर्मुख की ओर प्रवृत्त होता है तब उसकी चेतनाशक्ति अनन्त गुणा बढ़ जाती है। इस मुद्राभ्यास का मूल ध्येय शक्ति सम्पन्न आत्मा को अपनी शक्ति का अहसास एवं बोध करवाना है।

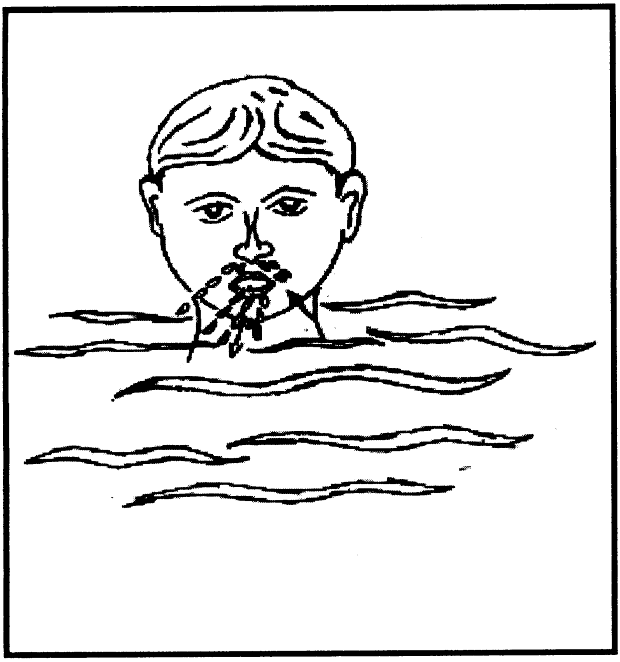

मातंगिनी मुद्रा

विधि

◆ सर्वप्रथम कण्ठ पर्यन्त जल में खड़े हो जायें। फिर नासिका से जल खींचकर मुख-द्वार से बाहर निकालें। ◆ फिर मुख द्वारा जल खींचकर नासिका से बाहर निकालें। इस तरह नासिका से जल ग्रहण कर मुख से बाहर करना तथा मुख से ग्रहण कर नासिका से बाहर करना, ऐसी पुनरावृत्ति करते रहना मातंगिनी मुद्रा है।[83]

निर्देश

1. योगी पुरुषों द्वारा आचरित इस मुद्रा का अभ्यास एकान्त स्थान में करें, एकाग्र चित्त से करें एवं निर्दिष्ट विधि पूर्वक करें।[84]
2. यदि यह अभ्यास मनोयोग पूर्वक किया जाए तो इसकी सिद्धि थोड़े से प्रयत्न से हो जाती है।
3. किसी योग्य गुरु के निर्देशन में इसका अभ्यास करें। आराम दायक स्थिति में इच्छानुसार अभ्यास किया जा सकता है।

सुपरिणाम

• घेरण्ड संहिता के अनुसार इस मुद्रा का अधिकारी व्यक्ति हाथी के समान बलशाली हो जाता है और सदा सुखी रहता है। इस मुद्रा के सिद्ध होने पर बुढ़ापा नहीं आता तथा मृत्यु भय भी समाप्त हो जाता है।[85]

इसका तात्पर्य यह है कि मातंगिनी मुद्रा की संसिद्धि से कायर नर भी योद्धा की भाँति पराक्रमी बन जाता है परिणामस्वरूप असम्भव कार्य भी उसके लिए सम्भव हो जाते हैं। तब वह जरा और मृत्यु भय से भी पार हो जाता है। बुढ़ापा और मृत्यु शरीर के धर्म हैं। शरीर में प्रतिक्षण परिवर्तन होता रहता है। सड़ना, गलना, नाश होना उसका निजी गुण है। ऐसी स्थिति में शरीर के प्रति मोह एवं भय कैसा? इस तरह का विचार करते हुए समस्त भयों से मुक्त रहता है।

21. भुजंगिनी मुद्रा

भुजंग का अर्थ है सर्प और मुद्रा का अर्थ है सर्पाकृति के समान शरीर के हाव-भाव। सहज रूप से बैठे हुए सर्प की जो आकृति होती है इस मुद्रा को बनाते समय भी लगभग शारीरिक संरचना अथवा मुखस्थ भाग उस तरह का प्रतीत होता है इसलिए इस मुद्रा का नाम भुजंगिनी मुद्रा रखा गया है।

भुजंगिनी मुद्रा

विधि

◆ किसी भी ध्यान के आसन में बैठकर सम्पूर्ण शरीर को ढ़ीला छोड़ दें। ◆ फिर समूचे मुख को फैलाकर कण्ठ के द्वारा वायु खींचने (मुँह द्वारा श्वास लेने) का प्रयास करना भुजंगिनी मुद्रा है।[86]

निर्देश

1. इस मुद्राभ्यास में कुछ देर तक श्वास को भीतर रोकें।
2. अधिकतम अवधि तक पेट को विस्तृत करते हुए रखें।
3. भीतर रोकी गई श्वास को डकार लेते हुए बाहर निकालें।
4. क्रिया की पुनरावृत्ति इच्छानुसार कर सकते हैं।
5. इसका अभ्यास किसी भी समय किया जा सकता है।

सुपरिणाम

• यह अभ्यास पाचक रस उत्पन्न करने वाली ग्रंथियों एवं अन्ननलिका की दीवारों को नवजीवन प्रदान करता है। उदर को स्वस्थ बनाता है। इससे अजीर्ण आदि उदर रोग नष्ट हो जाते हैं। इस प्रदेश में संग्रहित पुरानी दूषित वायु का निकास होता है। • इस क्रिया प्रयोग के दौरान वायु तालु और जिह्वा के मध्य घूमती रहती है इससे शरीर अभूतपूर्व शक्ति का अनुभव करने लगता है। इस अभ्यास में दक्षता पाने के बाद जरा और मृत्यु का विच्छेद हो जाता है।[87]

मुद्रा विज्ञान सम्पूर्ण विश्व में भारतीय योग साधना का प्रतिनिधित्व कर रहा है। योग साधकों एवं शोध संस्थानों ने विविध प्रयोगों के माध्यम से अनेक रहस्यपूर्ण तथ्यों को प्रकट किया है। आज जब भौतिकवाद अपनी चरम सीमा पर है समय एक बार फिर ऐसी ही यौगिक साधनाओं की आवश्यकता अनुभव कर रहा है। सम्पूर्ण मानव समाज प्राकृतिक चिकित्सा के महत्त्व को स्वीकार कर उसी मार्ग पर अग्रसर है। यौगिक साधना की विविध रीतियों का नियमोक्त पालन उनकी संसिद्धि में विशेष सहायक बनता है। अभ्यास साध्य यौगिक मुद्राओं की साधना कुछ कठिन होने पर भी अनेक साधकों द्वारा इसके सफल प्रयोग किए जाते है। जो लोग मुद्रा आदि यौगिक साधनाओं के मार्ग पर पूर्व से अग्रसर हैं उनके लिए आगे बढ़ने का दिव्य सोपान है। इस अध्याय लेखन का मुख्य उद्देश्य भारतीय योग विद्या के अथाह सागर से जन उत्थान और कल्याण हेतु कुछ रहस्यमयी ज्ञान उपलब्ध करवाना है।

सन्दर्भ-सूची

1. पायमूलं वामगुल्फे, संपीड्य दृढ़यत्नतः।
याम्यपादं प्रसार्याथ, करेधृत पदांगुलः।।
कण्ठ संकोचनं कृत्वा, भ्रुवोर्मध्ये निरीक्षयेत।
महामुद्राभिधाद्रा, कथ्यते चैव सूरिभिः ।।

(क) घेरण्ड संहिता, 3/6-7

(ख) शिव संहिता, 4/27-29

पादमूलेन वामेन, योनिं संपीड्य दक्षिणम्।
प्रसारितं पदं कृत्वा, धराभ्यां धारयेदृढ़म्।।
कंठे बंधं समारोप्य, धारयेद्वायुमूर्ध्वतः।
यथा दंडहतः सर्पो, दंडाकारः प्रजायते।।
ऋज्वीभूता तथा शक्तिः, कुंडली सहसा भवेत्।
तदासा मरणावस्था, जायते द्विपुटाश्रया।।
ततः शनैः शनैरेव, रेचयेन्नैव वेगतः।
महामुद्रां च तेनैव, वदंति विबुधोत्तमाः।।

(ग) हठयोग प्रदीपिका, 3/10-14

वृक्षोन्यस्तहनुः प्रपीड्य, सुचिरं योनिं च वामांघ्रिणा।
हस्ताभ्यामनुधारयेत्, प्रसरितं पादं तथा दक्षिणम्।।
आपूर्य श्वसेन कुक्षियुगलं, बद्धा शनैः रेचयेत्।
ऐषा व्याधि वाशिनी सु, महती मुद्रानृणां कथ्यते।।

(घ) गोरक्षसंहिता, 1/57

(ङ) योगचूड़ामण्यूपनिषत्, 65

2. योगचूड़ामण्यूपनिषत्, श्लोक 65
3. योगचूड़ामण्यूपनिषत्, श्लोक 68-69
4. योगचूड़ामण्यूपनिषत्, श्लोक 70
5. ऊर्ध्वजिह्वः स्थिरो भूत्वा, धारयेत्पवनं सदा।
नभो मुद्रा भवेदुषा, योगिनां रोगनाशिनी।।

घेरण्डसंहिता, 3/8

6. तंत्र, क्रिया और योगविद्या, पृ. 152

7. उदरे पश्चिमोत्तानं, नाभेरूर्ध्वन्तुकारयेत् ।
उड्डीयानं कुरुतेयत्, तदविश्रान्त महाखतः ॥
(क) घेरण्डसंहिता, 3/9-10
(ख) हठयोग प्रदीपिका, 3/57
(ग) शिव संहिता, 4/72-73
(घ) गोरक्षसंहिता, 1/76-77
8. घेरण्ड संहिता, 3/10-11
9. शिव संहिता, 4/73-77
10. दत्तात्रेय संहिता, उद्धृत-घेरण्डसंहिता पृ. 81
11. हठयोग प्रदीपिका, 3/56, 58
12. वराह उपनिषत्, 5/41
13. कण्ठ संकोचनं कृत्वा, चिबुक हृदयेन्यसेत्
जालन्धरे कृते बन्धे, षोडशाधारबन्धनम् ॥
जालन्धरं महामुद्रा, मृत्योश्च क्षय कारिणीं ॥
(क) घेरण्ड संहिता, 3/12
(ख) हठयोग प्रदीपिका, 3/70
(ग) शिवसंहिता, 4/60
(घ) गोरक्ष संहिता, 1/78-79
(च) योगचूड़ामण्यूपनिषत्, 50-51
14. घेरण्ड संहिता, 3/12
15. योगचूड़ामण्यूपनिषत्, 45
16. घेरण्ड संहिता, 3/13
17. शिवसंहिता, 4/61-62
18. हठयोग प्रदीपिका, 3/71, 72,73
19. योगचूड़ामण्यूपनिषत्, 50-51
20. पार्ष्णिना वामपादस्य, योनिमाकुंचयेत्ततः ।
नाभिग्रन्थिमेरूदण्डे, संपीड्य यत्नतः सुधीः ॥

मेद्रं दक्षिणगुल्के तुं, दृढ़बन्धं समाचरेत्।
जरा विनाशिनी मुद्रा, मूल बन्धो निगद्यते ।।

(क) घेरण्ड संहिता, 3/14-15
(ख) हठयोग प्रदीपिका, 3/61-63
(ग) शिवसंहिता, 4/64-65
(घ) गोरक्ष संहिता, 1/80-81
(च) योगचूड़ामण्यूपनिषत्, 46

21. *घेरण्ड संहिता, 3/16-17*
22. *शिवसंहिता, 4/65-67*
23. *हठयोग प्रदीपिका, 3/64*
24. *हठयोग प्रदीपिका, 3/65-67*
25. *हठयोग प्रदीपिका, 3/68-69*
26. *योगचूड़ामण्यूपनिषत्, 47*
27. *वामपादस्य गुल्फे तु, पातुमूलं निरोधयेत्।*
दक्षपादेन तद् गुल्फे, सम्पीड्य यत्नतः सुधीः।।
शनैः शनैश्चलयेत्, पार्ष्णियोनिमाकुंचयेच्छनैः
जालंधरे धारयेत् प्राणं, महाबन्धोनिगद्यते।।

(क) घेरण्ड संहिता, 3/18-19
(ख) शिवसंहिता, 4/37-39
(ग) हठयोग प्रदीपिका, 3/19-21

28. *योगतत्त्वोपनिषत्, 112-115*
29. *घेरण्ड संहिता, 3/20*
30. *(क) आसन प्रणायाम मुद्रा बन्ध, स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, पृ. 319*
महाबंध समासाद्य, उड्डीयान कुम्भकं चरेत्।
महावेधः समाख्यातो, योगिना सिद्धिदायकः ।।

(ख) घेरण्ड संहिता, 3/22
(ग) शिवसंहिता, 4/43
(घ) योगतत्त्वोपनिषत्, 116-117
(च) हठयोग प्रदीपिका, 3/26

31. (क) हठयोग प्रदीपिका, 3/32
(ख) शिवसंहिता, 4/51
(ग) कपालकुहरे जिह्वा, प्रविष्टा विपरीतगा।
भ्रुवोरन्तर्गता दृष्टि, र्मुदा भवति खेचरी॥
गोरक्षसंहिता, 1/62
(घ) योगतत्त्वोपनिषत्, 127
(च) कपालकुहरे जिह्वा, प्रविष्टा विपरीतगा।
भ्रुवोरन्तर्गता दृष्टि, र्मुदा भवति खेचरी॥
योगचूडामण्यूपनिषत्, 52
(छ) योगकुण्डल्यूपनिषत्, 2/49
32. तंत्र क्रिया और योग विद्या, पृ. 152
33. हठयोग प्रदीपिका, 3/32-53
34. घेरण्ड संहिता, 3/33-34
35. हठयोग प्रदीपिका, 3/77,78,79
36. तंत्र, क्रिया और योगविद्या, पृ.649
37. भूमौ शिरश्च संस्थाप्य, करयुग्मा समाहितः।
ऊर्ध्वपाद स्थिरो भूत्वा, विपरितकरीमता॥
(क) घेरण्ड संहिता, 3/35
(ख) शिव संहिता, 4/69
ऊर्ध्वनाभिरधस्तालु, रूर्ध्वं सूर्यरधः शशी।
करणी विपरीताख्या, गुरुपदेशेन लभ्यते।
(ग) गोरक्षसंहिता, 2/34
(घ) योगतत्त्वोपनिषत्, 124
38. (क) घेरण्ड संहिता, पृ. 91
(ख) हठयोग प्रदीपिका, 3/82
39. घेरण्ड संहिता, पृ. 3/36
40. तंत्र क्रिया और योगविद्या, सत्यानन्द सरस्वती पृ. 489
41. सिद्धासनं समासाद्य कर्ण चक्षुर्न सोमुखम्।
अंगुष्ठ तर्जनी मध्यानामभिश्चैव साधयेत्॥
(क) घेरण्ड संहिता, 3/37
(ख) योगचूड़ामण्यूपनिषत्, 59

42. *तंत्र, क्रिया और योगविद्या, पृ. 489-490*
43. *हठयोग प्रदीपिका, 4/84*
44. *हठयोग प्रदीपिका, 4/90*
45. *हठयोग प्रदीपिका, 4/92-93*
46. *घेरण्ड संहिता, 3/42-44*
47. *धरामवष्टभ्य करयोस्तलाभ्याम् ऊर्ध्वं क्षितेत्पादयुगं शिखे।*
    शकित प्रबोधाय चिरंजीवनाय, वज्रोलीमुद्रां कवयोवदन्ति ।।

    (क) *घेरण्डसंहिता, 3/45*
    (ख) *हठयोग प्रदीपिका, 4/85-91*
    (ग) *शिवसंहिता, 4/81-84*
48. *तंत्र, क्रिया और योगविद्या, पृ. 790*
49. *आसन, प्राणायाम मुद्रा बंध, सत्यानन्द सरस्वती, पृ. 320*
50. *घेरण्डसंहिता, 3/46-47*
51. *घेरण्डसंहिता, 3/48*
52. *नाभिं सम्वेष्टय वस्त्रेण, न च नग्नो बहिः स्थितः।*
    गोपनीयगृहे स्थित्वा, शक्तिचालनमभ्यसेत्।।
    वितस्तिमितं दीर्घ, विस्तारे चतुरंगुलम्।
    मृदुल धवलं सूक्ष्मं, वेष्टनाम्बर लक्षणम्।।
    एवमम्बरयुक्तं च, कटिसूत्रेण योजयेत्।
    भस्मनागात्र संलिप्तं, सिद्धासनं समाचरेत्।।
    नासाभ्यां प्राणमाकृष्य, अपानेयोजयेद्बलात्।
    तावदाकुंचयेद् गुह्य, शनैरश्विनिमुद्रया।।
    यावद्गच्छेतसुषुम्नायां, वायुः प्रकाशयेत् हठात्।
    तदावायुप्रबन्धेन, कुम्भिका च भुजङ्गिनी।।
    बद्धश्वासस्ततोभूत्वा, ऊर्ध्वमार्ग प्रपद्यते।
    शक्तीर्विनाचालनेन, योनिमुद्रा न सिद्धयति।।

    (क) *घेरण्डसंहिता, 3/53-57*
    (ख) *शिवसंहिता, 4/105*
53. *तंत्र, क्रिया और योगविद्या, पृ. 793-794*

54. *घेरण्डसंहिता, 3/59*
55. *घेरण्डसंहिता, 3/57*
56. *घेरण्डसंहिता, 3/60*
57. *हठयोग प्रदीपिका, 3/108*
58. *हठयोग प्रदीपिका, 3/109*
59. *हठयोग प्रदीपिका, 4/17*
60. *उत्तर पश्चिमोत्तान, कृत्वा च तड़ागा कृतिम् ।*
    ताड़ागी स परामृत्यु, जरामृत्यु विनाशिनी ।।
    घेरण्डसंहिता, 3/61
61. *उत्तर पश्चिमोत्तान, कृत्वा च तड़ागा कृतिम् ।*
    ताड़ागी स परामृत्यु, जरामृत्यु विनाशिनी ।।
    घेरण्डसंहिता, 3/61
62. *बृहद् हिन्दी कोश, पृ. 991*
63. *संस्कृत हिन्दी कोश, पृ. 764*
64. *मुख ममुद्रत कृत्वा, जिह्वामूलं प्रचालयेत् ।*
    शनैर्ग्रसेदमृतं तां, माण्डूकी मुद्रिकां विदुः ।।
    घेरण्डसंहिता, 3/62
65. *आसन प्राणायाम मुद्रा बंध, स्वामी दयानन्द सरस्वती, पृ. 303*
66. *घेरण्ड संहिता, 3/63*
67. *तंत्र, क्रिया और योगविद्या, स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, पृ. 774*
68. *नेत्रांजन समालोक्य, आत्मारामं निरीक्षयेत् ।*
    साभवेच्छाम्भवीं मुद्रा, सर्वतन्त्रेषु गोपिता ।।
    घेरण्ड संहिता–तीसरा उपदेश, श्लोक-64
69. *घेरण्ड संहिता, 3/66-67*
70. *वेदशास्त्र पुराणानि, सामान्य गणिका इव ।*
    इयन्तु शाम्भवी मुद्रा, गुप्ताकुलवधूरिव ।।
    घेरण्डसंहिता, 3/65
71. *यत्तत्वं हरितालदेश, रचितं भौभं लवरान्वित,*
    वेदास्तंकमलासनेन, सहितकृत्वा हृदिस्थापिनम्।।

प्राणांस्तत्रविनीय पंचघटिकां, चिन्तान्वितांधारयेत्,
देषास्तम्भकरोध्रु वंक्षितजय, कुर्यादधोधारणाम्।।
पार्थिवीधारणामुद्रां, य करोति हि नित्यशः।
मृत्युंजय स्वयं सोऽपि, स सिद्धो विकरेद् भुवि।।

(क) घेरण्डसंहिता, 3/70-71
(ख) गोरक्ष संहिता, 2/54

72. *शंखेन्दु प्रतिमं च कुन्दधवलं, तत्वं किलाल शुभं।*
तत्पीयूषवकार बीजसहितं, युक्तं सदाविष्णुना।।
प्राणांस्तत्रविनीय पंचघटिकां, चित्तान्वितां धारयेत्।
एषा दुःसह तापपहारिणो, स्यादाम्भसीधारणा।।
आम्भसीं परमां मुद्रा, योजानाति स योगवित्।
जले च गंभीरे घोरे, मरणं तस्यनोभवेत्।।
इयं तु परमा मुद्रा, गोपनीया प्रयत्नतः।
प्रकाशत सिद्धि हानिः, स्यात् सत्यं वच्चिमच्च तत्वता।।

(क) घेरण्डसंहिता, 3/72-74
(ख) गोरक्ष संहिता, 2/55

73. *तन्त्राभिस्थितमिन्द्र गोपसदृशं, बीजं त्रिकोणान्वितं।*
तत्वं वह्निमयं प्रदीप्पमरूणं, रूद्रेणयत् सिद्धिदम्।।
प्राणांस्तत्रविनीयपंचघटिकां, चिन्तान्ति धारये-देषा।
कालगम्भीर भीतिहरिणी, वैश्वानीधारणा।।
प्रदीप्ते ज्वलिये वह्नौ, पतितौ यदि साधकः।
एतन्मुद्राप्रसादेन, स जीवति न मृत्युभाक्।।

(क) घेरण्डसंहिता, 3/75-76
(ख) गोरक्ष संहिता, 2/56

74. *यद् भिन्नांजनपुंज सन्निभविदंधूम्रावभास परे।*
त्रत्वंसत्त्वमयं यकारसहितं, गत्रेश्वरो देवता।।
प्राणांस्तत्र विनीय पंचघटिका, चिन्तान्वतां धारयेत्।
एषाखेगमनं करोति, यामिभास्याद् वायवीधारणा।।
इयं तु परमा मुद्रा, जरामृत्युविनाशिनी।
वायुनाम्रियतेनापि, खे चगति प्रदायिनी।।

शठायभक्तिहीनाय, न देया यस्यकस्यचित्।
दत्ते च सिद्धिहानिः, स्यात सत्यं वमिच्च चण्डते॥
(क) घेरण्डसंहिता, 3/77-79
(ख) गोरक्ष संहिता, 2/57

75. *यत् सिद्धौवर शुद्धवारिसदृशं, व्यामं परिभासित।*
तत्वंदेवसादशिवने सहितं, बीजं हकारान्वितम्॥
प्राणांस्तत्रविनीय पंचघटिकां, चिन्तान्वितां धारयेत्।
एतां मोक्षकपाट भेदनकरी, कुर्यान्निभोधारणाम्॥
आकाशीधारणा मुद्रां, यो वेत्ति स योगवित्।
न मृत्यु जायते तस्य, यस्य प्रलयेऽपि न सीदति॥
(क) घेरण्डसंहिता, 3/80-81 (ख) गोरक्ष संहिता, 2/58

76. *आकुंचयेद् गुदाद्वारं, प्रसारयेत् पुनः पुनः।*
सामवेदाश्विनी मुद्रा, शक्ति प्रबोध कारिणीं॥
घेरण्डसंहिता, 3/82

77. *(क) घेरण्डसंहिता, 3/82-83*
(ख) तंत्र, क्रिया और योगविद्या, पृ. 444-445

78. *कण्ठपृष्ठे क्षिपेत्पावौ, पाशवद् दृढ़ बन्धनम्।*
सा एव पाशिनी मुद्रा, शक्ति प्रबोध कारिणी॥
घेरण्डसंहिता, 3/84

79. *काक चञ्चु वदास्येन, पिवेद् वायुं शनैः शनैः।*
काकी मुद्रा भवेदेषा, सर्वरोग विनाशिनी॥
(क) घेरण्डसंहिता, 3/84-85
काकचंचुवदास्येन, शीतलं सलिलं पिवेत्
प्राणापान विधानेन, योऽसौ भवति निर्जरः॥
रसना तालुमूलेन, यो प्राणमलिनं पिवेत्।
अब्दार्द्धेन भवेत्तस्य, सर्वरोगस्य संक्षयः॥
(ख) गोरक्ष संहिता, 2/38-39

80. *घेरण्डसंहिता, 3/86*

81. *तंत्र, क्रिया और योगविद्या, स्वामी सत्यानन्द सरस्वती पृ. 819*

82. घेरण्डसंहिता, 3/87

83. कण्ठमग्नेजले स्थित्वा, नासाभ्यां जलमाहरेत्।
मुखान्निर्गमयेत् पश्चात्, पुनर्वक्त्रेण चाहरेत्॥
नासाभ्यां रेचयेत् पश्चात्, कुर्यादेवं पुनः पुनः।
मातंगिनी परामुद्रा, जरामृत्यु विनाशिनी॥
घेरण्डसंहिता, 3/88-89

84. घेरण्डसंहिता, 3/90

85. घेरण्डसंहिता, 3/90-91

86. वक्त्रकिंचित् सुप्रसार्य, चानिलं गलयारिवेत्।
साभवेद् भुजंगी मुद्रा, जरा मृत्यु दिविशेषतः॥
घेरण्डसंहिता, 3/92

87. घेरण्डसंहिता, 3/92-93

●

अध्याय-4

चिकित्सा उपयोगी मुद्राओं का चार्ट

प्राणिक हीलिंग विशेषज्ञ के. के. जायसवाल एवं एक्युप्रेशर चिकित्सज्ञ शरद कुमार जायसवाल, वाराणसी के अनुसार कौनसा रोग किस मुद्रा से ठीक हो सकता है? इससे सम्बन्धित यौगिक मुद्राओं का एक चार्ट प्रस्तुत किया जा रहा है।

इस सम्बन्ध में यह ध्यान देना जरूरी है कि रोगों से छुटकारा पाने हेतु जिन मुद्राओं का सूचन कर रहे हैं वे मुद्राएँ उन रोगों की चिकित्सा में मुख्य सहयोगी हैं किन्तु सभी मनुष्यों की शारीरिक एवं मानसिक प्रकृति भिन्न-भिन्न होने से कई बार अन्य मुद्राओं का प्रयोग करना भी आवश्यक हो जाता है अतः मुद्रा विशेषज्ञों से जानकारी प्राप्त करने के बाद ही तत्संबंधी मुद्राओं द्वारा उपचार करना चाहिए।

- किसी भी मुद्रा को निरन्तर कुछ दिनों तक करने पर उसका प्रभाव पड़ता है।
- मुद्रा का प्रयोग सही विधि से एवं विश्वास पूर्वक करना अनिवार्य है।
- विशिष्ट साधना के दौरान यदि सम्यक विधि से मुद्राओं का प्रयोग किया जाए तो भावधारा निर्मल होने से वे अचिन्त्य लाभदायी होती हैं।

शारीरिक रोगों के निदान में प्रभावी मुद्राएँ

अस्थमा– चिन् मुद्रा, भूचरी मुद्रा।

अनिद्रा– चिन्मय मुद्रा, भैरव मुद्रा, नौमुखी मुद्रा, योग मुद्रा, आकाशी मुद्रा, नभो मुद्रा, उड्डीयानबंध मुद्रा, शाम्भवी मुद्रा-1, शाम्भवी मुद्रा-2, पाशिनी मुद्रा।

आफरा– नासिकाग्र मुद्रा, अगोचरी मुद्रा, महा मुद्रा, महावेध मुद्रा, विपरितकरणी मुद्रा, ताडागी मुद्रा, मांडुकी मुद्रा, काली मुद्रा, भुजंगिनी मुद्रा।

आलस्य– भैरव मुद्रा, नौमुखी मुद्रा, महा मुद्रा, जालंधरबंध मुद्रा, मूलबंध मुद्रा, महाबंध मुद्रा, योनि मुद्रा, शक्तिचालिनी मुद्रा, ताड़ागी मुद्रा,

मांडुकी मुद्रा, अश्विनी मुद्रा, पाशिनी मुद्रा, काकी मुद्रा।

• **आँखों के रोग–** चिन्मय मुद्रा, अगोचरी मुद्रा, उड्डीयानबंध मुद्रा, मूलबंध मुद्रा, महावेध मुद्रा, विपरितकरणी मुद्रा, ताड़ागी मुद्रा, शाम्भवी मुद्रा-2, पाशिनी मुद्रा।

• **आँतों के रोग (अल्सर, आँतों में सूजन, आँतों में रूकावट, नाभि खिसकना, आँतों में गांठ (Tumour) हर्निया एपेन्डिक्स, टाइफाइड, दस्त, कब्ज आदि)–** नासिकाग्र मुद्रा, विपरितकरणी मुद्रा, ताड़ागी मुद्रा, काकी मुद्रा।

• **आमाशय सम्बन्धी विकार (गैस, अल्सर, पेट में गांठ, पेट में कीड़े, भूख कम-ज्यादा लगना आदि)–** चिन्मय मुद्रा, उड्डीयान बंध मुद्रा, विपरितकरणी मुद्रा, ताडागी मुद्रा, शाम्भवी मुद्रा-2, पाशिनी मुद्रा, भुजंगिनी मुद्रा।

अण्डाशय (Testes) हस्तदोष, स्वप्न दोष, वीर्य विकार आदि– अगोचरी मुद्रा, काकी मुद्रा।

अपच– महा मुद्रा, महावेध मुद्रा, विपरितकरणी मुद्रा, ताडागी मुद्रा, मांडुकी मुद्रा, शाम्भवी मुद्रा-2, भुजंगिनी मुद्रा।

अपस्मार मिर्गी (Epilepsy Fits)– नौमुखी मुद्रा, अगोचरी मुद्रा, शाम्भवी मुद्रा-2, पाशिनी मुद्रा।

अकडन (कपकपी)– चिन्मय मुद्रा, नौमुखी मुद्रा, योग मुद्रा, महा मुद्रा, जालंधरबंध मुद्रा, मूलबंध मुद्रा, महाबंध मुद्रा, योनि मुद्रा, शक्तिचालिनी मुद्रा, ताडागी मुद्रा, मांडुकी मुद्रा, अश्विनी मुद्रा, काकी मुद्रा।

• **अस्थितंत्र सम्बन्धी रोग–** चिन् मुद्रा, वज्रोली मुद्रा, शाम्भवी मुद्रा-1, भुजंगिनी मुद्रा।

उच्च रक्तचाप (B.P.)– चिन्मय मुद्रा, नासिकाग्र मुद्रा, उड्डीयानबंध मुद्रा, विपरितकरणी मुद्रा, ताडागी मुद्रा, मांडुकी मुद्रा, शाम्भवी मुद्रा-2, काकी मुद्रा, भुजंगिनी मुद्रा।

ऊर्जा की कमी– चिन् मुद्रा, नौमुखी मुद्रा, योग मुद्रा, ब्रह्म मुद्रा, आकाशी मुद्रा, योनि मुद्रा, शाम्भवी मुद्रा-2।

एसिडीटी– नासिकाग्र मुद्रा, अगोचरी मुद्रा, महावेध मुद्रा, विपरितकरणी मुद्रा, ताडागी मुद्रा, शाम्भवी मुद्रा-2, काकी मुद्रा।

एलर्जी– चिन् मुद्रा, भूचरी मुद्रा, वज्रोली मुद्रा, शाम्भवी मुद्रा-1,

भुजंगिनी मुद्रा।

एपेन्डिक्स– मूलबंध मुद्रा, महाबंध मुद्रा, महावेध मुद्रा, विपरितकरणी मुद्रा, ताडगी मुद्रा, शाम्भवी मुद्रा-2, पाशिनी मुद्रा, भुजंगिनी मुद्रा।

एनिमिया (पांडुरोग)– चिन्मय मुद्रा, काकी मुद्रा।

कब्ज– नौमुखी मुद्रा, योग मुद्रा, महा मुद्रा, जालंधरबंध मुद्रा, महावेध मुद्रा, शक्तिचालिनी मुद्रा, ताडागी मुद्रा, मांडुकी मुद्रा, शाम्भवी मुद्रा-2, अश्विनी मुद्रा, पाशिनी मुद्रा।

कफ– जालंधरबंध मुद्रा, काकी मुद्रा।

कमजोरी– योग मुद्रा, महा मुद्रा, उड्डीयानबंध मुद्रा, मूलबंध मुद्रा, काकी मुद्रा।

• **कमर की तकलीफें (कमरदर्द, कमर के क्षेत्र में जकड़न, सायटिका, मनके का स्थानच्युत होना)**–पाशिनी मुद्रा, काकी मुद्रा।

• **कान की समस्याएँ (कर्णनाद, कान में दर्द, बहरापन, कम सुनना, कान में पीड़ा आदि)–** चिन् मुद्रा, भूचरी मुद्रा, ब्रह्मा मुद्रा, आकाशी मुद्रा, महावेध मुद्रा, खेचरी मुद्रा, विपरितकरणी मुद्रा, पाशिनी मुद्रा।

• **कीडनी (गुर्दे) सम्बन्धी समस्याएँ (कीडनी में सूजन, कीडनी का काम न करना, कीडनी में पथरी, हाइड्रोनेफ्रोसिस, कीडनी का सिकुड़ना अथवा बढ़ना)–** अगोचरी मुद्रा, जालंधरबंध मुद्रा, काकी मुद्रा।

कुष्ठ रोग– महा मुद्रा, काकी मुद्रा।

कैन्सर– नौमुखी मुद्रा, अगोचरी मुद्रा, काकी मुद्रा।

कोमा– चिन् मुद्रा, योग मुद्रा।

कोलेस्ट्रॉल बढ़ना– नासिकाग्र मुद्रा, उड्डीयानबंध मुद्रा, मूलबंध मुद्रा, ताड़ागी मुद्रा, काकी मुद्रा, भुजंगिनी मुद्रा।

खासी– भूचरी मुद्रा, जालंधरबंध मुद्रा, महावेध मुद्रा, खेचरी मुद्रा, विपरितकरणी मुद्रा।

खुजली (स्वाधि)– अगोचरी मुद्रा, काकी मुद्रा, जालंधरबंध मुद्रा।

गाउट (वात रोग)– भूचरी मुद्रा, वज्रोली मुद्रा, भुजंगिनी मुद्रा।

गठिया– चिन् मुद्रा, जालंधरबंध मुद्रा, महावेध मुद्रा, पाशिनी मुद्रा।

• **गर्दन की समस्या** (Cervical Spondilities)– ब्रह्म मुद्रा,

पाशिनी मुद्रा।

• **गले की समस्याएँ (गले में दर्द, गला खराब होना, टान्सिल)**– भूचरी मुद्रा, ब्रह्मा मुद्रा, आकाशी मुद्रा, जालंधरबंध मुद्रा, महावेध मुद्रा, विपरितकरणी मुद्रा।

• **गर्भाशय सम्बन्धी समस्याएँ (प्रजनन समस्या, बांझपन, मासिक स्राव की अनियमिता, पेडु में दर्द, सूजन, गर्भाशय में गांठ (Tumour), ल्यूकोरिया (प्रदर रोग), गर्भपात आदि)**–अगोचरी मुद्रा, जालंधरबंध मुद्रा, काकी मुद्रा, वज्रोली मुद्रा।

घबराहट– ब्रह्म मुद्रा, आकाशी मुद्रा, महावेध मुद्रा, खेचरी मुद्रा।

चक्कर आना– चिन्मय मुद्रा, नासिकाग्र मुद्रा, उड्डीयानबंध मुद्रा, विपरितकरणी मुद्रा, ताडागी मुद्रा, मांडुकी मुद्रा।

चर्म रोग– महा मुद्रा, उड्डीयानबंध मुद्रा, मूलबंध मुद्रा, मांडुकी मुद्रा, काकी मुद्रा।

छाती में दर्द– नासिकाग्र मुद्रा, शाम्भवी मुद्रा-1 ।

जड़ बुद्धि (जड़ता)– भैरव मुद्रा, नौमुखी मुद्रा, योग मुद्रा।

जबड़े में दर्द– चिन् मुद्रा, ब्रह्म मुद्रा, आकाशी मुद्रा, नभो मुद्रा, जालंधरबंध मुद्रा, महावेध मुद्रा, खेचरी मुद्रा, विपरितकरणी मुद्रा।

टी.बी. (Tuber cl;ousis)– नासिकाग्र मुद्रा, वज्रोली मुद्रा, शाम्भवी मुद्रा-1, भुजंगिनी मुद्रा।

टॉन्सिलाइटिस– ब्रह्म मुद्रा, जालंधरबंध मुद्रा, महावेध मुद्रा, खेचरी मुद्रा, विपरितकरणी मुद्रा, पाशिनी मुद्रा।

टाइफाइड– नासिकाग्र मुद्रा, मूलबंध मुद्रा।

डायबीटिस– चिन्मय मुद्रा, योग मुद्रा, उड्डीयानबंध मुद्रा, महाबंध मुद्रा, विपरितकरणी मुद्रा, ताडागी मुद्रा, मांडुकी मुद्रा, शाम्भवी मुद्रा-2।

डायरिया (उल्टी-दस्त लगना)– अगोचरी मुद्रा, काकी मुद्रा।

डीहाइड्रेशन (पानी की कमी)– अगोचरी मुद्रा, मूलबंध मुद्रा, काकी मुद्रा, वज्रोली मुद्रा।

थायरॉइड– नासिकाग्र मुद्रा, जालंधरबंध मुद्रा, खेचरी मुद्रा, पाशिनी मुद्रा।

दाद (Ring Warms)– अगोचरी मुद्रा, जालंधरबंध मुद्रा, वज्रोली मुद्रा, काकी मुद्रा।

• **दाँतों की समस्याएँ (दाँतों में दर्द, दाँतों में पीव आना आदि)**– चिन् मुद्रा, भूचरी मुद्रा, ब्रह्म मुद्रा, विपरीतकरणी मुद्रा, पाशिनी मुद्रा।

नकसीर– अगोचरी मुद्रा, योग मुद्रा।

नाड़ी शुद्धि– पाशिनी मुद्रा।

• **नाभि की समस्याएँ (नाभि खिसकना, नाड़ी में दर्द)**– उड्डीयानबंध मुद्रा, मूलबंध मुद्रा, महाबंध मुद्रा, विपरितकरणी मुद्रा, ताडागी मुद्रा, मांडुकी मुद्रा, शाम्भवी मुद्रा-2, काकी मुद्रा।

निम्न रक्तचाप– मूलबंध मुद्रा, विपरितकरणी मुद्रा, ताडागी मुद्रा।

नशीले पदार्थों का सेवन– अगोचरी मुद्रा, जालंधरबंध मुद्रा, वज्रोली मुद्रा, काकी मुद्रा।

नपुंसकता– वज्रोली मुद्रा, काकी मुद्रा, अगोचरी मुद्रा।

पक्षाघात– नौमुखी मुद्रा, योग मुद्रा, पाशिनी मुद्रा।

पाचन समस्या– अगोचरी मुद्रा, महा मुद्रा, महाबंध मुद्रा, मांडुकी मुद्रा, भुजंगिनी मुद्रा।

• **पित्ताशय सम्बन्धी समस्याएँ (पथरी, पित्ताशय क्षेत्र में दर्द, पित्ताशय की नली में गांठ (Billary Tumour), पीलिया आदि)**– मूलबंध मुद्रा, मांडुकी मुद्रा, काकी मुद्रा, भुजंगिनी मुद्रा।

पेट में कृमि जन्तु होना– मूलबंध मुद्रा, महाबंध मुद्रा, ताडागी मुद्रा, काकी मुद्रा।

• **प्लीहा सम्बन्धी समस्याएँ** (Spleen) **(प्लीहा का बढ़ना (Splenomegaly), दूषित एवं संक्रमित रक्त, ठंड के साथ बुखार, थकान, सुस्ती, कमजोरी, चिंता व शक की बीमारी**– पाशिनी मुद्रा, भुजंगिनी मुद्रा।

पाईल्स (मस्सा)– भैरव मुद्रा, नौमुखी मुद्रा, महा मुद्रा, उड्डीयानबंध मुद्रा, जालंधरबंध मुद्रा, मूलबंध मुद्रा, महाबंध मुद्रा, योनि मुद्रा, शक्तिचालिनी मुद्रा, ताडागी मुद्रा, मांडुकी मुद्रा, अश्विनी मुद्रा, काकी मुद्रा।

पार्किनसन्स रोग– उन्मनी मुद्रा, योग मुद्रा, योनि मुद्रा, शाम्भवी मुद्रा-2।

पित्त विकार– नासिकाग्र मुद्रा, भुजंगिनी मुद्रा।

• **पाँव की समस्याएँ (पैरों में दर्द, ऐठन, हाथ-पैर का पतला पड़ना** (Muscle loss), **सुन्नपन आदि)**– नौमुखी मुद्रा, योग मुद्रा, महा मुद्रा, उड्डीयानबंध मुद्रा, जालंधरबंध मुद्रा, योनि मुद्रा, ताड़ागी मुद्रा, अश्विनी मुद्रा, काकी मुद्रा।

• **पीठ की समस्याएँ (रीढ़ की हड्डी में तकलीफ** (Spine Problem), **झुकी हुई पीठ आदि)**– भैरव मुद्रा, पाशिनी मुद्रा।

• **फेफड़ों की समस्याएँ (ब्रोंकाइटिस, अस्थमा, न्युमोनिया, फेफड़ों में फोड़ा या पस** (Abscess), **फेफड़ों में टी.बी.)**– भूचरी मुद्रा, वज्रोली मुद्रा, भुजंगिनी मुद्रा।

फोड़े-फुन्सी– अगोचरी मुद्रा, मूलबंध मुद्रा, महाबंध मुद्रा, काकी मुद्रा।

बवासीर– योग मुद्रा, महा मुद्रा, उड्डीयानबंध मुद्रा, महावेध मुद्रा, योनि मुद्रा, शक्तिचालिनी मुद्रा, मांडुकी मुद्रा, अश्विनी मुद्रा।

• **बालों की समस्याएँ (बाल झड़ना, बालों का सफेद होना, बालों का रूखापन आदि)**– उन्मनी मुद्रा, भैरव मुद्रा, योग मुद्रा, विपरितकरणी मुद्रा, मांडुकी मुद्रा।

• **बिस्तर गीला करना (नींद में पेशाब करना)**– जालंधरबंध मुद्रा, काकी मुद्रा, अगोचरी मुद्रा।

ब्लड प्रेशर– महाबंध मुद्रा, खेचरी मुद्रा, पाशिनी मुद्रा, भुजंगिनी मुद्रा।

• **मस्तिष्क समस्याएँ (मस्तिष्क कैन्सर, सिरदर्द, कोमा, ब्रेन ट्यूमर आदि)** चिन्मय मुद्रा, नौमुखी मुद्रा, ब्रह्म मुद्रा, उड्डीयानबंध मुद्रा, मांडुकी मुद्रा।

माइग्रेन (आधाशीशी)– उन्मनी मुद्रा, भैरव मुद्रा, योग मुद्रा, आकाशी मुद्रा, महावेध मुद्रा, मांडुकी मुद्रा, पाशिनी मुद्रा।

• **मूत्राशय सम्बन्धी समस्याएँ (मूत्र त्याग में अवरोध, मूत्र मार्ग में संक्रमण, मूत्राशय में पथरी या गांठ, मूत्राशय का बाहर लटकना)**– जालंधरबंध मुद्रा, काकी मुद्रा।

• **यकृत** (Liver) **की अस्वस्थता, यकृत में संक्रमण** (Hepatitis), **यकृत का बढ़ना** (Hepotomegaly), **यकृत में सूजन, यकृत में पित्त-उल्टी-मिचली, यकृत में गांठ या यकृत का काम न करना**– चिन्मय मुद्रा, विपरितकरणी मुद्रा, महावेध मुद्रा, ताड़ागी मुद्रा।

• **रक्त विकार (रक्त कैन्सर, रक्त में आवश्यक तत्त्वों की कमी, रक्त शुद्धि, रक्त की कमी आदि)**– मूल मुद्रा, महाबंध मुद्रा।

लकवा– भैरव मुद्रा, अगोचरी मुद्रा, योग मुद्रा, नभो मुद्रा, उड्डीयानबंध मुद्रा, महावेध मुद्रा, मांडुकी मुद्रा, पाशिनी मुद्रा।

वायु विकार– भूचरी मुद्रा, वज्रोली मुद्रा, शाम्भवी मुद्रा-1, भुजंगिनी मुद्रा।

• **स्नायुतंत्र की समस्या (स्नायुतंत्र में रूकावट, स्नायुतंत्र में खिचाव)**– ब्रह्म मुद्रा, पाशिनी मुद्रा।

सायनस– उन्मनी मुद्रा, नौमुखी मुद्रा, मांडुकी मुद्रा, शाम्भवी मुद्रा-1, शाम्भवी मुद्रा-2

सिरदर्द– नासिकाग्र मुद्रा, योग मुद्रा, नभो मुद्रा, शाम्भवी मुद्रा-1।

• **स्मरण शक्ति की समस्या**– उन्मनी मुद्रा, भैरव मुद्रा, मांडुकी मुद्रा, शाम्भवी मुद्रा-1, शाम्भवी मुद्रा-2, पाशिनी मुद्रा।

• **श्वास तंत्र सम्बन्धी समस्याएँ (श्वास फूलना, बैचेनी, घबराहट, दमा, श्वास लेने में तकलीफ आदि)**– शाम्भवी मुद्रा-प्रथम, भुजंगिनी मुद्रा।

• **स्वर यंत्र की समस्या (आवाज का दबना, मोटा होना, हकलाना आदि)**– ब्रह्म मुद्रा, नभो मुद्रा, जालंधर बंध मुद्रा, महावेध मुद्रा, पाशिनी मुद्रा

• **हृदय सम्बन्धी रोग (सदमा (Shock) Cardiac Failure Disorders of Heart valves Heart Attack, Heart infections disorders)**– चिन् मुद्रा, भूचरी मुद्रा, नासिकाग्र मुद्रा, वज्रोली मुद्रा, शाम्भवी मुद्रा-1।

हिचकी– चिन् मुद्रा, भूचरी मुद्रा, ब्रह्म मुद्रा, आकाशी मुद्रा, जालंधरबंध मुद्रा, खेचरी मुद्रा, विपरितकरणी मुद्रा, पाशिनी मुद्रा।

मानसिक रोगों के निदान में प्रभावी मुद्राएँ

• **क्रोध, पागलपन, घृणा, आसक्ति, अनियंत्रण, अहंकार आदि**– चिन्मय मुद्रा, उन्मनी मुद्रा, भैरव मुद्रा, नौमुखी मुद्रा, योग मुद्रा, महा मुद्रा, उड्डीयानबंध मुद्रा, जालंधर मुद्रा, मूलबंध मुद्रा, महाबंध मुद्रा, महावेध मुद्रा, योनि मुद्रा, शक्तिचालिनी मुद्रा, ताड़ागी मुद्रा, मांडुकी मुद्रा, अश्विनी मुद्रा, पाशिनी मुद्रा, काकी मुद्रा।

• **नशे की लत, भावात्मक अस्थिरता (Over Confidence), अविश्वास, अकेलापन–** अगोचरी मुद्रा, जालंधरबंध मुद्रा, वज्रोली मुद्रा, काकी मुद्रा।

• **एकाग्रता की कमी, अविश्वास, अखुशहाल जीवन, लालच, स्वाभिमान की कमी–** चिन्मय मुद्रा, नासिकाग्र मुद्रा, अगोचरी मुद्रा, महा मुद्रा, उड्डीयानबंध मुद्रा, मूलबंध मुद्रा, महावेध मुद्रा, विपरितकरणी मुद्रा, ताड़ागी मुद्रा, शाम्भवी मुद्रा-2, पाशिनी मुद्रा, काकी मुद्रा, भुजंगिनी मुद्रा।

• **गाली देना, चिल्लाना, बेहोशी, अनुत्साह, निर्ममता, आत्म-सम्मान की कमी, स्नेह की कमी–** चिन् मुद्रा, भूचरी मुद्रा, वज्रोली मुद्रा, शाम्भवी मुद्रा-1, भुजंगिनी मुद्रा।

• **व्यवहार में अकुशल, भावनाओं में रूकावट, आन्तरिक चिन्ता, अनुशासनहीनता, आत्महीनता, घबराहट, निष्क्रियता, भाषा सम्बन्धी समस्या–** भूचरी मुद्रा, ब्रह्म मुद्रा, आकाशी मुद्रा, नभो मुद्रा, उड्डीयान बंध मुद्रा, जालंधरबंध मुद्रा, महाबंध मुद्रा, महावेध मुद्रा, खेचरी मुद्रा, विपरितकरणी मुद्रा, पाशिनी मुद्रा।

• **उन्मत्तता, निराशा, अनुत्साह, अखुशहाल जीवन-** चिन् मुद्रा, नौमुखी मुद्रा, योग मुद्रा, योगि मुद्रा, शाम्भवी मुद्रा-2।

आध्यात्मिक रोगों के निदान में प्रभावी मुद्राएँ

• **क्रोध, मान, माया, लोभ, वाचालता, भय, ईर्ष्या, प्रमाद–** चिन्मय मुद्रा, उन्मनी मुद्रा, भैरव मुद्रा, नौमुखी मुद्रा, योग मुद्रा, महा मुद्रा, उड्डीयानबंध मुद्रा, जालधंरबंध मुद्रा, मूलबंध मुद्रा, महाबंध मुद्रा, महावेध मुद्रा, योनि मुद्रा, शक्तिचालिनी मुद्रा, ताडागी मुद्रा, मांडुकी मुद्रा, अश्विनी मुद्रा, पाशिनी मुद्रा, काकी मुदा।

• **सप्त व्यसन, चंचलता, कामुकता, अभिमान–** अगोचरी मुद्रा, जालंधर बंध मुद्रा, वज्रोली मुद्रा, काकी मुद्रा।

• **आत्मबल की कमी, एकाग्रता की कमी, शंकालु वृत्ति–** चिन्मय मुद्रा, अगोचरी मुद्रा, महा मुद्रा, उड्डीयान बंध मुद्रा, मूलबंध मुद्रा, महाबंध मुद्रा, महावेध मुद्रा, विपरितकरणी मुद्रा, ताडागी मुद्रा, शाम्भवी मुद्रा-2, पशिनी मुद्रा, काकी मुद्रा, भुजंगिनी मुद्रा।

• **वाणी पर अनियंत्रण, असंवेदनशीलता, करुणाहीन, हिंसक भावना–** भूचरी मुद्रा, नासिकाग्र मुद्रा, वज्रोली मुद्रा, शाम्भवी मुद्रा-1, भुजंगिनी मुद्रा।

• **अध्यात्म अरुचि, आत्मानुशासन की कमी, मान कषाय–** चिन् मुद्रा, भूचरी मुद्रा, ब्रह्मा मुद्रा, आकाशी मुद्रा, नभो मुद्रा, जालंधरबंध मुद्रा, महाबंध मुद्रा, महावेध मुद्रा, खेचरी मुद्रा, विपरितकरणी मुद्रा, पाशिनी मुद्रा।

• **ज्ञान का अभिमान, मायाचारी, निरर्थक चिन्ता–** चिन्मय मुद्रा, नासिकाग्र मुद्रा, भैरव मुद्रा, नौमुखी मुद्रा, अगोचरी मुद्रा, योग मुद्रा, आकाशी मुद्रा, नभो मुद्रा, उड्डीयानबंध मुद्रा, मांडुकी मुद्रा, शाम्भवी मुद्रा-1, शाम्भवी मुद्रा-2, पाशिनी मुद्रा।

आधुनिक विज्ञान प्रगति के मार्ग पर बहुत आगे बढ़ चुका है। भौतिक उपलब्धियों की धुन में वह अपनी आध्यात्मिक मूल धरोहर को विस्मृत करता जा रहा है। देश कालगत परिस्थितियों के कारण प्राच्य विद्याओं का निरंतर ह्रास हो रहा है। इसी के साथ वर्तमान में घटता शारीरिक बल एवं मानसिक दृढ़ता भी आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक वतन में हेतुभूत बन रही है। इस स्थिति में मुद्रा योग अनेक यौगिक सिद्धियों को उपलब्ध करवाने के साथ विकार रहित एवं रोग मुक्त होने का भी सुसिद्ध उपाय है। उपरोक्त सूची से यह प्रमाणित हो जाता है कि मुद्रा विज्ञान के द्वारा किसी भी प्रकार के रोग का निदान किया जा सकता है तथा जीवनगत समस्याओं का निराकरण एवं स्वस्थ जीवन की प्राप्ति भी हो सकती है।

●

सहायक ग्रन्थ सूची

क्र.	ग्रन्थ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक	वर्ष
1.	संस्कृत हिन्दी कोश	वामन शिवराम आप्टे	मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, दिल्ली	1966
2.	निर्वाणकलिका	आचार्य पादलिप्त सूरि	निर्णयसागर मुद्रालय, मुंबई	1926
3.	जयेन्द्र योग प्रयोग	डॉ. रमेश कुमार	मेघ प्रकाशन, एक्स 9/38, ब्रह्मपुरी, दिल्ली-53	1982
4.	तन्त्रालोक में कर्मकाण्ड	बीना अग्रवाल संपा. सूर्यप्रकाश व्यास	प्रशान्त प्रकाशन, वाराणसी	1996
5.	शारदातिलक	संपा. आर्थर एवलोन	मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी	
6.	शिवसूत्र वार्तिक	संपा. जगदीशचन्द्र चटर्जी	द रिसर्च डिपार्टमेन्ट जम्बू एण्ड कश्मीर, श्रीनगर	1916
7.	योगिनी हृदय	संपा. श्री गोपीनाथ कविराज	संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी	
8.	तन्त्रालोक	अभिनव गुप्ता संपा. डॉ. द्विवेदी	मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी	1918
9.	स्वच्छन्दतन्त्र	माहेश्वराचार्य क्षेमराज	सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।	
10.	कुलार्णवतन्त्र	संपा. डॉ. सुधाकर मालवीय	चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी	2006
11.	तंत्र, क्रिया और योगविद्या	स्वामी सत्यानंद सरस्वती	बिहार योग विद्यालय, मुंगेर	1993
12.	सम्पूर्ण योगविद्या	राजीव जैन	मंजुल पब्लिशींग हाउस, भोपाल	2008
13.	हठयोग प्रदीपिका	रामयोगीन्द्र	वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, मुंबई	
14.	घेरण्ड संहिता	महर्षि घेरण्ड संपा. डॉ. चमनलाल गौतम	संस्कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब, बरेली	1992

क्र.	ग्रन्थ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक	वर्ष
15.	शिव संहिता	अनु. अजय कुमार उत्तम	भारतीय विद्या संस्थान, वाराणसी	2001
16.	गोरक्ष संहिता	संपा. डॉ. चमनलाल गौतम	संस्कृति संस्थान, बरेली	2005
17.	योगचूडामण्यूपनिषत्	पं. जगदीश शास्त्री	मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी।	–
18.	योगकुण्डल्यूपनिषत्	पं. जगदीश शास्त्री	मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी	–

●

परिशिष्ट-I

विशिष्ट शब्दों का अर्थ विन्यास

योग एक प्राकृतिक विज्ञान है। प्राचीन ऋषि-मुनियों ने पारम्परिक ज्ञान, उच्च्व साधना एवं गहरी खोजों के आधार पर इनकी संसिद्धि की है। यह प्राच्य विद्या होने से इसके रहस्यपूर्ण तथ्य संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं में निबद्ध है। यद्यपि आज इन्हें जन ग्राह्य हिन्दी, अंग्रेजी आदि भाषाओं में अनुवादित कर सुगम्य बना दिया गया है। परन्तु आज के Convent शिक्षित लोगों के लिए इसमें प्रयुक्त रहस्यपूर्ण पारिभाषिक शब्दों को समझना कठिन है। कई बार नित्य प्रयुक्त होने वाले शब्दों से हम परिचित होते हैं परन्तु उनके बारे में ठोस जानकारी नहीं होती। इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखकर योग साधना में प्रयुक्त कुछ प्रमुख शब्दों को सरल रीति से यहाँ समझाने का प्रयास किया जा रहा है। इससे मुद्रा साधना अधिक सहज और सुगम हो जाएगी।

आसन– शरीर की ऐसी स्थिति, जिसमें कष्ट न हो। वह आसन कहा जाता है।

उज्जायी प्राणायाम– सुखासन में बैठकर बाह्य वायु को दोनों नासारन्ध्रों में खींचना और आन्तरिक वायु को हृदय एवं कण्ठ से खींचते हुए कुम्भक करना। फिर जालंधर बन्ध लगाते हुए यथाशक्ति स्थिर रहना उज्जायी प्राणायाम कहलाता है।

उज्जायी शब्द में 'उद्' 'उपसर्ग ऊपर की ओर' इस अर्थ को सूचित करता है। इसमें बाह्य एवं भीतरी वायु को ऊपर की ओर खींचा जाता है एवं छाती का भाग ऊपर उठ जाता है इसलिए इसका नाम उज्जायी है।

इस प्राणायाम में भीतर की वायु को खींचकर जब कुम्भक लगाते हैं उस समय कंठ द्वार को थोड़ा सा संकुचित करें। यदि कंठद्वार का संकुचन ठीक ढंग से किया गया है तो पेट में भी हल्के संकुचन का अनुभव होगा। साथ ही श्वास-प्रश्वास करते समय गले में निरन्तर एक विशेष आवाज आती हुई मालूम पड़ेगी।

इस आवाज को केवल आप ही सुन सकते हैं। यह ध्वनि कंठमार्ग में संकुचन होने के कारण वायु के प्रवाह में अवरोध उत्पन्न होने से होती है। इस घर्षण की आवाज ठीक इसी तरह होती है जैसे छोटा बच्चा नींद के दौरान आवाज करता है।

पद्मासन– पद्म का अर्थ कमल, आसन का अर्थ आकृति। जिसमें कमल के फूल के समान पैरों की आकृति बनती है वह पद्मासन कहलाता है।

इस आसन में स्थिर होने के लिए सर्वप्रथम सुखासन में बैठ जायें। फिर बाएँ पैर के पंजे को दाहिनी जाँघ पर रखें। फिर दाहिने पैर के पंजे को उठाकर बाएँ पैर की जाँघ पर रखें।

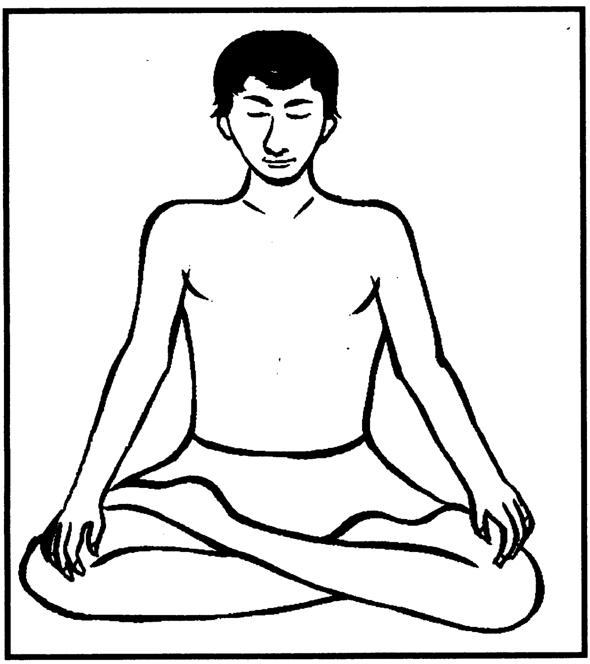

पद्मासन

मेरूदण्ड सीधा रहे, घुटने भूमि से स्पर्शित रहें। बाएँ हाथ को दोनों पैरों के तलवों के ऊपर एवं दाहिने हाथ के पंजे को बाएँ हाथ के पंजों के ऊपर रखें, ताकि नाभि से स्पर्श होता रहे। दोनों हाथों को घुटनों पर भी रख सकते हैं।

इस स्थिति में जितनी देर रुक सकते हैं रुकें। श्वास- प्रश्वास लेते रहें। यह पद्मासन की पूर्ण विधि है।

सिद्धासन– सिद्धि प्राप्ति में सहायक आसन सिद्धासन कहलाता है।

इस आसन में स्थिर होने के लिए प्रथम सुखासन में बैठ जायें। फिर बाएँ पैर के तलवे को दाहिनी जाँघ से सटाकर ऐसे लगाएँ ताकि एड़ी आपके गुदा और अंडकोश के बीच भाग को छू सकें। दाहिने पैर के पंजे को जननेन्द्रिय और वस्ति की हड्डी के मध्य दबाव डालते हुए रखें। दाहिने पैर की अंगुलियों को बायीं पिंडली और जांघ के बीच फसाएँ।

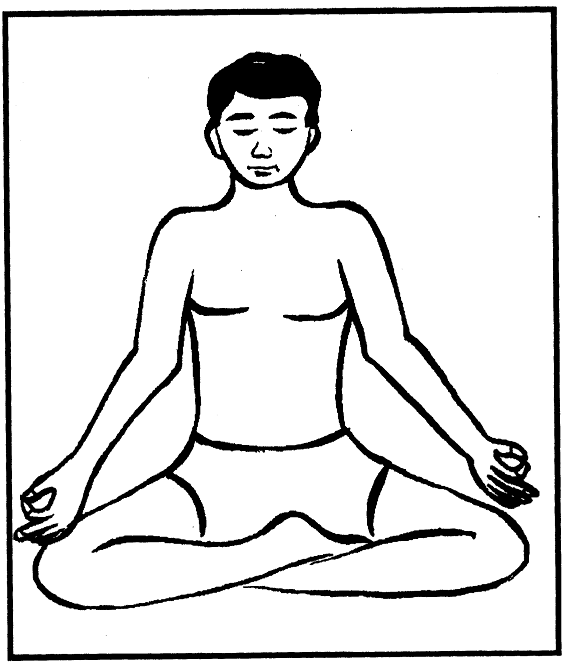

सिद्धासन

घुटने जमीन को छूते हुए रहें, मेरूदण्ड सीधा रहें, दोनों हाथ ज्ञानमुद्रा में घुटनों पर स्थिर रहें।

सुखासन– वह आसन जिसमें सुखपूर्वक बैठा जा सकें अथवा जिस आसन में बैठने पर तन-मन को सुख की अनुभूति हो, सुखासन कहलाता है।

अत्यन्त सहजता पूर्वक पालथी मारकर, दोनों हाथों को गोद में या घुटनों

पर स्थिर करते हुए बैठना सुखासन है। मेरुदण्ड, गर्दन एवं मस्तक सीधे रहें।

वज्रासन– शरीर की वह स्थिति जिसमें कुछ अंगों का कठोरता पूर्वक प्रयोग किया जाता है वज्रासन कहलाता है।

इस आसन में स्थिर होने के लिए दोनों पैरों के घुटने इस तरह मोड़कर बैठें कि पैरों के तलवे नितम्ब भाग के नीचे रहें, एड़ियाँ गुदाद्वार और अंडकोश के मध्य रहे और दोनों पादांगुष्ठ एक-दूसरे से परस्पर स्पर्श करते रहें। दोनों हाथ ज्ञान मुद्रा में घुटनों पर स्थिर रहे, मेरूदण्ड व गर्दन सीधी रहें।

सिद्धयोनि आसन– सिद्धासन पुरुषों के लिए एवं सिद्धयोनि आसन-स्त्रियों के लिए करणीय है।

शरीर की वह स्थिति जिससे योनि द्वार को आत्मकेन्द्रित किया जाता है सिद्धयोनि आसन कहलाता है।

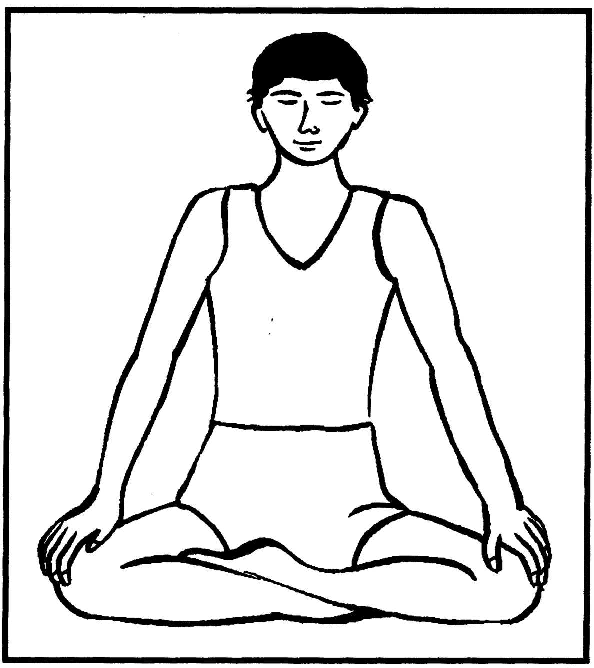

सिद्धयोनि

इस आसन में बैठने के लिए प्रथम दोनों पैरों को सामने सीधा फैलाकर बैठ जायें तदनन्तर दाहिने पैर को मोड़ लें और तलवे को बायीं जाँघ के भीतरी

हिस्से से लगा दें। दाहिनी एड़ी को इस तरह से व्यवस्थित कर लें कि उसका दबाव योनिमुख पर पड़े। फिर बायें पैर को मोड़कर दाहिनी पिंडली के ऊपर रखें। फिर धीरे से बायें पैर की अंगुलियों को दाहिनी पिंडली के बीच दबा लें। दाहिने पैर की अंगुलियों को दाहिनी जाँघ तथा पिंडली के बीच से ऊपर की ओर खींच लें।

घुटने जमीन से लगे रहें, मेरुदण्ड एवं सिर सीधा रखें।

तंत्र– तंत्र, तनोति + त्रायति इन दो शब्दों का संयुक्त रूप है। तनोति का अर्थ है विस्तार, विकास, खींचना। त्रायति का अर्थ है स्वतंत्र या मुक्त होना। समग्र दृष्टिकोण से (तन् + त्रा) तंत्र का अर्थ हुआ चेतना जगत और मूर्त जगत के ज्ञान को विकसित करना या उसका विस्तार करना, अपनी इच्छाओं का परिसीमन कर भौतिकता से परे चले जाना। इस तरह तंत्र शब्द अध्यात्म प्रधान है।

तंत्र का साधक तांत्रिक कहलाता है। तंत्र वह पद्धति है जो जीवन के सर्वांगीण विकास का लक्ष्य रखती हैं।

जीवन की दृश्य समस्याओं के साथ समझौता करने का और अंततः पूर्ण ज्ञान की उपलब्धि का साधन है।

यंत्र– मंडल का विशिष्ट आकार यंत्र कहलाता है।

सृष्टि की शक्तियों का केन्द्र बिन्दु, एक निश्चित आकार अथवा योजना से तैयार किया गया मंडल।

मंत्र– यंत्र चेतना का रूप होता है जबकि मंत्र चेतना का वाहन है।

यंत्र प्रकट अभिव्यक्ति, शक्ति की समाकृति है जबकि मंत्र शक्ति रूप है एवं चेतना और आकार के मध्य सम्पर्क सूत्र है।

यंत्र दृश्य रूप प्रकाशन है और मंत्र उस प्रकाशन का वाहन है।

बंध– बंध का अर्थ बांधना, कसना या बंद करना है। यहाँ बंध शब्द का प्रयोग यौगिक क्रिया के संदर्भ में है।

इस योग क्रिया में शरीर के कुछ निश्चित अंगों को बड़ी सतर्कता से संकुचित किया जाता है अथवा कसा जाता है इसलिए इसका नाम बंध हैं।

बंध के तीन प्रकार माने गये हैं।

1. जालंधर 2. उड्डीयान और 3. मूलबंध।

जालंधर बंध– जालन का अर्थ है जाल और धर का अर्थ है- धारा प्रवाह। इसका उपयुक्त अर्थ है- शरीर की नाड़ियों का जाल या गुच्छा।

जिस अभ्यास के द्वारा गर्दन से जाने वाली नाड़ियों के जाल को नियंत्रित किया जाता है जालंधर बंध कहलाता है।

एक परिभाषा के अनुसार जिस क्रियाभ्यास से गर्दन के क्षेत्र के प्राण-प्रवाहों को बांधा जाता है वह जालंधर बंध कहलाता है।

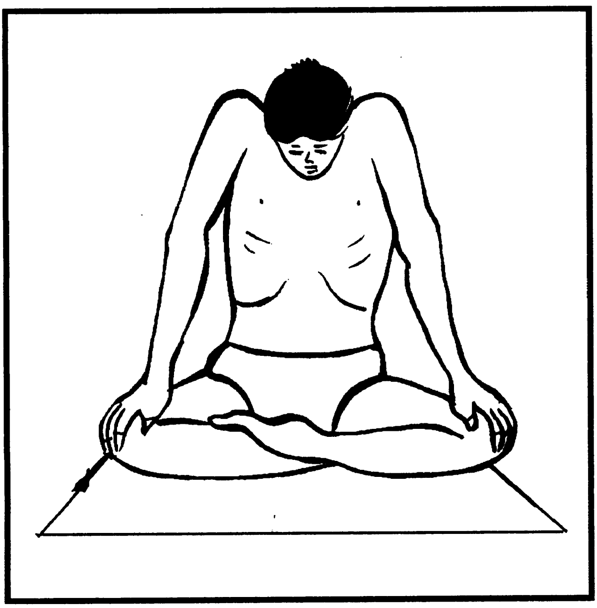

जालंधर बंध

जालंधर बंध करने के लिए सुविधाजनक आसन में बैठ जाये, दोनों घुटने जमीन से सटे रहें, दोनों हथेलियाँ को घुटनों पर रखें, पूरे शरीर को शिथिल करें, आंखें बंद करते हुए गहरा श्वास लें। श्वास को अंदर ही रोक दें। फिर सिर को सामने झुकाकर ठुड्डी को दृढ़तापूर्वक गले से लगा लें अर्थात छाती से सटाकर रखें।

इस स्थिति में जितनी देर तक श्वास रोककर रख सकें रखे, फिर कंधों को शिथिल करते हुए श्वास बाहर छोड़ें और सामान्य स्थिति में आ जाये, यह जालंधर बंध कहा जाता है।

इस बंध को करते समय भुजाओं को सीधी करें, ताकि वे जकड़ जायें। गर्दन के भाग पर प्रबलता से दबाव रहें, कुंभक के वक्त इष्ट का स्मरण करें।

जप– जप का शाब्दिक अर्थ है आवर्तन या चक्र। वह शुभ क्रिया जिसमें किसी एक मंत्र को उसकी एक निश्चित संख्या पूरी होने तक दोहराया जाता है जाप कहलाता है।

नादयोग– संस्कृत के 'नद' शब्द से नाद बनता है। नद का अर्थ प्रवाह है। वह आंतरिक ध्वनि जिससे चेतना के प्रवाह को अपने उद्गम स्थल तक पहुंचाया जा सके नाद कहलाता है। नाद की प्रतीति करना नादयोग है।

जिस प्रकार फूल में सुगंध और दर्पण में प्रतिबिम्ब है उसी प्रकार नाद अंतर्निहित है, यह शरीर के भीतर तार रहित अनुनादित संगीत है।

उड्डियान बन्ध– उड्डियान का अर्थ ऊपर उठना या उड़ना है और बन्ध का मतलब बांधना है।

इस क्रिया में उदर प्रदेश को छाती की ओर अर्थात ऊपर की तरफ उठाया जाता है अथवा प्राण सुषुम्ना के निकट पहुंचकर सुषुम्ना के साथ ऊर्ध्वगामी बनता है। (सुषुम्ना नाड़ी मेरूदण्ड के सभी चक्रों से होती हुई ऊपर सहस्त्रार चक्र में जाती है) इसलिए इस बंध का नाम उड्डीयान बंध है।

उड्डीयान बंध करने के लिए ध्यान के किसी आसन में बैठ जायें। दोनों घुटने जमीन से सटे हुए रहें। दोनों हथेलियाँ दोनों घुटनों पर रखें। दोनों आँखें बन्द कर लें। सम्पूर्ण शरीर को शिथिल करें। जितनी गहराई से श्वास को बाहर छोड़ सकते हैं छोड़ दें। पेट और छाती की मांसपेशियों को संकुचित करके फेफड़ों की वायु को बाहर निकाल दें। श्वास को बाहर ही रोक दें। फिर जालन्धर बंध करें। दोनों हाथों से घुटनों पर दबाव देते हुए पेट को और अन्दर की ओर ले जायें। यह इसकी अंतिम अवस्था है।

इस अवस्था में श्वास रोके हुए कुछ समय तक रूकें।

धीरे-धीरे छाती को शिथिल कर दें, जालंधर बंध को मुक्त करें और हाथों को मोड़ लें।

धीरे-धीरे पूरक करें। यह उड्डीयान बंध कहलाता है।

चक्र– चक्र का शाब्दिक अर्थ पहिया या वृत्त है। योग के संदर्भ में सटीक अर्थ 'भँवर' है। ये चक्र ऐसे भँवर हैं जो शरीर के विशिष्ट भाग में प्राण-प्रवाह

को नियंत्रित करते हैं और सम्पूर्ण शरीर में परिव्याप्त है। इन चक्रों को पद्म या कमल के नाम से भी जाना जाता है।

चक्र मानवीय संरचना में निहित प्राणमय केन्द्र है। प्रत्येक व्यक्ति में ये चक्र असंख्य मात्रा में विद्यमान हैं तथापि योगसाधना में उपयुक्त किये जाने वाले सात चक्र हैं।

1. मूलाधार, 2. स्वाधिष्ठान 3. मणिपुर, 4. अनाहत, 5. विशुद्धि 6. आज्ञा और 7. सहस्रार।

शरीर संरचना में प्रत्येक चक्र उस बटन (स्विच) के समान है जिसको प्रारम्भ (ऑन) करने पर मन के विशिष्ट स्तर जागृत और सक्रिय हो जाते हैं।

मूलाधार चक्र– मूल अर्थात जड़ और आधार यानी सहारा। इसे चेतना के उत्थान की आधार भूमि कह सकते हैं।

यह चक्र प्रत्येक व्यक्ति के अस्तित्व का ढांचा है।

यह एक मंच है जहाँ से प्रत्येक व्यक्ति (पुरुष अथवा स्त्री) स्वयं को अभिव्यक्त कर सकता है।

यह एक ऐसा हवाई अड्डा है जहाँ से व्यक्ति चेतना के उच्च स्तरों की ओर उड़ान भर सकता है।

आत्मा की मूल शक्ति जो कुंडलिनी नाम से पहचानी जाती है, वह मूलाधार चक्र में वास करती है।

मूलाधार चक्र पेरिनियम क्षेत्र में स्थित है। इसकी स्थिति पुरुष और स्त्री में थोड़ी भिन्न है।

पुरुष में– गुदाद्वार और जननांग के मध्य भाग में है तथा स्त्री में– योनि और गर्भाशय के संगम स्थल पर है।

कुंडलिनी– चेतना की वह शक्ति, जो मूलाधार चक्र में साढ़े तीन कुंडली मारे हुए सर्प के रूप में स्थित है।

पुरुष या नारी की यह शक्ति जब तक सुप्त अवस्था में रहती है वे पशुवत जीवन जीते है। योगाभ्यास द्वारा कुंडलिनी निष्क्रिय से सक्रिय रूप में रूपान्तरित होती है।

जब कुंडलिनी जागती है और उच्च चक्रों की ओर ऊर्ध्वगमन करती है तब आनन्द और ज्ञान की अभिवृद्धि होती है।

सुषुम्ना– हमारे शरीर में साढ़े तीन लाख नाड़ियाँ हैं परन्तु 72,000 का उल्लेख अधिकतम मिलता है। इसमें मुख्य रूप से चौदह हैं उनमें भी तीन नाड़ियाँ प्रमुख हैं–

1. इड़ा 2. पिंगला और 3. सुषुम्ना।

सुषुम्ना नाड़ी एक सूक्ष्म प्रतीकात्मक पथ है जो सभी प्रमुख चक्रों से संयुक्त है अथवा यह वह प्रतिकात्मक पथ है जिसमें से होकर कुण्डलिनी मूलाधार से सहस्रार तक की आरोहण-यात्रा पूर्ण करती है।

सामान्यत: कुंडलिनी के निवास स्थान पर ही सुषुम्ना की उत्पत्ति मानी जाती है इस दृष्टि से सुषुम्ना का उद्भव स्थान मूलाधार है।

वह मूलाधार से प्रारम्भ होकर मेरुदण्ड के सहारे सहस्रार तक जाती है। उसके दाहिनी ओर पिंगला एवं बायीं ओर इड़ा स्थित है।

इड़ा में सूर्य तत्त्व एवं पिंगला में चन्द्र तत्त्व विचरण करते हैं इसीलिए दाहिने स्वर को चन्द्रस्वर और बायें स्वर को सूर्य स्वर कहा जाता है।

मूलबंध– बंध के तीन प्रकारों में से एक।

मूल का अर्थ जड़ और बंध का अर्थ बांधना है। यहाँ मूल शब्द के अनेक तात्पर्य हो सकते हैं जैसे- मूलाधार चक्र, कुंडलिनी का निवास स्थान, मेरुदण्ड का आधार आदि। समग्र दृष्टिकोण से मूलबंध का अर्थ हुआ गुदा और जननांग के मध्य भाग को संकुचित करते हुए बांधना।

मूलबंध करने के लिए पुरुष सिद्धासन तथा महिलाएँ सिद्धयोनि आसन में बैठ जायें। हथेलियों को घुटनों पर रख लें। पूरे शरीर को शिथिल तथा आँखें बन्द कर दें। गहरी श्वास लें, अंतर्कुंभक करें, जालंधर बंध लगायें। फिर बिना बल-प्रयोग किये मूलाधार क्षेत्र की निर्धारित मांसपेशियों को संकुचित करते हुए यथासंभव ऊपर की ओर खींचे। इस संकुचन को यथाशक्ति कायम रखें।

तत्पश्चात उस संकुचन को ढ़ीला कर दें, जालंधर बंध को मुक्त कर दें तथा सिर को ऊपर उठाकर रेचक करें। यह मूलबंध कहलाता है।

पूरक = श्वास ग्रहण करना

रेचक = श्वास बाहर छोड़ना

कुंभक = श्वास को रोकना। कुम्भक की द्विविध स्थितियाँ बनती हैं।

1. अंतर्कुम्भक - श्वास को भीतर की ओर रोकना अंतर्कुंभक कहलाता है।

2. बहिर्कुंभक - श्वास को बाहर की ओर रोकना बहिर्कुंभक कहलाता है।

मणिपुर चक्र– सात चक्रों के आरोही क्रम में तीसरा चक्र।

मणि का अर्थ रत्न और पुर का अर्थ नगर है अर्थात रत्नों का नगर। मणिनगर नाम पड़ने के पीछे मुख्य कारण यह है कि इस चक्र के स्थान पर प्राण की तीव्रता या प्रचंडता अधिकतम रहती है।

यह चक्र स्थान मणियों की माला के समान चमकता है इसलिए इसे मणिपुर चक्र कहते हैं।

इस चक्र का स्थान मेरुदंड के मध्य नाभि के ठीक पीछे है।

अनाहत चक्र– अनाहत का अर्थ है अप्रभावित या अविजित। मानव शरीर का वह स्थान जहाँ साधक को सूक्ष्म ध्वनि सुनाई देती है, जो दो वस्तुओं के घर्षण या आघात के बिना निर्मित होती है अनाहत चक्र कहलाता है। इसी को शब्द ब्रह्म कहते है।

यह चक्र मेरुदंड में हृदय के ठीक पीछे स्थित है।

विशुद्धि चक्र– विशुद्धि का अर्थ है शुद्धि, पवित्रता। शरीर का वह शक्ति स्थल, जिसके उद्घाटित होने पर इष्ट और अनिष्ट विष और अमृत तथा सृष्टि की समस्त वस्तुएँ आनन्दानुभूति के रूप में परिणत हो जाती है, विरोधी तत्त्वों में सामंजस्य और शान्ति स्थापित होती है विशुद्धि चक्र कहलाता है।

इस चक्र का स्थान मेरूदंड में कंठकूप के सामने अथवा विशुद्धि क्षेत्र के ठीक पीछे हैं।

आज्ञा चक्र– आज्ञा का अर्थ आदेश है। मानव शरीर का ऊर्ध्वभागीय स्थान जहाँ चेतना का विशिष्ट ज्ञान प्रकट होता है वह आज्ञा चक्र कहलाता है।

आज्ञा चक्र जीवन के मूल स्रोत का प्रवेश द्वार है। कहते हैं कि मानवीय देह रचना में इन्द्रिय अनुभूतियों के दस द्वार हैं। प्रथम नौ- दोनों आँखें, दोनों कान, दोनों नासारन्ध्र, मुख, गुदाद्वार और मूत्रेन्द्रिय है। इन द्वारों के माध्यम से मनुष्य का बाह्य जगत के साथ सम्बन्ध स्थापित होता है। दसवाँ दरवाजा आज्ञा चक्र है जो सूक्ष्म जगत का परिचय करवाता है।

यह आज्ञा चक्र मेरूदंड के सबसे ऊपर ललाट के मध्य भाग में (दोनों भौंहों के बीच) स्थित है। यह वह स्थान है जहाँ ईड़ा और पिंगला परस्पर मिलकर सुषुम्ना में परिणत हो जाती है।

एक्युप्रेशर– एक्यु का मतलब होता है एक्युरेट अर्थात सही, प्रेशर का मतलब होता है दबाव अर्थात शरीर के किसी भाग पर दबाव देकर रोगोपचार करना एक्युप्रेशर कहलाता है।

अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ– जिस प्रकार मधुमक्खी फलों का रस संचय कर उसमें अपना थूक मिलाकर मधु बनाती है ठीक उसी प्रकार ग्रंथियाँ शरीर में से आवश्यक तत्त्व ग्रहण कर एवं उसमें अपना रस मिलाकर रासायनिक कारखानों की भाँति शक्तिशाली हारमोन्स का निर्माण करती हैं।

प्रत्येक ग्रन्थि आवश्यकतानुसार एक या उससे अधिक हारमोन्स बनाती है, जिसकी तरंगें नाड़ी संस्थान के माध्यम से आकाशवाणी की भाँति प्रसारित होकर, शरीर के प्रत्येक भाग में शीघ्र पहुँचने की क्षमता रखती है। ये हारमोन्स हमारे शरीर में प्रतिक्षण निष्क्रिय होने वाले मृतप्राय: कोशिकाओं को पुनर्जीवित कर क्रियाशील बनाने का कार्य करते हैं जिससे सभी शारीरिक क्रियाएँ व्यवस्थित रूप से चलती रहें। परन्तु जब ग्रन्थियों में विकृति आ जाती हैं और उन्हें पुन: शीघ्र संतुलित न किया जाये तो शरीर में असाध्य रोग पनपने लगते हैं। रोग की अवस्था में जो उपचार करते हैं, वे तो प्राय: रोग के लक्षण मात्र होते हैं, रोग के मूल कारण नहीं। मूल कारण होते हैं अन्त:स्रावी ग्रन्थियों का असंतुलन।

हमारे शरीर में 8 अन्त:स्रावी ग्रन्थियाँ होती है–

1. पीयूष 2. पिनीयल, 3. थायरॉइड 4. पेराथायरॉइड 5. थायमस 6. एड्रीनल 7. पैंक्रियाज 8. प्रजनन

पीयूष ग्रन्थि– यह ग्रन्थि सिर में मस्तिष्क के नीचे मटर के दाने से भी छोटे आकार में स्थित है। यह सभी ग्रन्थियों में प्रमुख मास्टर ग्लेण्ड के समान है। इसका स्राव अन्य ग्रन्थियों को उत्तेजित करता है ताकि वे अपना-अपना निर्धारित कार्य बराबर कर सके।

पिनीयल ग्रन्थि– यह ग्रन्थि मस्तिष्क के पीछे राई के दाने से भी छोटे आकार में स्थित है। यह ग्रन्थि प्रधान सचिव की भाँति शरीर की व्यवस्था एवं गतिविधियों में संचालन का कार्य करती है।

सभी ग्रन्थियों एवं अवयवों को संतुलित रखना, उनका विकास करना और आवश्यक कार्य करवाना इसके अधीन होता है।

थायरॉइड ग्रन्थि– यह ग्रन्थि कंठ के नीचे गले की जड़ में दो भागों में विभक्त है। इसका सीधा सम्बन्ध पाचन क्रिया से है इसलिए यह भोजन को रक्त, मांस, मज्जा, हड्डियां एवं वीर्य में बदलने में सहयोग करती है। इसका प्रजनन अंगों से भी सीधा सम्बन्ध है जिससे प्रजनन अंगों को भी स्वच्छ रखती है।

पेराथायरॉइड ग्रन्थि– यह ग्रन्थि गले में थायरॉइड ग्रन्थि के पीछे दोनों तरफ दो-दो अर्थात कुल चार छोटी-छोटी ग्रन्थियों के रूप में है। ये ग्रन्थियाँ शरीर का सबसे अधिक रक्तमय अवयव होती है तथा रक्त के रसायनिक तत्त्वों को ठीक करने में सहायक होती है।

इस ग्रन्थि के स्राव रक्त में केलशियम एवं फासफोरस के प्रमाण का संतुलन रखते हैं। शरीर में इनका संतुलन बिगड़ने से बाइंटे (क्रेम्पस) आने लगते है। रक्त में केलशियम का अनुपात काफी महत्त्वपूर्ण होता है क्योंकि यह रक्त के बहाव को रोकने अर्थात कोलस्ट्रोल को नियन्त्रित रखने, नाड़ियों तथा मांसपेशियों की गतिविधियों को संचालित करने हेतु जरूरी होता है।

थायमस ग्रन्थि– यह ग्रन्थि गर्दन के नीचे तथा हृदय के कुछ ऊपर सीने के मध्य में स्थित होती है। इसको बच्चों की धायमाता भी कहते हैं, क्योंकि यह बच्चों की रोगों से रक्षा करती है। यह ग्रन्थि बालकों के शारीरिक विकास एवं जननेन्द्रियों के विकास पर नियन्त्रण रखती है। युवा अवस्था प्रारम्भ होने पर इसके पिंड धीरे-धीरे लुप्त होने लगते हैं।

जब तक यह ग्रंथि सक्रिय रहती है प्रजनन अंग उत्तेजित नहीं होते तथा मन में कामवासना के विकार जागृत नहीं होते।

एड्रीनल ग्रन्थि– यह ग्रन्थि दोनों गुर्दों के ठीक ऊपर होती है जो शरीर की समस्त गतिविधियाँ जैसे हलन-चलन, श्वसन, रक्त परिभ्रमण, पाचन, मांसपेशियों का संकुचन अथवा फैलाव, अनावश्यक पदार्थों का निष्कासन आदि में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

इसका कार्य लड़ो या भाग जाओ अर्थात शरीर की प्रतिकारात्मक क्षमता विकसित करना है। शरीर के लिए आवश्यक सभी प्रकार की दवाओं का निर्माण इस ग्रन्थि के स्राव बनाने में सहयोग करते हैं।

पेन्क्रियाज ग्रन्थि– यह ग्रन्थि 6'' से 8'' लम्बी पेट में स्थित है। इसका ऊपरी भाग पाचक रस बनाता है जो क्षारीय स्वभाव का होने से शरीर में

आम्लीय तत्त्वों का नियन्त्रण रखता है। नीचे वाला भाग इंसुलिन नामक रस बनाता है जो शरीर में ऊर्जा उत्पादन हेतु मुख्य तत्त्व होता है।

प्रजनन ग्रन्थियाँ– यह ग्रन्थि कामेच्छा को नियन्त्रित कर विपरीत लिंग में आकर्षण पैदा करती है। जहाँ पिनियल कामेच्छा जागृत करती है, थायराइड उसे गति देती है, पीयूष ग्रन्थि प्रजनन अंगों का विकास करती है वहीं यह ग्रन्थि सारे प्रजनन तंत्र के कार्यों का संचालन करती है।

प्रजनन ग्रन्थियाँ ऐसे हार्मोन्स का निर्माण करती है जिसके द्वारा स्त्री-स्त्रीत्व प्राप्त करती है और उसमें स्त्रियोचित व्यक्तित्व बना रहता है। इन ग्रन्थियों के स्राव से पुरुषों में पुरुषत्व का गुण पैदा होता है।

पंचमहाभूत– प्रत्येक मनुष्य का शरीर पंच तत्त्वों से निर्मित है। इन पंच तत्त्वों को ही महाभूत की संज्ञा दी गई है। ये पांचों तत्त्व मनुष्य शरीर के प्रत्येक भाग में होते हैं फिर भी भिन्न-भिन्न भागों में इस पांचों का अनुपात अलग-अलग होता है। उसी के अनुरूप प्रत्येक अंग अवयव अपना अलग-अलग कार्य करते हैं। शरीर में इन पंच तत्त्वों के अनुरूप अवयव बनते हैं और अन्य गतिविधियाँ होती है। हमारा शरीर इन पांच तत्त्वों के असंतुलन से ही रोगग्रस्त और संतुनल से आरोग्यमय रहता है। संक्षेप में पंच तत्त्वों का स्वरूप निम्न प्रकार है-

1. पृथ्वी तत्त्व– पृथ्वी ठोस गुण वाली है अत: शरीर में जो भी ठोस पदार्थ है वे पृथ्वी तत्त्व से निष्पन्न हैं जैसे- हड्डियाँ, मांसपेशियाँ, त्वचा, नाखून, बाल इत्यादि।

शरीर में पगथली से गुदा तक का भाग पृथ्वी तत्त्व से संबंधित माना जाता है। यहाँ पृथ्वी तत्त्व अधिक सक्रिय रहता है।

2. जल तत्त्व– जल तत्त्व पृथ्वी तत्त्व से हल्का और तरल होता है अत: शरीर में जितने भी तरल पदार्थ हैं वे जल तत्त्व से निर्मित हैं जैसे- रक्त, वीर्य, लासिका, मल, मूत्र, कफ, थूंक, पसीना, मज्जा आदि।

शरीर में गुदा से नाभि तक का भाग जलतत्त्वीय माना गया है यहाँ जल तत्त्व अधिक क्रियाशील रहता है।

3. अग्नि तत्त्व– अग्नि तत्त्व उष्णता गुण वाला है तथा जल तत्त्व से भी हल्का होता है। अग्नि का स्वभाव ऊपर की ओर उठना है। हमारे शरीर की उष्णता प्रधान जो भी क्रियाएँ हैं वे सभी अग्नि तत्त्व से सम्बन्ध रखती है जैसे- जोश, उत्तेजना, स्फूर्ति, दृष्टि आदि।

अग्नि तत्त्व का सम्बन्ध चक्षु इन्द्रिय से अधिक हैं अत: जिनमें अग्नि तत्त्व की अधिकता हो उनकी दृष्टि पैनी होती है और जिनमें इस तत्त्व की अल्पता हो उनकी दृष्टि कमजोर होती है।

शरीर में नाभि से हृदय तक का भाग अग्नि तत्त्व सम्बन्धी माना गया है इतना भाग अग्नि तत्त्व से अधिक प्रभावित रहता है।

4. **वायु तत्त्व**– वायु अग्नि तत्त्व से भी हल्की होती है अत: अग्नि तत्त्व से ऊपर वाले शरीर के भागों में, मुख्यतया हृदय से कंठ तक वायु तत्त्व की अधिकता होती है।

प्राय: वायु अस्थिर होती है अत: शरीर में हलन-चलन, संकोचन- फैलाव आदि गतिविधियाँ वायु तत्त्व जनित है।

5. **आकाश तत्त्व**– आकाश खाली होता है सभी को स्थान देता है, अत: शरीर में जहाँ-तहाँ रिक्तता है वे भाग आकाश तत्त्व से सम्बन्धित है। सामान्यत: शरीर में कंठ से मस्तिष्क तक का भाग आकाशतत्त्वीय कहा गया है।

अत: हमारे शरीर में पांचों इन्द्रियों (आँख, कान, नाक, जीभ, स्पर्श) के माध्यम से जो ग्रहण किया है उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप जो कुछ होता है उसका सम्बन्ध आकाश तत्त्व से है जैसे- काम, क्रोध, मोह, लोभ इत्यादि।

यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य है कि उक्त पंच तत्त्वों की कमी होने से अथवा इनमें असंतुलन होने से उस-उस सम्बन्धी पदार्थ एवं स्थान अस्वस्थ हो जाते हैं तथा शरीर रोगों का शिकार बन जाता है। जबकि मुद्रा-आसन-प्राणायाम आदि यौगिक क्रियाओं से तत्त्वों का संतुलन बना रहता है।

मेरुदण्ड– मेरुदण्ड अर्थात रीढ़ की हड्डी, जो शरीर के पिछले भाग में होती है। यह नितम्ब से शुरु होकर खोपड़ी तक एक श्रृंखला में कार्य करती है। इसमें कुल 33 हड्डियों के जोड़ होते हैं जिन्हें मणके, कशेरुकायें, वरटेबरा आदि नामों से पुकारा जाता है। ये मणके साईकिल की चैन के समान एक, दूसरे के साथ समान दूरी पर जुड़े हुये रहते हैं। जब किन्हीं दो मणकों के बीच की दूरी कम या अधिक हो जाती है अथवा एक दूसरे से चिपक जाते हैं तो मेरुदण्ड का लोच समाप्त हो जाता है। परिणामस्वरूप सरवायकल स्पोंडोलाईसस, स्लिपडिस्क जैसी अनेक बीमारियाँ हो सकती है।

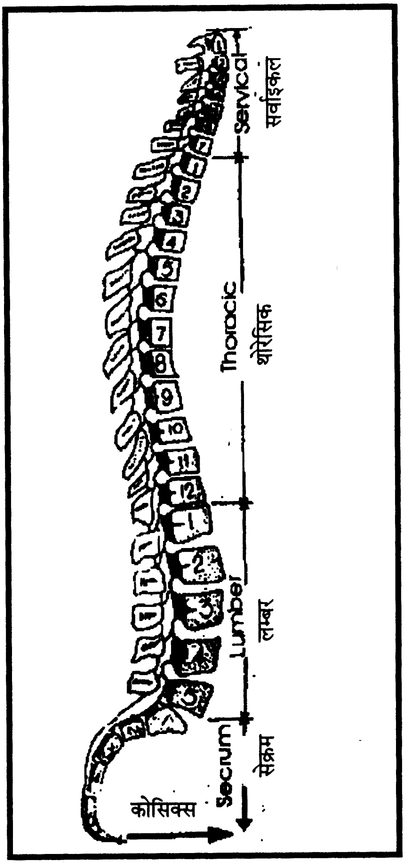

मेरुदण्ड

कोई भी साधना तभी श्रेष्ठ परिणाम दे सकती है जब उसके विषय में सूक्ष्मातिसूक्ष्म जानकारी हो। उसमें प्रयुक्त निर्देशों को समझने एवं उन्हें अमल में लाने की योग्यता हो। साधनागत परिणामों की अनुभूति भी तभी ही हो सकती है जब उन्हें समझने एवं जानने की कला प्राप्त हो जाए। परिशिष्ट में उल्लिखित अर्थ विन्यास साधकों को साधना में सहायता प्रदान करेगा। लक्ष्य संसिद्धि के आनंद अनुभूति का आस्वादान करने में सहायक बनेगा, यही आशा करते हैं।

परिशिष्ट-II

मुद्रा प्रभावित चक्र आदि के यन्त्र एवं चित्र

षट् चक्र द्योतक प्रथम चित्र

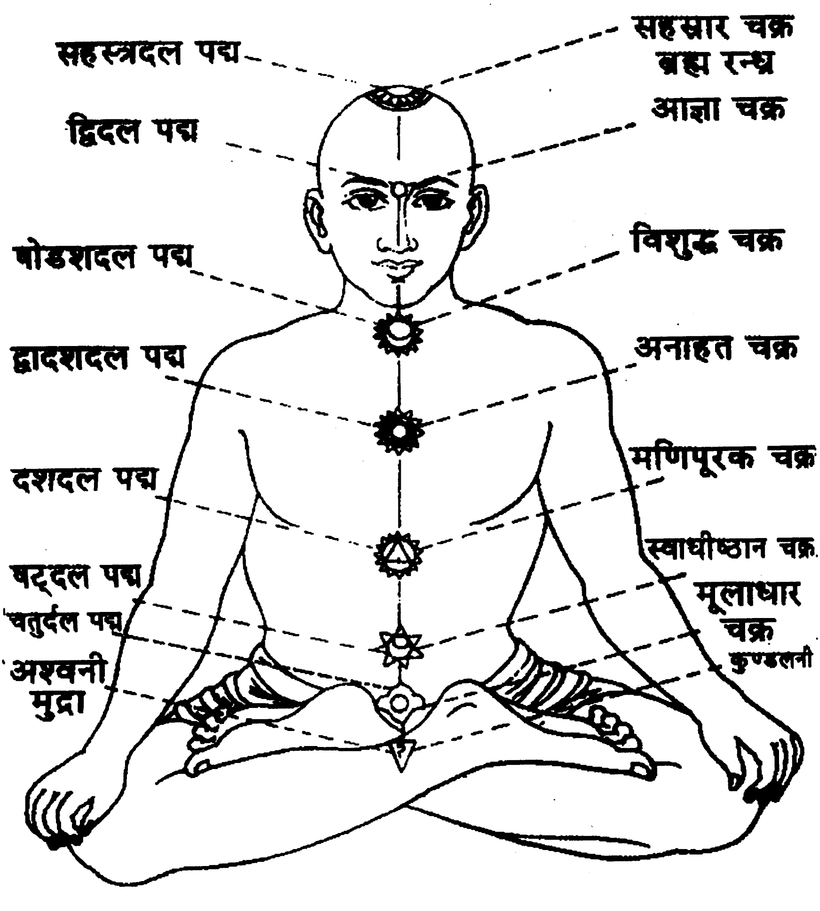

षट् चक्र द्योतक द्वितीय चित्र

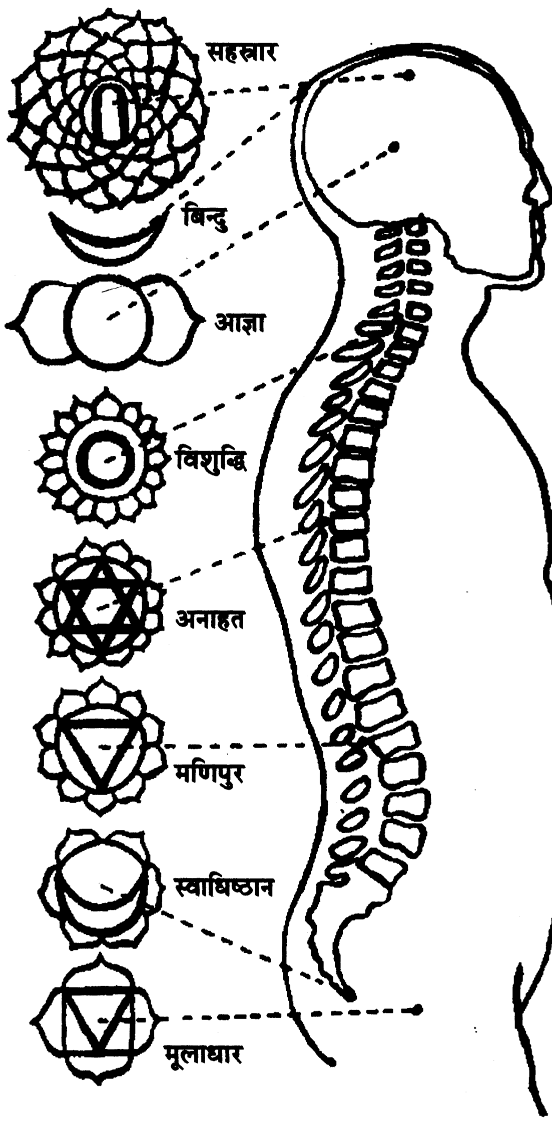

अन्तःस्रावी ग्रन्थियों और ऊर्जा चक्रों में समानता एवं उनके स्थान

आज के वैज्ञानिक जिन्हें अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के रूप में स्वीकारते हैं, हमारे योगाचार्यों ने उन्हें चक्र अथवा कमल के रूप में स्वीकारा है। जापान में प्रचलित बौद्ध पद्धति जूडो में इन्हें क्यूसोस कहते हैं। इन तीनों के शरीर में जो स्थान और आकार माने जाते हैं, उनमें विशेष अन्तर नहीं है।

अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ	संबंधित योग चक्र	जूडो क्यूसोस	रंग	तत्त्व	संचालक तंत्र	शरीर में स्थिति	विशेष प्रभावित अंग
पिनियल	सहस्रार चक्र	टेन्डो	बैंगनी	—		कपाल मस्तक के मध्य	ऊपरी मस्तिष्क
पीयूष	आज्ञा चक्र	ऊतो	नीला	—	बोध	चेहरा दोनों भौंहो के मध्य	निचला मस्तिष्क स्नायु तंत्र
थायरॉइड पेराथायरॉइड	विशुद्धि चक्र	हिचू	आसमानी	आकाश	श्वसन	कंठ कंठ के मूल में	नाक, कान, गला, मुँह, स्वर
थायमस	अनाहत चक्र	क्योटोटसु	हरा	वायु	रक्त संचार	हृदय के पीछे मध्य भाग में	हृदय, फेफड़े, भुजाएँ, रंक्त संचार प्रणाली

एड्रीनल पैन्क्रियाज	मणिपुर चक्र	सुहगेट्स	पीला	अग्नि	पाचन	नाभि के पीछे मध्य भाग में	पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, नाड़ीतंत्र, आँतें
प्रजनन	स्वाधिष्ठान चक्र	म्योजो	नारंगी	जल	प्रजनन	पेडू मूत्रेन्द्रिय के ऊपर	मल-मूत्र अंग, गुर्दे, प्रजनन अंग
प्रजनन	मूलाधार चक्र	सुरगिने	लाल	पृथ्वी	विसर्जन	मल द्वार के मध्य गर्भाशय मुख के आभ्यंतर हिस्से में	मेरु दण्ड, गुर्दे, पैर

उद्धृत-आरोग्य आपका, पृ. 278

पंच तत्त्वों से ऊर्जा चक्रों, प्राणों, रंगों, संवेदनाओं आदि की तुलना

क्रमांक	पंच तत्त्वों के नाम	शरीर में स्थान	विशेष संबंधित चक्र	विशेष प्रभावित संवेदना	संबंधित प्राण	संबंधित रंग	संबंधित कार्य
1.	वायु	हृदय और नासाग्र	हृदय चक्र/ अनाहत चक्र	स्पर्श	प्राण	हरा	श्वसन
2.	पृथ्वी	गुदा	मूलाधार	गंध	अपान	लाल	निष्कासन
3.	अग्नि	नाभि	सूर्य केन्द्र	ज्योति	समान	पीला	पाचन
4.	आकाश	गला एवं होठ	विशुद्धि चक्र	श्रवण	उदान	नीला	निगलना, बोलना, चेहरे से भावों की अभिव्यक्ति करना
5.	जल	सारा शरीर	आज्ञा चक्र	मानसिक	व्यान	लाल, नारंगी, गुलाबी	रक्त परिभ्रण नाड़ी तंत्र

उद्धृत-आरोग्य आपका, पृ. 97

मेरुदण्ड के मणकों से संबंधित शरीर के प्रभावित अंग तथा उनमें विकार होने से संभावित प्रमुख रोग

नाम (अ)	ब (क्षेत्र)	क (बिमारियाँ)
सर्वाइकल-1	सिर, पिच्यूटरी ग्रन्थि, खोपड़ी, चेहरे की हड्डियाँ, मस्तिष्क, कान का भीतरी एवं मध्य भाग तथा संवेदन नाड़ी संस्थान को रक्त भेजना यहीं से होता है	सिरदर्द, मानसिक दौर्बल्य, अनिद्रा, सर्दी, उच्च रक्तचाप, माइग्रेन, मानसिक रोग, मूर्च्छा, बच्चों का पक्षाघात, हमेशा थकावट, चक्कर आना आदि।
सर्वाईकल-2	आँखें, चक्षुगोलक	(Optic Nerue)श्रवण, ज्ञाननाड़ी, साइनस, हड्डियाँ, (Mastoid bones) जीभ एवं माथा।
सर्वाईकल-3	गाल, बाहरी कान, चेहरे की झुर्रियाँ, दाँत, त्रिमुखी नाड़ी (Tri-facial Nerve)	स्नायुशूल, नाड़ी प्रदाह, मुंहासे, एक्जिमा (चर्मरोग)
सर्वाइकल-4	नाक, होठ, मुँह, कण्ठनली	नाक बहना, नजला, लाल बुखार, कम सुनाई देना, गले की गिल्टी बढ़ना।
सर्वाईकल-5	स्वरनली, कंठ ग्रन्थियाँ, तालुमूल (Phyarygx)	तालुमूल प्रदाह, आवाज बिगड़ना, गले में खराश, कण्ठ प्रदोह।
सर्वाईकल-6	गर्दन की पेशियाँ, कंधे टान्सिल।	गर्दन की अकड़न, ऊपरी बाजू में दर्द, तालू मूल प्रदाह, कुकर खांसी, क्रुप।

नाम (अ)	ब (क्षेत्र)	क (बिमारियाँ)
सर्वाईकल-7	थाइरॉइड ग्रन्थि, कन्धें के जोड़ कोहनियाँ।	बरसाइटिस (Bursitis), जुकाम, थायरॉइड की स्थिति बदलना, घेंघा (Goiter)।
थोरोसिक-1	बाजू में कोहनी के नीचे के भाग-हथेली, कलाई, अंगुलियों सहित श्वास नली, खाने की नली।	दमा, खांसी, श्वास कृच्छ (Difficult Breathing), श्वास कण्ठ, हाथ और कोहनी के नीचे के हिस्से में दर्द
थोरोसिक-2	हृदय अपने कपाटों एवं अवतरणों सहित, कोरोनरी धमनियाँ	हृदय की क्रिया में गड़बड़ी कुछ विशेष छाती के दर्द।
थोरोसिक-3	फेंफड़े, ब्रोकीयल नली प्लूरा (Pleural) छाती, वक्ष, निपल।	ब्रोंकायटीस, प्लूरसी (Pleurisy), निमोनिया, कफ भरजाना, फ्लू, ग्रिप (Grippe)।
थोरोसिक-4	गॉलब्लेडर, कॉमन डक्ट।	गॉलब्लेडर की बीमारियाँ, पीलिया, सिंगल (Shingles)
थोरोसिक-5	यकृत, सोलार प्लेक्सस (Solar Plexus), रक्त।	लीवर बिगड़ना, बुखार, निम्न रक्तचाप, खून की कमी, रक्तसंचार में गड़बड़ी, जोड़ों का दर्द।
थोरोसिक-6	पेट	पेट की तकलीफें, नर्वस पेट, अपच, छाती में जलन, पेट में वायुसंचित होना (Dyspepsia)
थोरोसिक-7	पेंक्रियाज, लिंगरेनका द्वीप (Island of langerhans), डियुयोडिनम् (छोटी आँत का प्रथम हिस्सा)	मधुमेह, अल्सर, गैस (वायु) (Gastritis)

नाम (अ)	ब (क्षेत्र)	क (बिमारियाँ)
थोरोसिक-8	प्लीहा, झिल्ली (Diaphragm)।	ल्यूकेमिया (सफेद दाग), हिचकी।
थोरोसिक-9	एड्रीनल।	एलर्जी, Gocespe (Hives)।
थोरोसिक-10	किडनी (गुर्दे)	किडनी की बीमारियाँ, धमनियों का कठोरपन, हमेशा थकावट, पेशाब की तकलीफें, पाइलिटिस (Pyelitis)
थोरोसिक-11	किडनी, मूत्रनली।	चमड़ी की बिमारियाँ जैसे मुँहासे, फोड़े, एक्जिमा आदि, जहरबाद (Autointoxication)
थोरोसिक-12	छोटी आँतें, डिम्बनलियाँ (Fallopian tubes) लिम्फ संचार।	जोड़ों का दर्द, वायुशूल (गैस), विशेष प्रकार का बाँझपन।
लम्बर-1	बड़ी आँतें (कॉलन), इंगुनल गोलाई (Inguinal Ring)	कब्ज, कोलाइटिस, पेचिश, अतिसार, हर्निया।
लम्बर-2	एपेन्डिक्स, पेट, जांघे, सीकम (Caecum) ।	एपेन्डिक्स दर्द, बांयटें, श्वास लेने में कठिनाई, एसिडोसिस (Acidosis), शिराओं का फूलना।
लम्बर-3	प्रजनन ग्रन्थियाँ, डिम्बकोश (Ovaries) पोते (Testicles), गर्भाशय, मूत्राशय, घुटने।	मूत्राशय बिमारियाँ, मासिक धर्म सम्बन्धी तकलीफ, दर्द के साथ, अनियमित गर्भपात, अनिच्छित पेशाब,बांझपन, घुटनों का दर्द।

नाम (अ)	ब (क्षेत्र)	क (बिमारियाँ)
लम्बर-4	प्रोस्टेट ग्रन्थि, कमर के नीचे के स्नायु, साइटिक नर्व	साइटिका, कमर दर्द, पेशाब की तकलीफ, लुम्बागो (Lumbago)
लम्बर-5	टाँगे, अंगूठे, तलवे	पैरों में कम खून संचार, टखनों की सूजन, कमजोर टखने, तलवे, पाँव, ठण्डे रहना, टांगों में कमजोरी एवं बांयटे।
सेक्रम (Sacrum)	नितम्ब की हड्डियाँ, हिप बोन (Hip Bone)।	कमर और नितम्ब की बीमारियाँ, रीढ़ की हड्डियों का मुड़ना।
कोसीक्स (Coceyx)	मलरद्वार, एनस (Anus)	बवासीर, मलद्वार की खुजली, रीढ़ की आखरी हड्डी के नीचे दर्द (बैठने पर)

उद्धृत-आरोग्य आपका, पृ. 230-23

सज्जनमणि ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित साहित्य का संक्षिप्त सूची पत्र

क्र.	नाम	ले./संपा./अनु.	मूल्य
1.	सज्जन जिन वन्दन विधि	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
2.	सज्जन सद्ज्ञान प्रवेशिका	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
3.	सज्जन पूजामृत (पूजा संग्रह)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
4.	सज्जन वंदनामृत (नवपद आराधना विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
5.	सज्जन अर्चनामृत (बीसस्थानक तप विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
6.	सज्जन आराधनामृत (नव्वाणु यात्रा विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
7.	सज्जन ज्ञान विधि	साध्वी प्रियदर्शनाश्री	सदुपयोग
		साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
8.	पंच प्रतिक्रमण सूत्र	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
9.	तप से सज्जन बने विचक्षण	साध्वी मणिप्रभाश्री	सदुपयोग
	(चातुर्मासिक पर्व एवं तप आराधना विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
10.	मणिमंथन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
11.	सज्जन सद्ज्ञान सुधा	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
12.	चौबीस तीर्थंकर चरित्र (अप्राप्य)	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
13.	सज्जन गीत गुंजन (अप्राप्य)	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
14.	दर्पण विशेषांक	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
15.	विधिमार्गप्रपा (सानुवाद)	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
16.	जैन विधि-विधानों के तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन का शोध प्रबन्ध सार	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
17.	जैन विधि विधान सम्बन्धी साहित्य का बृहद् इतिहास	साध्वी सौम्यगुणाश्री	200.00
18.	जैन गृहस्थ के सोलह संस्कारों का तुलनात्मक अध्ययन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00

19.	जैन गृहस्थ के व्रतारोपण सम्बन्धी संस्कारों का प्रासंगिक अनुशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
20.	जैन मुनि के व्रतारोपण सम्बन्धी विधि-विधानों की त्रैकालिक उपयोगिता, नव्ययुग के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
21.	जैन मुनि की आचार संहिता का सर्वाङ्गीण अध्ययन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
22.	जैन मुनि की आहार संहिता का समीक्षात्मक अध्ययन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
23.	पदारोहण सम्बन्धी विधियों की मौलिकता, आधुनिक परिप्रेक्ष्य में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
24.	आगम अध्ययन की मौलिक विधि का शास्त्रीय अनुशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
25.	तप साधना विधि का प्रासंगिक अनुशीलन, आगमों से अब तक	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
26.	प्रायश्चित्त विधि का शास्त्रीय पर्यवेक्षण व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
27.	षडावश्यक की उपादेयता, भौतिक एवं आध्यात्मिक संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
28.	प्रतिक्रमण, एक रहस्यमयी योग साधना	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
29.	पूजा विधि के रहस्यों की मूल्यवत्ता, मनोविज्ञान एवं अध्यात्म के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
30.	प्रतिष्ठा विधि का मौलिक विवेचन आधुनिक संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	200.00
31.	मुद्रा योग एक अनुसंधान संस्कृति के आलोक में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
32.	नाट्य मुद्राओं का मनोवैज्ञानिक अनुशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00

33.	जैन मुद्रा योग की वैज्ञानिक एवं आधुनिक समीक्षा	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
34.	हिन्दू मुद्राओं की उपयोगिता, चिकित्सा एवं साधना के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
35.	बौद्ध परम्परा में प्रचलित मुद्राओं का रहस्यात्मक परिशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
36.	यौगिक मुद्राएँ, मानसिक शान्ति का एक सफल प्रयोग	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
37.	आधुनिक चिकित्सा में मुद्रा प्रयोग क्यों, कब और कैसे?	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
38.	सज्जन तप प्रवेशिका	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
39.	शंका नवि चित्त धरिए	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00

●

विधि संशोधिका का अणु परिचय

डॉ. साध्वी सौम्यगुणा श्रीजी (D.Lit.)

नाम	:	नारंगी उर्फ निशा
माता-पिता	:	विमलादेवी केसरीचंद छाजेड
जन्म	:	श्रावण वदि अष्टमी, सन् 1971 गढ़ सिवाना
दीक्षा	:	वैशाख सुदी छठ्ठ, सन् 1983, गढ़ सिवाना
दीक्षा नाम	:	सौम्यगुणा श्री
दीक्षा गुरु	:	प्रवर्त्तिनी महोदया प. पू. सज्जनमणि श्रीजी म. सा.
शिक्षा गुरु	:	संघरत्ना प. पू. शशिप्रभा श्रीजी म. सा.
अध्ययन	:	जैन दर्शन में आचार्य, विधिमार्गप्रपा ग्रन्थ पर Ph.D. कल्पसूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र, नंदीसूत्र आदि आगम कंठस्थ, हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, गुजराती, राजस्थानी भाषाओं का सम्यक् ज्ञान।
रचित, अनुवादित एवं सम्पादित साहित्य	:	तीर्थंकर चरित्र, सद्ज्ञानसुधा, मणिमंथन, अनुवाद-विधिमार्गप्रपा, पर्युषण प्रवचन, तत्वज्ञान प्रवेशिका, सज्जन गीत गुंजन (भाग : १-२)
विचरण	:	राजस्थान, गुजरात, बंगाल, बिहार, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, थलीप्रदेश, आंध्रप्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, महाराष्ट्र, मालवा, मेवाड़।
विशिष्टता	:	सौम्य स्वभावी, मितभाषी, कोकिल कंठी, सरस्वती की कृपापात्री, स्वाध्याय निमग्ना, गुरु निश्रारत।
तपाराधना	:	श्रेणीतप, मासक्षमण, चत्तारि अट्ठ दस दोय, ग्यारह, अट्ठाई बीसस्थानक, नवपद ओली, वर्धमान ओली, पखवासा, डेढ़ मासी, दो मासी आदि अनेक तप।

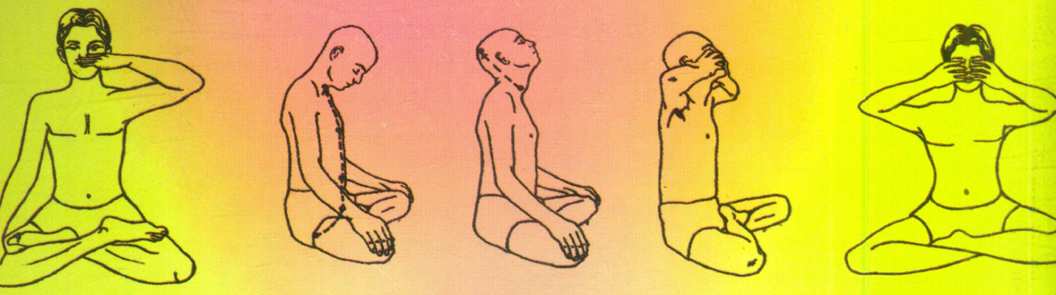

सज्जन वाणी के अनमोल तत्त्व

- कैसे जगाएँ अपने चैतन्य केन्द्रों, सप्त चक्रों एवं ग्रन्थियों को ?
- मुद्रा विज्ञान के द्वारा पंच तत्त्व संतुलन की प्रामाणिक विधि ?
- मुद्रा योग के द्वारा रोग चिकित्सा कैसे करें ?
- मुद्रा योग से कैसे खोलें मानसिक शांति के द्वार ?
- हठयोग मुद्राओं की साधना कैसे करें ?

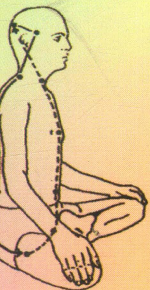

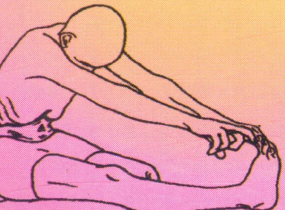

SAJJANMANI GRANTHMALA
Website : www.jainsajjanmani.com,E-mail : vidhiprabha@gmail.com
ISBN 978-81-910801-6-2 (XX)